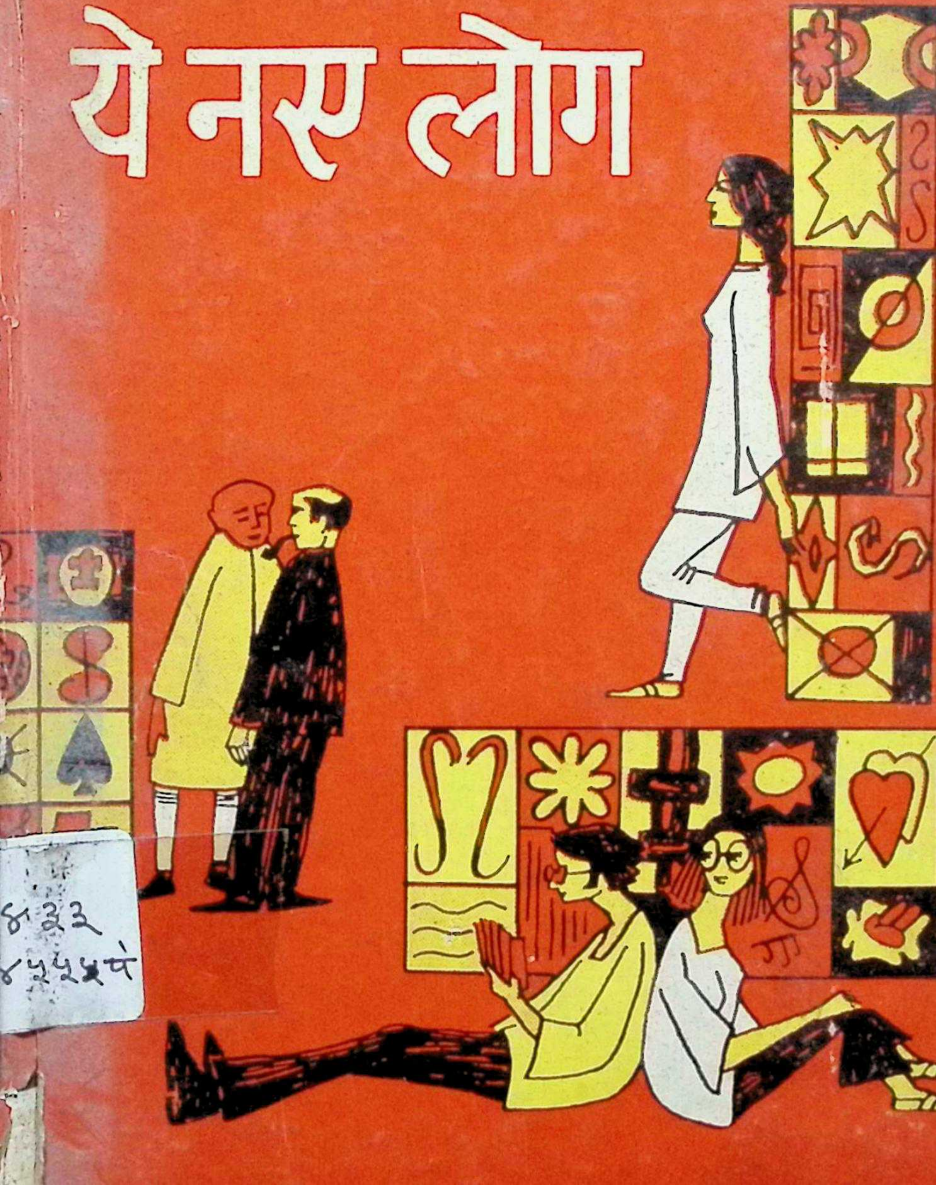
उपन्यास

मोहन चोपड़ा

ये नए लोग





ये नए लोग

ये नए लोग

[आधुनिक समाज की आर्थिक विषमताओं
पर आधारित सामाजिक उपन्यास]

लेखक

मोहन चोपड़ा

आत्माराम एण्ड संस
दिल्ली . नई दिल्ली . जयपुर . लखनऊ . चंडीगढ़

YE NAYE LOG

By : Mohan Chopra

(A social Novel)

Price : **Rs.**

प्रकाशक

रामलाल पुरी, संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

शाखाएँ

जयपुर, धमानी मार्केट
लखनऊ, १७, अशोक मार्ग
चण्डीगढ़, विश्वविद्यालय क्षेत्र
नई दिल्ली, हौज खास
दिल्ली, कशमीरी गेट

मूल्य :

मुद्रक

राष्ट्रवाणी प्रिंटर्स
सदर थाना रोड
दिल्ली-६

प्रिय ज्ञान को

प्रकाशकीय

'नीड़ से आगे', 'टूटा हुआ आदमी', 'सुबह से पहले', 'एक छाया और मैं', 'बाँहें' आदि उपन्यासों के लेखक सुविख्यात कथाकार, नाटककार और कवि मोहन चोपड़ा की नई शैली पाठकों को बेहद प्रिय है। आपकी रचनाओं में जहाँ जीवन और समाज की वास्तविकताओं का चित्रण हुआ, वहाँ मानसिक भावों का सूक्ष्म विश्लेषण भी विद्य-मान है।

प्रस्तुत उपन्यास 'ये नए लोग' में उन्होंने स्वतंत्र भारत के नए मानव को विभिन्न पात्रों के माध्यम से अलग-अलग पहलुओं में दर्शाया। स्वतंत्रता के बाद हमारे समाज ने अचानक ही एक नए दौर में प्रवेश किया, जिसका प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति की मानसिक स्थिति और सामाजिक परि-स्थिति पर किसी-न-किसी रूप में पड़ा। इस परिवर्तन में परस्पर टकराते स्वार्थों द्वारा द्वंदों का जो नया वातावरण बना, वही इस कथानक में विषय की नवीनता के साथ अत्यधिक रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया। उपन्यास का प्रत्येक पात्र पढ़ने वाले के मस्तिष्क पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाता है।

□ एक

दोपहर के तीन हुए थे जब उषा यूनिवर्सिटी से लौटी। कपड़े आदि बदलकर वह थोड़ी देर सुस्ता लेने के लिए पलँग पर लेटी ही थी कि नौकर भीमू ने आकर सूचना दी कि कोई उसे फोन पर पूछ रहा है। उषा कॉरीडार में चली आई जहाँ टेलीफोन पड़ा था। चोंगा उठाकर उसने 'हेलो' कहा और एक सुपरिचित-सी आवाज़ उसे संबोधित कर रही थी।

"उषा डियर! चार बजे पार्टी है। फौरन चली आओ!"

आवाज़ उसकी सहेली मिसेज़ मनचन्दा की थी। ऐसा कभी नहीं हुआ था कि मिसेज़ मनचन्दा उसे बुलाए और वह टाल दे। अपने बीस काम छोड़कर वह चले जाने के लिए तैयार हो जाती। सिर्फ़ मज़ाक़-मज़ाक में उसने अपनी सहेली से कहा, "मैं बहुत···बहुत थकी हुई हूँ। मुझे माफ कर दो!"

"तुम बहुत सिल्ली हो!" मिसेज़ मनचन्दा ने उसे डाँटना चाहा। फिर कुछ क्षण हँसते हुए बोली, "नीना भी आ रही है। तुम्हें जरूर आना चाहिए।" कहकर उसने उषा के उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की और फोन ठप कर दिया।

मिसेज़ मनचन्दा उषा से कम-अज़-कम पन्द्रह साल बड़ी है। वह अपने को पैंतीस की तो कहती है, शायद दो-तीन साल और बड़ी हो। लेकिन महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि इस उम्र में भी उसका जिस्म गठीला है, चेहरा मोहक और ओजपूर्ण और बातचीत का लहज़ा भी काफ़ी चुस्त और शोख़। बेचारी को वैवाहिक जीवन का सुख न मिल सका। ब्याह के चार साल बाद ही उसका पति लाखों की संपत्ति उसके लिए छोड़कर चल बसा। उसके कोई संतान भी नहीं। चूँकि वह आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त है इसलिए उसे समय का सदुपयोग आता है और वह आए-दिन टी-पार्टियों और रात्रि-भोजों का प्रबन्ध करती रहती है। उसके खुशनुमा ड्राइंग-रूम में वे सभी लोग आते रहते हैं जिनसे हमारा

सभ्य समाज बनता है।

उसका फ्लैट···फ्लैट नहीं बंगला कहना चाहिए रोहतक रोड पर है। एक नौकर और दो नौकरानियों की देख-रेख में वहाँ की प्रत्येक चीज़ खूब नफ़ासत और सलीके से सजी हुई रहती है।

ठीक चार बजे उषा मिसेज़ मनचन्दा के ड्राइंग-रूम की देहलीज़ पर ठिठक-कर खड़ी हो गई। उसने अपनी सहेली को डाइनिंग-टेबल के निकट खड़े देखा। उषा ने कहा, "आप घड़ी देख लीजिए ! मैं ठीक वक्त पर आ गई हूँ !"

आवाज़ सुनकर मिसेज़ मनचन्दा चौंक-सी पड़ी और उसने पलटकर कहा, "तुम बहुत शैतान होती जा रही हो उषा ! मुझे तुम्हारे कान खींचने होंगे !"

"आप बड़े शौक से खींच सकती हैं !" उषा ने पास आकर अपना चेहरा आगे कर दिया।

मिसेज़ मनचन्दा ने कान खींचना उचित न समझ कर उसकी दाईं गाल पर प्यार से हल्की-सी चपत लगाई। उषा ने ज़रा भी झेंपे बिना पूछ लिया, "चार तो हो गए। आपके मेहमान कहाँ हैं ?"

"बस आते ही होंगे। मैंने अपनी मर्ज़ी से तुम्हें पहले बुला लिया है।"

"आपने ठीक नहीं किया। मुझे बहुत ज़ोर की नींद आ रही थी।"

"उषी !" बनावटी रोष में मिसेज़ मनचन्दा की नाक तन गई और वह उसे घूर-घूर कर देखने लगी।

उषा ने ज़रा चापलूसी से काम लिया, "गुस्सा थूक दो बहन सरोज। आप बुलाएँ और मैं कन्नी काट लूँ···यह तो मैं सोच ही नहीं सकती। मैं सच कहती हूँ आपसे मिलना मेरे लिए सौभाग्य की बात है !"

यह सुनकर मिसेज़ मनचन्दा खुश हो गई। उस वक्त उसने सफ़ेद नाय-लोन की साड़ी पहन रखी थी जो उसके गोरे-चिट्टे रंग और काले ब्लाउज़ के साथ खूब फब रही थी। उसका मेक-अप भी बस देखते बनता था। उषा ने उसे कौम्पलीमेंट-सा दिया, "सरोज, आप तो एकदम आकर्षक लग रही हैं !"

"सच ?" मिसेज़ मनचन्दा ने पूछा, "मेरी साड़ी पसन्द है ?"

"मैं साड़ी की बात नहीं करती। असल में आप अपनी उम्र की लगती ही नहीं !"

मिसेज़ मनचन्दा पूरी गम्भीरता से बोली, "तुम शायद ठीक कहती हो। पर उषी, जब दूसरे लोग यही बात कहते हैं तो उनका मतलब मेरी चापलूसी करने के सिवा और कुछ नहीं होता। असल में तुम जानती ही हो कि मुझे ज़िन्दगी जीने का आर्ट आता है। फिजूल की परेशानियाँ लेकर मैं माथापच्ची भी नहीं करती। ज्यादा-से-ज्यादा मैं नौकर-नौकरानियों को झिड़क लेती हूँ।"

"वाकई ज़िन्दगी जीने का आर्ट आप खूब जानती हैं!" कहकर उषा हँस पड़ी।

मिसेज़ मनचन्दा ने मुस्कराते हुए पूछ लिया, "तुम समाजवादियों की तरह व्यंग्य तो नहीं कर रही हो?"

"आप जानती ही हैं", उषा बोली, "कि मैं किसी भी वाद में विश्वास नहीं रखती।"

"एक दिन अशोक कह रहा था," मिसेज़ मनचन्दा परिहासपूर्ण होकर बोली, "कि हमारे देश में समाजवाद धोती पहनकर आएगा। मुझे बड़ी हँसी आई!"

अशोक का विवरण आते ही उषा के माथे पर शिकन-सी पड़ गई। बोली, 'अशोक तो सिनिक है! वह हमेशा इसी तरह की फिजूल बातें किया करता है।"

तभी बाहर बँगले के पोर्च के नीचे कार की घरघराहट सुनाई दी। मिसेज़ मनचन्दा ने अपनी आदत के मुताबिक कंधे फैला लिए और नवागुंतकों का स्वागत करने के लिए ड्राइंग-रूम के दरवाज़े की ओर बढ़ी।

उस कार में नीना थी। दरमियाना कद, सफेद खिलता हुआ रँग और भरा-भरा-सा जिस्म। उस समय अपनी भड़कीली किरमची रँग की साड़ी में वह कुछ मोटीली दिखाई दे रही थी। वे जो बुंदे पहने थी, खूबसूरत और नई तर्ज़ के थे।

मिसेज़ मनचन्दा ने बुंदों को छूकर कहा, "बहुत ही ब्यूटीफुल हैं! कब लिए? असली मोतियों के हैं या नकली?"

नीना झेंप रही थी। उसने उत्तर में कहा कि वे बुन्दे उसने आज ही लिए और असली मोतियों के हैं। उत्तर देकर भी उसकी झेंप कम नहीं हुई। उसे

महसूस हो रहा था कि वह उषा की नज़रों की ताब नहीं ला सकती।

"बजाज साहब नहीं आए?" मिसेज़ मनचन्दा ने पूछ लिया।

"एक जरूरी काम से रह गए हैं। कहते थे आँटी से माफी माँग लेना!"

उषा एक क्षण नीना के उत्तर पर कुछ विस्मित-सी रह गई। उसे नीना का मिसेज़ मनचन्दा को आँटी कहना कुछ अजीब-सा लगा। उसने सोचा कि नीना फिजूल ही आत्मीय होने की चेष्टा कर रही है।

मिसेज़ मनचन्दा ने नीना से कहा, "मॉफी? नो! नो! ऐसी फॉरमेलिटी भी क्या हुई!"

वह नीना से निबटी ही थी कि बाहर किसी और कार की घरघराहट सुनाई दी। वह अपने नए मेहमानों का स्वागत करने के लिए दरवाजे की ओर बढ़ी।

उषा नीना से बोली, "आओ लॉन पर चलें। यहाँ अब बहुत शोर हो जाएगा!"

कुछ सहम कर नीना ने उषा की ओर देखा। उसे पता था कि उसमें इतना साहस नहीं कि उषा की बात टाल दे। जाने क्यों उषा के समक्ष उसे एक तरह का हीन-भाव सा जकड़ लेता था। उसने उत्तर दिया, "आँटी क्या सोचेगी?"

"कुछ नहीं। उन्हें मेरे स्वभाव का पता है!"

"लेकिन···।" नीना कोई और बहाना तराश लेने में असमर्थ थी।

फिर वे दोनों पिछले दरवाज़े से निकल कर लॉन में चली गईं। उषा ने कहा, "नीना, डेलिया के फूल देखोगी? उनका रँग तुम्हारी साड़ी से कितना मिलता है!"

नीना प्रकटतः खुश हो गई। जब उसके बुन्दों की तारीफ हुई थी तो उसने चाहा था कि उसकी साड़ी की भी तारीफ हो। वह साड़ी भी उसने आज ही बुन्दों के साथ खरीदी थी और उस शो-केश से निकलवाई थी जिसमें 'न्यू एरा इवल्ज़' का विज्ञापन दिया होता है। उसने पूछ लिया, "तुम्हें यह मेरी नई साड़ी पसन्द आई?"

उषा ने उत्तर न दिया। वह बस दूसरी ओर देखती रही और उसके होंठ

की कोरों में जैसे शरारत की मुस्कराहट दुबकी हुई थी।

"मैं जानती हूँ," नीना इस भाव से बोली जैसे उलाहना दे रही हो, "कि तुम्हें शोख रँग अच्छे नहीं लगते!"

इस पर उषा खामोश ही रही। उसने जो उत्तर दिया होता···वह बहुत ही विकट था—तुम्हारी साड़ी अच्छी है और रँग भी बुरा नहीं, पर तुम्हारे जिस्म पर यह बिल्कुल भी फब नहीं रही।···यह सुनकर नीना ने अवश्य मुँह बुरा कर लिया होता। वह तो अपने को बहुत ही मानती थी!

मिसेज़ मनचन्दा का वह छोटा-सा उद्यान आसपास की ऊँची इमारतों के घेरे में बहुत अजीब और उखड़ा-उखड़ा-सा लगता है। उषा तन्मय-सी होकर एक तितली को देखने लगी जो कभी डेलिया के फूल पर मँडराने लगती और कभी पैंजी के फूल पर। उसकी तेज़ उड़ान आँखों को चौंधिया देती।" आओ, अन्दर चलें!" उसने अपनी साथिन से कहा।

अन्दर तब एक बहस-सी हो रही थी। मिसेज़ मनचन्दा तीन और अतिथियों से घिरी बैठी थी। वे थे ठुकराल, राना और उसकी पत्नी। ठुकराल उषा को देखते ही उठकर खड़ा हो गया और उसने उससे उसके पिता की कुशल-क्षेम पूछी।

"उन्हें फ्लू हुआ था।" उषा ने बताया।

ठुकराल बोला, "मैंने परसों उन्हें फोन किया था। कहते थे अब ठीक हूँ लेकिन कमज़ोरी तो अभी जाते-जाते जाएगी।"

राना को अकस्मात् कुछ याद आया और वह बोल पड़ा, "फ्लू हो जाए तो कोल्ड वैक्सीन के इन्जेकशन···।"

मिसेज़ मनचन्दा ने उसे अपनी बात पूरी नहीं करने दी। "राना साहब, तो आप डेमोक्रेसी के बारे में कुछ कहने जा रहे थे?" वह उसे उस बहस को नए सिरे से छेड़ देने के लिए उकसा रही थी जो उषा और नीना के आने से पहले शुरू थी।

राना बोला, "ठुकराल साहब के आगे हम क्या बहस करेंगे? वे तो पार्लियामेंट में बड़ों-बड़ों के बखिए उधेड़ देते हैं!"

उसकी पत्नी के सिवा और सभी हँसने लगे। मिसेज राना के दाँत इतने

बड़े हैं कि वह बेमतलब हँसकर उनकी नुमाइश नहीं करना चाहती। अन्य तीनों महिलाएँ उसकी इस आदत को जानती हैं।

राना ने दिल-ही-दिल में अपने कथन का संशोधन किया--क्या बखिया उधेड़ेगा! कल का छोकरा ही तो है। पार्लियामेंट में जहाँ कृपलानी, अशोक मेहता और नाथपाई जैसी बड़ी-बड़ी तोपें हों, उन के आगे उसकी क्या हैसियत है!···ठुकराल का उत्तर आया, "लेकिन मिस्टर राना, आप तो पॉलिटिक्स के बड़े पुराने घाघ हैं। बीमा कंपनी की नौकरी करने से पहले आप ने जर्नलिज़्म में कितना नाम पैदा किया था!"

मिसेज़ मनचन्दा और उषा को एक साथ महसूस हुआ कि ठुकराल उसे बेवक़ूफ बना रहा है। चुनाँचे वे दोनों नज़रें मिलते ही मुस्कराने लगीं। अगले क्षण उन्होंने एक साथ ही मिसेज राना की ओर देखा। अच्छा ही हुआ कि उस का ध्यान दूसरी ओर था। नहीं तो बेचारी को कितनी चोट पहुँचती!

उषा नीना की उपस्थिति को एक तरह से भूल ही चुकी थी। जब उसने उसकी ओर देखा तो वह उसे नए बुंदों और नई साड़ी के बावजूद भी बुझी-बुझी और गुमसुम-सी दिखाई दी। उसने नीना पर अपना विश्वास बैठाने के खयाल से कहा, "नीना, अगर ये लोग पोलिटिकल बहस करेंगे तो हम उठकर फिर लॉन में चली जाएँगी!"

"आइए, चाय पिएँ!" मिसेज़ मनचन्दा सोफे से उठती हुई बोली और फिर वह अपने अतिथियों का पथ-प्रदर्शन करती हुई बड़ी मेज़ के पास चली आई।

नीना ने कोई भी मीठी चीज़ लेने से इन्कार कर दिया। उसने कहा कि अब वह डायटिंग कर रही है।···लेकिन उषा! उस पर जाने शरारत का कैसा भूत सवार था। वह तब भी उसे पेस्टरी या बरफी ले लेने के लिए उकसाती रही। इस पर नीना परेशान हो जाती। उसे समझ नहीं आ रहा था कि उषा, जिसका मुँह है न माथा, भरी महफिल में उसकी टाँग खींचने पर क्यों तुल गई है? सभी यह तमाशा देखते रहे और किसी ने भी उसे टोकने की कोशिश नहीं की। परेशानी की हालत में जब नीना अपने लिए चाय की दूसरी प्याली बना रही थी तो उसका हाथ काँप गया और थोड़ी-सी चाय टेबल-कवर पर फैल गई। "आई एम सो सॉरी!" उसने खेदपूर्ण स्वर में मिसेज़ मनचन्दा से कहा।

"नैवर माइंड !" मिसेज़ मनचन्दा ने उसे साँत्वना दी।

ठुकराल ने सैंडविच खाते हुए राना से पूछ लिया, "राना साहब, क्या यह सच है कि आपने पैंतरा बदल लिया है और अब काँग्रेस छोड़ कर पी० एस० पी० के चेले बन गए हैं ?"

"वक्त के साथ कौन नहीं बदलता," राना ने आत्म-विश्वास के साथ उत्तर दिया, "मैं तो खैर आदमी हूँ !"

सभी हँसने लगे ; राना भी उस हँसी में शरीक हो गया। ठुकराल ने उसकी तारीफ़ में कहा, "जो आदमी अपने ऊपर हँस सकता है उसे मैं बहादुर आदमी समझता हूँ !"

"और मिसेज़ राना भी एक बहादुर औरत हैं !" मिसेज़ मनचन्दा ने अपनी ओर से जोड़ दिया।

हँसी-मज़ाक और खाने-पीने का यह कार्य-क्रम आध-पौन घंटे तक चलता रहा।

मिसेज़ मनचन्दा का यह विचार था कि अब उन्हें रम्मी खेलनी चाहिए। पर उषा के सिवा और कोई भी रुकने को तैयार नहीं था। ठुकराल को पार्लियामेंट की किसी मीटिंग में जाना था। राना और मिसेज़ राना चाय पर किसी और जगह भी आमंत्रित थे।...और नीना ? वह तो किसी भी प्रलोभन पर ठहर जाने के लिए तैयार नहीं थी। भले ही प्रकट रूप में उसने यह कहा हो कि उसके डैडी अपने आफिस में उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। जाते वक्त उसने उषा से हैंड-शेक नहीं किया और एक बहुत ही रूखा और सर्द-सा बाई-बाई होंठों में बुद-बुदा कर चली गई।

अपने अतिथियों को विदा देकर जब मिसेज़ मनचन्दा अन्दर आई तो उसने उषा से पूछ लिया "नीना के साथ झगड़ा हुआ है ?"

"झगड़ा तो नहीं हुआ मगर यह सच है कि वह काफी बेवकूफ़-सी लड़की है।"

"तुम्हें पता होना चाहिए कि वह सेंट बीड्ज़ की सीनियर कैंब्रिज है !"

"तब क्या हुआ ?" उषा ने तर्क किया।

"उषी !" मिसेज़ मनचन्दा ने अपने स्वर को और अधिक प्रभावशाली बनाते

हुए कहा, "तुम्हें यह भी समझ लेना चाहिए कि उनकी खानदानी हैसियत अब काफी शानदार हो गई है।"

सुनकर व्यंग्य से उषा की नासिकाएँ किंचित् फैल गई। "मुझे पता है," वह बोली, "कि उसके डैडी बहुत बड़े बिज़निसमैन हैं!"

"तो फिर तुम नीना को बेवकूफ कैसे कह सकती हो?" मिसेज़ मनचन्दा ने पूछ लिया।

उषा कड़वा-सा उत्तर देकर अपनी प्रौढ सहेली से यह नहीं सुनना चाहती थी कि वह नीना से ईर्ष्या करती है। इसलिए वह चुप रही। मिसेज़ मनचन्दा की कुछ-एक निजी मान्यताएं थीं और वह यह सोच भी नहीं सकती थी कि वे गलत हो सकती हैं। उनके साथ उलझने का मतलब था बेचारी के दिल को चोट पहुँचाना।···बेचारी! पार्टी के बाद वह कितना थक-सी गई थी! वह सोफे पर टाँगें फैला रही थी। उसने एक बार उषा से कहा था कि वह कितनी अकेली है! अगर ये पार्टियाँ-वार्टियाँ न हों तो उसका जीवन दूभर हो जाए···वह एक श्वास भी न ले सके···उसके इन शब्दों में गहरी व्यथा थी जो उषा के दिल को छू गई थी। उसने अपने वैधव्य के जीवन को जिस खूबी और ईमानदारी से निभाया है, कोई और स्त्री उन परिस्थितियों में निभा न सकती थी।

उषा ने जानते हुए भी पूछ लिया, "क्या बहुत थक गई?"

"हाँ," मिसेज़ मनचन्दा ने उत्तर दिया, "अब मैं बहुत थक जाती हूँ। पहले इतने सारे लोगों के बीच मैं खुश-खुश और हल्की-हल्की महसूस किया करती थी लेकिन अब यह एहसास बिल्कुल भी नहीं।"

"लेकिन सरोज बहन," उषा ने इस विषय को बदल देने के खयाल से कहा, "आप के अतिथियों का चुनाव बहुत ही शानदार होता है।"

मिसेज मनचन्दा पहले मुस्कराई, फिर अन्तर्खीझ से भर कर बोली, "रहने दो उषी, इस वक्त मज़ाक सुनने को मन नहीं हो रहा।" कह कर वह किसी सोच में डूब गई।

दो-एक मिनट खामोशी रही। उषा ने पूछ लिया, "सरोज बहन, बताइए न? आज आप का मूड क्यों खराब है?"

निराशा के स्वर में मिसेज़ मनचन्दा ने उतर दिया; "मैं बहुत अकेली हूँ।

यह अकेलापन अब मुझसे बर्दाशत नहीं होता । मैं एक मामले में तुम्हारी राय लेना चाहती हूँ !"

"हाँ-हाँ !"

मिसेज़ मनचन्दा कुछ अपने भीतर विमर्श करती रही और उसकी दृष्टि मैंटलपीस पर रखे एक फोटो की ओर चली गई जो उसके मृत पति का था। उसे देखते ही वह कुछ अस्थिर-सी हो गई और सोफे से उठते हुए बोली, "यहाँ नहीं, बाहर चलते हैं ।" फिर लॉन पर आकर उसने कहा, "सच, अब और ज्यादा अकेलापन बर्दाश्त नहीं होता ।···और मैं चाहती हूँ···कि शादी कर लूँ !"

उषा अवाक्-भाव से उसे देखकर हँस पड़ी । मिसेज़ मनचन्दा को उसकी हँसी बहुत बुरी लगी । माथे पर क्रोध की सलवट-सी डालकर उसने कहा, "मुझे तुम्हारी हँसी नहीं हमदर्दी चाहिए उषी ! तुम्हें तो मैं काफी अक्लमन्द लड़की समझती हूँ !"

"सरोज बहन," उषा ने गँभीर होकर कहा, "आप को तो यह पता ही है कि मैं शादी को ऐसा जरूरी नहीं समझती ।"

"तुम अपनी निजी बात रहने दो । मेरी स्थिति को समझ कर बात कहो ।"

"आप को किस चीज़ की कमी है ?"

"मेरे पास है ही क्या ?" मिसेज़ मनचन्दा का स्वर मनोवेश से भारी था, "रुपया, जायदाद, नौकर-चाकर···यह सब तो इन्सान को ऊपर से ही खुश रख सकते हैं । उषी ! तुम ने तो बहुत लिट्रेचर पढ़ रखा है ! तुम तो मेरी स्थिति को ज्यादा गहराई से समझ सकती हो ।"

उत्तर न देकर उषा मन-ही-मन सोचने लगी कि जाने क्यों मिसेज़ मनचन्दा की स्थिति के प्रति उसके भीतर संवेदना नहीं व्यंग्य ही पैदा हुआ है और इसी तरह कुछ देर पहले नीना के प्रति भी । अजीब बात है, उसे खयाल आया, कि कोई भी स्त्री शादी के आगे कुछ सोच ही नहीं सकती । उसकी अपनी बात और है । उसे तो शादी में कुछ भी सार दिखाई नहीं देता ।

मिसेज़ मनचन्दा जो उसका उत्तर जान लेने की इच्छुक थी, एकाएक बोल पड़ी "चुप क्यों हो ? कुछ कहो भी !"

"तो कर लीजिए शादी । फिर आप को अकेलापन महसूस नहीं होगा !"

कहकर उषा स्वीट-पी के फूलों के पास चली गई और एक फूल तोड़कर उसे सूँघने लगी।

मिसेज़ मनचन्दा ने अपने कंधों को हल्का-सा झटका दिया जैसे वह अपना भीतरी आक्रोश प्रकट करना चाहती हो। उद्यान के स्वच्छ वातावरण में उसे यह विचार आया कि उसका छह सालों का वैधव्य जीवन जो एक पत्थर की तरह उसके वर्तमान पर पड़ा है इतना भारी नहीं कि उसे परे ढकेला न जा सके। वह निश्चय ही इसे ढकेल कर मुक्त हो जाएगी। तत्क्षण उसके ज़हन में रूपलाल की आकृति उभर आई जिससे वह शादी कर लेने का इरादा किए हुए थी। उस के होंठों में मुस्कराहट भर उठी और आँखें भी चमकने लगीं।

फिर अगले क्षण वह मुग्धभाव से उषा को देखने लगी जो अब स्वीट-पी के फूल को बार-बार अपने गाल से छुआ रही थी। उसे अनुभव हुआ, और यह अनु-भव उसे पहले भी हो चुका था कि उषा सचमुच खूबसूरत है। कितना चौड़ा माथा है! नाक की टिप कितनी नफीस है!···और होंठों के ऊपर बारीक सुनहरी रंग के रोएँ जो अस्पष्ट-सी छाया का विभ्रम का पैदा करते हैं उन्हें तो कोई नज़र-अन्दाज़ नहीं कर सकता। सचमुच वह साधारण युवती नहीं। उसका चेहरा कहता है कि वह बहुत ऊपर उठेगी। यह तो स्वाभाविक ही है। उसके पिता ने देश की आज़ादी के लिए कितने ही साल जेल में काट दिए।···दबे-दबे पाँव से चलकर वह उसके पास आ गई और मुस्करा कर पूछने लगी, "तुम्हारी तो अब शादी की उम्र है। क्यों?"

"इस विषय को आप रहने दें!" कह कर उषा ने पीठ फेर ली।

सरोज बोली, "तुम तो अपने पिता की एकमात्र संतान हो और ज़मीन-जायदाद भी काफी है। तुम्हें तो बहुत ही अच्छा वर मिल सकता है।"

"लेकिन जो वर खरीदा हुआ हो," उषा ने उत्तर दिया, "उससे भला मैं कैसे प्यार कर सकती हूँ? सरोज बहन, हम स्त्रियाँ पढ़-लिख कर भी कई बार बहुत ही मूर्खतापूर्ण ढंग से सोचने लगती हैं!"

"मैं समझी नहीं।"

"मेरा मतलब है अगर कोई स्त्री अपनी पूंजी और जमीन-जायदाद का लालच देकर किसी आदमी को खींचना चाहती है तो वह बेवकूफ है। चाहिए तो

यह कि वह उसे ग्रपने व्यक्तित्व से, ग्रपने गुणों से खींच ले।" शायद उसका संकेत नीना की ग्रोर हो।

मिसेज़ मनचन्दा बोली, "लेकिन ग्रादमी सिर्फ गुण नहीं देखते पगली!"

"तो ऐसे ग्रादमियों का हमें बायकाट कर देना चाहिए!" यह कहकर उषा खिलखिलाकर हँसने लगी।

मिसेज़ मनचन्दा को ग्रकस्मात् कुछ याद ग्रा गया। उसने कहा, "ग्राग्रो ग्रब कनाटप्लेस चलें। मुझे कुछ शापिंग करनी है।"

थोड़ी देर बाद वे कनाटप्लेस में थीं। जब शापिंग कर ली गई तो वे कॉफी पीने के निमित्त नरूला में जा बैठीं। मिसेज़ मनचन्दा सीट से उठकर काउंटर तक गई ताकि फोन पर पता कर ले कि रूपलाल चन्दीगढ़ से लौटा है या नहीं। वह जानती थी कि फोन मिलते ही वह उसके पास दौड़ा चला ग्राएगा। वह उसके उपकारों के बोझ से दबा हुग्रा है ग्रौर जब-जब भी उसे रुपए-पैसे की जरूरत ग्रा पड़ती है वह सहायता के लिए उसके पास ही ग्राता रहा है। वह किसी नए बिज़निस के सिलसिले में चण्डीगढ़ गया हुग्रा था। उसका ग्राफिस ग्रासफ ग्रली रोड पर है जहाँ उन दिनों कितनी ही नई, भव्य-सी इमारतें बन रही थीं। फोन करके मिसेज़ मनचन्दा को निराशा ही हुई। रूपलाल तब तक नहीं ग्राया था। रूमाल से ग्रपने को हवा करती हुई वह उषा के पास चली ग्राई। ग्रभी कुछ ही मिनट गुजरे थे कि एक लम्बा, छरेरा-सा युवक उन्हें बैठे देखकर उनके पास ही चला ग्राया। वह ग्रशोक है। लापरवाही से पहने हुए वस्त्र उसके व्यक्तित्व के बेढबपन को ही लक्षित कर रहे थे। पारिवारिक घनिष्ठता के कारण उषा ग्रौर मिसेज़ मनचन्दा के साथ उसके सम्बन्ध काफी खुले हुए हैं। क्षण-भर के लिए उषा की ग्राँखों में चमक-सी पैदा हुई, लेकिन ग्रगले क्षण उसने वितृष्णा से मुँह फेर लेना चाहा। मिसेज़ मनचन्दा ने खिलती मुस्कराहट के साथ उसके ग्रागमन की स्वीकृति दी। बिल्कुल बेतकल्लुफ होकर ग्रशोक ने कहा, "मैं सिर्फ दो-चार मिनट के लिए यहाँ बैठूंगा!"

वैसी ही बेतकल्लुफी के साथ मिसेज़ मनचन्दा ने उत्तर दिया, "ग्रच्छा बैठो। हम तो उठने ही वाली थीं। कॉफी पियोगे?"

"नहीं ग्रांटी," ग्रशोक भी नीना की तरह मिसेज़ मनचन्दा को ग्राँटी ही

करता है, "मैं अभी-अभी कॉफी हाउस से ही चला आ रहा हूँ। कुछ मिनट पहले मैंने आप को फोन किया था।" उसने कनखियों से उषा की ओर देखा और मुस्कराने लगा।

"लेकिन हम तो घण्टे-भर से यहाँ हैं।" मिसेज़ मनचन्दा ने उत्तर दिया अशोक ने कहा, "मुझे आप से थोड़ा काम है।"

"क्या ?"

"मेरा एक आर्टिस्ट दोस्त है। मैं उसकी पेंटिंगज़ आपकी मारफत बिकवाना चाहता हूँ। आपकी जान-पहचान तो कितने ही बड़े-बड़े आदमियों से है।"

मिसेज़ मनचन्दा की तारीफ हुई थी। इसलिए स्वाभाविक ही था कि वह खुश हो जाए। प्रसन्न-कंठ से वह उषा से कहने लगी, "सुना इस भले आदमी को ! कहता है मेरी जान-पहचान बड़े-बड़े आदमियों से है !"

उषा और अशोक की नजरें मिलीं। अशोक ने उद्दण्डतापूर्ण मुस्कराने के लिए होंठ खोले ही थे कि उषा की तीखी नज़रों के आगे दबकर रह गया। उषा इस कोशिश में ही थी कि कोई ऐसी बात करे जिससे अशोक को लज्जित कर दे। हर बार भेंट होने पर वह उसे निरुत्तर कर देती थी। "अशोक" आखिर उसने मौन तोड़ा, "तुम कब से आर्ट में रुचि लेने लगे ?"

अशोक कुछ झेंप-सा गया। उषा को उत्तर न देकर वह मिसेज़ मनचन्दा से पूछने लगा, "आप को मेरा अनुरोध पसन्द है न आंटी ?"

"अच्छा मैं कोशिश करूँगी। तो फिर ऐसा है कि मैं किसी दिन डिनर कर दूँगी और उन्हीं लोगों को न्योता भेजूँगी जो आर्ट में रुचि रखते हों। क्या खयाल है ?"

"बिल्कुल ठीक।"

"अशोक, उषा ने तुम से कुछ पूछा है, उसे जवाब क्यों नहीं देते ?" कहकर मिसेज़ मनचन्दा अर्थपूर्ण भाव से मुस्कराई।

अशोक ने अवज्ञापूर्ण भाव से उषा की ओर देखा। "क्या जवाब दूँ !" वह कुर्सी से उठते हुए बोला, "उषा को तो बेमतलब ही हर किसी की टाँग खींचने की आदत है। अच्छा, फिर मिलेंगे। इस वक्त मैं जल्दी में हूँ !" वह चला गया।

जब तक अशोक रेस्तराँ के दरवाज़े से वाहर नहीं चला गया, उषा की नज़रें उस पर ही बनी रहीं। फिर कुछ सोचकर हँसते हुए उसने मिसेज़ मनचन्दा से कहा, "अशोक ने एक्टरों जैसा हुलिया बना लिया!"

"ऐसा बुरा तो नहीं लग रहा था।"

"मुझे तो बहुत बुरा लगा।"

मिसेज़ मनचन्दा अशोक और उषा के आपसी सम्बन्ध को जानती है। इसलिए उसने उषा को इस वात के लिए नहीं कोसा कि उसने अशोक की खिल्ली क्यों उड़ाई? उसे अकस्मात् कुछ याद आया जो वह जानती थी कि उषा के लिए हितकर नहीं, फिर वह छिपाना भी नहीं चाहती थी। "उषी!" उसने कहा, "मुझे विश्वस्त सूत्रों से पता चला है कि अशोक से नीना की मंगनी के लिए कोशिशें हो रही हैं!"

सुनते ही उषा अपने भीतर सिहर-सी गई। "झूठ!" उसने दृढ़ता के स्वर में कहा।

"लेकिन यह बिल्कुल सच है!"

उषा ने झुंझलाहट से भर कर कहा, "आपने मुझे पहले क्यों नहीं वताया? मैंने अशोक को बधाई दी होती!"

"यह तुम क्या कह रही हो उषी?"

उषा अपनी धुन में बोलती चली गई, "मैं उसे यह भी कहती कि कुछ देर पहले उसकी मंगेतर के दर्शन हुए थे और इस मंगनी की खुशी में उसने वहुत ही अच्छे वुंदे पहन रखे थे!"

"उषी!" मिसेज़ मनचन्दा ने ऐसे ही उसे छेड़ते हुए कह दिया, "मेरा खयाल है तुम बुँदों-जैसी चीज़ को कभी महत्त्व नहीं देती?"

"मेरे महत्त्व न देने से क्या है? मैं तो अशोक के हित की वात कह रही हूँ। नीना ने बताया तो था कि असली मोतियों के हैं!"

मिसेज़ मनचन्दा उसके व्यंग्य को समझे बिना ही वोल पड़ी, "हाँ-हाँ, असली मोतियों के थे! वह असली मोतियों के ख़रीद सकती है।"

"वह बहुत कुछ खरीद सकती है!" उषा के स्वर में अब झल्लाहट के साथ तलखी भी थी। "मैं अशोक की पसंद की बहुत तारीफ करती हूँ।"

"और नीना की पसंद की ?" मिसेज़ मनचन्दा ने पूछ लिया ।

उषा एक क्षण के लिए अचकचा गई । अशोक के प्रति अपनी उपेक्षा को दबाकर उसने गोलमोल-सा उत्तर दिया, "मुझे नीना की पसंद से कुछ भी लेना-देना नहीं ।"

"क्यों ?"

"आप बहुत प्रश्न पूछती हैं सरोज दीदी;" उषा ने उत्तर दिया, "लेकिन बहुत-सी बातें होती हैं जिनका उत्तर नहीं होता ।"

मिसेज़ मनचन्दा कुछ क्षण हँसती रही, फिर बोली, "उषी, यह सच है कि नीना और उसके घरवालों के साथ मेरे सम्बन्ध मित्रों जैसे हैं लेकिन मेरे मन को यह बात जँचती नहीं कि अशोक और नीना की शादी हो जाए । क्यों ?"

"मैं कुछ नहीं जानती !" कहकर उषा कुर्सी से उठ बैंठी ।

मिसेज़ मनचन्दा भी उठ बैठी । जब वे बाहर आईं तब शाम काफी गहरा गई थी । कनाटप्लेस की भीड़ तब पहले से भी ज्यादा थी और नीली बत्तियाँ भी जलने लगी थीं ।

□ दो

अगले दिन कश्मीरी गेट आ जाने पर उषा बस से उतरी और फिर वह एक किताबों वाली दुकान में चली गई । कुछ मिनट बाद जैसे संयोगवश ही अशोक भी वहाँ चला आया और उसने मिलते ही कहा, "अच्छा हुआ तुम मिल गईं । मैं तुम्हारे घर ही जा रहा था ।"

"क्यों ?"

"अंकल से मिले बहुत दिन हो गए । मेरा खयाल है अब वे पूरी तरह स्वस्थ होंगे ।"

उषा हल्के-से मुस्करा कर सोचने लगी कि अशोक सिर्फ बन रहा है। यह उसकी पुरानी आदत है और इसे वह एक अरसे से जानती है। उत्तर न देकर उसने अपनी नज़रें किताबों के रैक की ओर कर लीं और शीर्षक देखने लगी।

"मुझे भी एक किताब लेनी है···जोड की 'दा काउंटर अटैक फ्राम दा ईस्ट'।" कहकर अशोक किसी और रैक के सामने जा खड़ा हुआ।

इस कार्रवाई में उन्हें दस-पन्द्रह मिनट लग गए। दुकान से निकल कर वे थोड़ी देर फुटपाथ पर रुके रहे। सड़क पार करके उन्हें दूसरी तरफ जाना था लेकिन ट्रैफिक था कि समुद्र की लहर की तरह उमड़ता और दौड़ा जा रहा था। अशोक ने पूछ लिया, "तुम अपनी गाड़ी में आई हो या टैक्सी में ?"

"मैं बस में आई थी।"

"तब ठीक है। मैंने अपनी गाड़ी पोलिटेकनिक के पास पार्क कर रखी है। तुम्हें वहाँ तक पैदल चलने में असुविधा तो होगी ?" स्पष्ट ही अशोक ने व्यंग्य किया था।

उषा समझ गई। बोली, "नहीं, मुझे थोड़ा-सा पैदल चलने में असुविधा नहीं होगी। मैं नीना नहीं हूँ!"

"आई सी!" क्षण-भर ठिठकती-सी मुद्रा में अशोक ने उसे देखा, फिर हँसते हुए बोला, "उषा, तुम उससे ईर्ष्या क्यों करने लगी ?"

उसके आक्षेप को जैसे अनसुना करके उषा ने कहा, "कान्ग्रेचूलेशन्ज़! सुना है तुम्हारी उससे मंगनी हो रही है।"

"किससे सुना ?"

"सरोज से। अब तुम यह कहोगे कि उसने झूठ बोला है ?"

"यह झूठ तो नहीं," अशोक ने गंभीरता से कहा, "लेकिन इसे सच बनने में अभी बहुत देर लगेगी या शायद यह कभी सच ही न बने।"

"लेकिन अशोक," उषा बोली, "तुम्हें उससे अच्छी लड़की कभी नहीं मिल सकती। उसके पिता लखपति हैं और तुम्हारे डैडी उनके साथ कारोबार भी करते हैं।"

"मुझे इन बातों का पता है उषा!"

सड़क का ट्रैफिक कुछ क्षण के लिए थम गया था। वे दोनों तेज-तेज चलकर सड़क पार कर गए।

थोड़ी देर बाद जव अशोक कार चला रहा था तब उषा उसके पास ही अगली सीट पर जा बैठी थी। लेकिन उसके चेहरे में रुष्टता का भाव था और वह नहीं चाहती थी कि अशोक उससे कोई भी बात करे।

जब अजमेरी गेट पीछे रह गया और उषा का कठिन-सा मौन अशोक से वर्दाश्त न हो सका तो उसने पूछ लिया, "क्या सोच रही हो ?"

"कुछ नहीं !" रूखा-सा उत्तर देकर उषा ने अपने किताबों वाले पैकेट से एक किताब लेकर अपने सामने रख ली और उसके पृष्ठ उलटने लगी।

होंठों में दबी-सी मुस्कराहट लाकर अशोक ने पूछा, "आजकल बहुत पढ़ाई होती है क्या ?"

"तुम्हें इससे क्या ?"

"हाँ-हाँ, मुझे तो कुछ नहीं, लेकिन नसीहत के तौर पर मैं इतना ही कहूँगा कि तुम अपने गाँव जाकर काफी अच्छी तरह पढ़ सकती हो।"

यह सुनकर उषा विवश थी कि किताब से नज़रें उठाकर उसकी ओर देखे—देखे नहीं वल्कि घूरे। वह जानती थी कि अशोक ने किस मनोभाव में आकर उसे गाँव चले जाने की नसीहत की है। सिर्फ इसलिए कि तब उसकी होने वाली मंगेतर उसे गँवार कह सकने का दुस्साहस कर सके। लेकिन सच्चाई तो कुछ और है। उसने शिक्षा-दीक्षा से सभी पुराने संस्कारों से अपने को मुक्त कर लिया है और अब वह एक प्रबुद्ध युवती बन चुकी है···प्रबुद्धता भी ऐसी जो पुरुषों को नाकों चने चबा दे। अब रही नीना की बात ? सेंट बीड्ज़ की सीनियर कैंब्रिज होने के बावजूद वह एक मूर्ख और दम्भी-सी युवती है। यह सोचकर और अशोक की मूर्खता से कुछ और भी आश्वस्त होकर वह हँसने लगी। अशोक ने पूछ लिया, "क्या बात है ?"

"मेरा खयाल है नीना को या फिर तुम्हें ही गाँव चला जाना चाहिए। वहाँ का वातावरण तुम दोनों को जरूर माफिक आ सकता है।"

सुनते ही अशोक कुछ भावुक-सा हो गया, "मुझे जरूर जाना चाहिए। मैं इस शहर के शोर और बकवास से उकता गया हूँ। जिधर देखो जल्दबाजी,

अफ़ड़ातफड़ी और परेशानी। सभी पैसे की दौड़ में भाग रहे हैं और करीब-करीब पागल हो चुके है!"

कदाचित् अशोक आगे कुछ और भी कहता अगर उषा ने उसे बीच में ही टोक न दिया होता, "अशोक, ये तुम्हारे अपने विचार हैं?"

अशोक के भीतर क्षुब्धता की टीस-सी हुई। उसने कहा, "उषा, तुमने आज तक मेरी बातों को, मेरे व्यक्तित्व को कभी गम्भीरता से लिया ही नहीं!"

"लेकिन मैं चाहती हूँ कि तुम ऐसी बातें मेरे आगे हरगिज़ न किया करो। ...तुम्हारे भले के लिए ही कह रही हूँ।"

"मेरे भले के लिए? यह कैसे?" अशोक ने पूछा।

उषा बोली, "तुम एक लखपति आदमी के दामाद बनने वाले हो। इसलिए एस्केप की बातें तुम्हारे मुँह से अच्छी नहीं लगतीं।"

अशोक ने कोई उत्तर न दिया। वह तब तक खामोश होकर कार चलाता रहा जब तक बारहखंभा रोड नहीं आ गई।

उषा के पिता ठाकुर देवीसिंह का बँगला यहीं पर है। बँगले के आगे और दोनों ओर एक उद्यान भी है। लेकिन यह सच है कि बँगले और उद्यान को देखकर लगता है जैसे एक अरसे से इनकी कोई देखभाल नहीं करता। बाहर का पलस्तर कई जगहों से उखड़ गया है और बदनुमा धब्बे से उभर आए हैं। खिड़कियों और दरवाज़ों पर बरसों से पेंट नहीं हुआ। ऐसी ही बुरी हालत उद्यान के पेड़-पौधों की है।

असल में ठाकुर देवीसिंह की आर्थिक स्थिति काफी गिर चुकी है। वह ऊँचे राष्ट्रीय विचारों का व्यक्ति है और स्वतन्त्रता के आन्दोलन में उसने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। दो-तीन बार जेल भी हुई। वह चाहता तो और लोगों की तरह अपनी कुर्बानियों की कीमत वसूल कर सकता था, पर देश की राजनीति का जो रूप उसके सामने है इसने उसे निरुत्साहित-सा कर दिया है। कई बार यह सोचकर, उसे दुख होता है कि आज़ादी से पहले जो राजनयिक सत्ता उसके अपने वर्ग के हाथ में थी अब एक ऐसे वर्ग के हाथों में आने लगी है जिसे अपनी पूंजी का घमण्ड है और जिसका परम्परा के साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं।

कैसे-कैसे स्वार्थी और निम्न मनोवृत्ति के लोग राजनीति में घुसते चले आ रहे हैं। उसके दिल में उन लोगों के प्रति भी गहरी उपेक्षा का भाव है जो कल तक तो टोडी थे, लेकिन आज देशभक्त बने फिरते हैं। ऐसे ही लोगों में अशोक का पिता राव हरीसिंह भी है। किसी ज़माने में वे दोनों बहुत ही गहरे दोस्त रहे हैं और बरसों तक इसी बँगले में भी साथ-साथ रहते रहे, लेकिन राव साहब अपनी अंग्रेज़-भक्ति और टोडीपन को छोड़ न सके।

जब अशोक उषा के साथ वहाँ आया तब वह उषा के पिता के कमरे की ओर ही गया। लम्बे से कारीडार में आखिरी कमरा उसका था।

ठाकुर उस समय अपने कमरे में ही लेटा हुआ था। कुछ दिन पहले की बीमारी ने उसे काफी निढाल-सा कर दिया था। उसके बाल सफेद और अटपटे-से हैं। चेहरा पतला, लेकिन विचारशीलता के आकर्षण से भरा हुआ और खादी के वस्त्र पहने होने के कारण उसके व्यक्तित्व में स्वच्छता-सी झलकती है। अशोक ने दरवाजे की देहलीज़ पर खड़े हो उसे नमस्ते कही।

"आओ अशोक," वह गावतकिए के सहारे थोड़ा-सा उचक कर बैठ गया और मुस्कराते हुए अशोक की ओर देखा।

अशोक ने उसके निकट आ एक कुरसी पर बैठते हुए पूछा, "अब आपकी तबीयत कैसी है?"

"अब फ्लू तो नहीं रहा, लेकिन कमज़ोरी काफी है।"

अशोक कुछ क्षण उसके चेहरे की ओर देखता रहा। लगता था बीमारी ने उस चेहरे का बहुत-सा खून चूस लिया हो। "अंकल!" अशोक एकाएक जैसे दार्शनिक की-सी भाव-मुद्रा में कहने लगा हो, "ये बीमारियाँ भी अजीब हैं! बैठे-बिठाए आ जाती हैं और फिर कई दिनों तक हमें चारपाई से उठने ही नहीं देतीं!"

ठाकुर कुछ सोचकर मुस्कराने लगा। अशोक के शब्दों में भावुकता की ध्वनि उसे अच्छी ही लगी और इस तरह की भावुकता उसके पिता राव साहब की बातों में कभी महसूस उसे नहीं होती। उसने पूछा, "राव साहब कैसे हैं?"

"आप जानते ही हैं उन्हें डायब्टीज़ है। दूसरे-तीसरे दिन उन्हें इन्जेकशन लगवाना पड़ता है !"

"हम जो गाँव में पले और बड़े हुए उन्हें शहर की आबोहवा माफिक नहीं आती।" ठाकुर यह कहकर अपने अटपटे-से बालों में हाथ फेरने लगा।

"लेकिन अंकल !" अशोक ने कहा, "मेरे डैडी पर बिज़निस का कुछ ऐसा भूत सवार हुआ है कि इसके आगे वे कुछ सोचते ही नहीं। अब वे बजाज साहब के साथ एक और भी बड़ा बिज़निस करने की सोच रहे हैं और इस मतलब के लिए उन्होंने अपनी रामपुर वाली ज़मीन को बेच देने का भी सौदा कर लिया है।"

ठाकुर की मुद्रा एकाएक शोकाविल-सी हो गई। कहने लगा, "यह ठीक नहीं हुआ। मेरा खयाल है और सभी गाँवों को छोड़कर सिर्फ उसी गाँव की थोड़ी-सी ज़मींदारी उनके पास रह गई है। अगर यह भी न रही तो फिर उनके पास क्या रह जाएगा ? कोई उन्हें राव साहब भी कहना पसन्द नहीं करेगा। यह तो उन्हें समझ लेना चाहिए !"

अशोक ने ठाकुर देवीसिंह के शब्दों पर किसी तरह की टिप्पणी करना उचित नहीं समझा हालाँकि ज़मींदारी के सम्बन्ध में उसके विचार कहीं अधिक प्रगतिशील थे। उसने कहा, "अंकल, मैंने डैडी से कई बार कहा है कि उस ज़मीन की देखभाल का काम मुझे सौंप दें। मैं एक ट्रैक्टर भी ले लूँगा। लेकिन वे मुझे अपने बिजनिस में घसीट लेने की कोशिश में हैं। कई बार हमारा झगड़ा भी हुआ है। मुझे बिजनिस से नफ़रत है। बिज़निस में पड़ने की बजाए मैं ज़िन्दगी-भर बेकार रहना ज्यादा पसन्द करूँगा !"

"तुम एम० ए० पास हो अशोक !"

"लेकिन अंकल, एम० ए० तक मैंने जो कुछ भी पढ़ा वह मुझे बिल्कुल बेकार-सा लगता है, लेकिन जो इन दिनों पढ़ रहा हूँ वह मेरे लिए काफी महत्त्व का है।"

ठाकुर ने पूछ लिया, "क्या पढ़ रहे हो ?"

"रस्किन, थोरो, टालस्टाय···और भी बहुत कुछ पढ़ रहा हूँ। मुझे एक

अन्तर्दृष्टि-सी मिली है और मुझे यह जिन्दगी व्यर्थ-सी नहीं लगती।" यह कहते वक्त अशोक की मुखमुद्रा काफी आकर्षक-सी हो गई थी। दूसरी ओर ठाकुर देवीसिंह भी उसे प्रशंसापूर्ण नज़रों से देखने लगा था।

एकाएक कुछ याद आ जाने पर अशोक ने अपनी रिस्टवाच पर नज़र डाली। साढ़े चार हुए थे। चार बजे काफीहाउस में उसने अपने आर्टिस्ट दोस्त अजीत से मिलने का वचन दिया था। वह चले जाने के इरादे से कुरसी से उठ खड़ा हुआ। "मुझे कुछ काम है अंकल! मैं कल या परसों फिर आऊँगा!"

"लेकिन अभी तुमने चाय-पानी तो पिया ही नहीं?" ठाकुर का स्वर कुछ बोझिल था। वह कभी सोच भी न सकता था कि अशोक इतनी जल्दी चले जाने का निश्चय कर लेगा।

अशोक ने उत्तर दिया, "अब मैं सीधा काफीहाउस ही जा रहा हूँ।" वह दरवाज़े की ओर जाने लगा।

"लेकिन सुनो! उषा से नहीं मिलोगे?" ठाकुर ने पीछे से आवाज़ दी।

"उससे मिल लिया अंकल! मैं उसके साथ ही आया था।" यह कहते वक्त अशोक के होंठों पर एक फीकी-सी मुस्कराहट थी जिसे ठाकुर समझ लेने में असमर्थ था। वह बस तेज़-तेज़ चलकर कमरे से बाहर आ गया।

कुछ मिनट बाद उषा चाय की ट्रे लिए वहाँ आई। उसकी नज़रें अशोक को तलाशती-सी लगीं। उसने पूछ लिया, "अशोक कहाँ है?"

"वह तो चला गया और चाय के लिए रुक नहीं सका।"

"क्यों चला गया?"

"कहता था काफीहाउस जा रहा हूँ।"

उषा सचमुच ही खीझ उठी थी। वह और अधिक छटपटाते हुए बोली, "काफीहाउस!···जहाँ सिरफिरे लोग जाते हैं! उसने अपने लिए ठीक ही जगह चुनी है!"

स्वाभाविक ही था कि ठाकुर हँसना शुरू कर देता। वह अपनी बेटी की मनःस्थिति को समझ रहा था।

उषा तिपाई के आगे बैठकर चाय बनाने लगी। वह अपने को उस बोझिल

विचार से मुक्त कर लेना चाहती थी जो कल शाम से उसके अन्तर में काँटे की तरह चुभ रहा था। उसने कहा, "पापा, मुझे पता लगा है कि अशोक की मंगनी जयचन्द बजाज की लड़की से हो रही है!"

ठाकुर एकाएक चौंक-सा पड़ा, "अपने अशोक की मंगनी?"

"हाँ-हाँ।"

"और जयचन्द की लड़की से?"

"हाँ!" उषा ने स्वीकृति में गरदन भी हिलाई।

"असम्भव! यह कैसे हो सकता है?" यह कहते वक्त ठाकुर की मुद्रा अजीब डाँवाडोल-सी थी।

उषा नहीं जानती थी कि उस बात की यह प्रतिक्रिया होगी। किसी तरह स्थिति को सम्भाल लेने की नीयत से उसने कहा, "आप यूँ ही परेशान हो रहे हैं डैडी!"

लेकिन ठाकुर अपने आक्रोश को दबा लेने में असमर्थ था। "मुझे लगता है राव साहब का दिमाग ठिकाने में नहीं। उसे न तो अपने समाज की कुछ फिक्र है और न पुरानी दोस्ती की शरम! मैं नहीं जानता था कि वह इतना कारोबारी-सा आदमी हो जाएगा!"

उषा भी यही समझती थी कि रुपए के लिए ही अशोक का सम्बन्ध नीना से हो रहा है और उसने सोचा कि ऐसा सम्बन्ध न सामाजिक और न नैतिक दृष्टि से ही ठीक है। लेकिन···? उसके मन ने प्रश्न किया कि वह इस इसमें कर ही क्या सकती है? उसे नीना से ईर्ष्या करने का भी अधिकार नहीं, क्योंकि वह उसकी जगह लेना कभी पसन्द नहीं करेगी। कुछ क्षण बाद उसने अपने पिता को यह कहते हुए सुना, "उषी! ये जो नए कारोबारी आदमी आगे आने लगे हैं··इनमें, मैं सच कहता हूँ, ऊँचे चरित्र और संस्कृति की कमी है। किसी-न-किसी दिन ये लोग हमारी सत्ता को बिल्कुल तबाह कर देंगे। मेरा खयाल है मुझे अशोक के डैडी को फोन करना चाहिए।"

यह सुनकर उषा सचमुच घबरा गई। उसे खयाल आया कि पिता फिजूल ही इस मामले में हस्तक्षेप करना चाहते हैं। राव साहब उनके हस्तक्षेप का यह

मतलब भी ले सकते हैं कि वह अशोक के साथ उषा का सम्बन्ध जोड़ लेने के लिए ही यह सब कह रहे हैं। इससे अधिक अपमानजनक बात और दूसरी नहीं हो सकती। "पापा !" वह अपने शब्दों में भीतर की बहुत-सी कड़वाहट घोलती हुई बोली, "वे लोग जाएँ भाड़ में ! हमें क्या ?"

"तू कुछ नहीं समझती उषी !" अपने उत्तर में ठाकुर ने सिर्फ इतना ही कहा। उषा ने चाय की प्याली उसे दे दी और वह कुछ सोचते हुए बहुत ही छोटे-छोटे सिप लेकर पीने लगा। उषा के चेहरे में पश्चात्ताप की-सी मुद्रा अवश्य देखी जा सकती थी। वह जानती थी कि पिता राव साहब से बातचीत करने के निश्चय को किसी तरह बदल देने को तैयार नहीं होंगे···लेकिन इस बात-चीत में वह उन्हें इस सीमा तक ही जाने देगी जिससे अशोक को उस अनैतिक सम्बन्ध से बचाया जा सकता है। लेकिन उससे आगे कदापि नहीं···!

अगले दिन पिता-बेटी खाने की मेज़ पर जब दोपहर का भोजन कर रहे थे तब नौकर भीमू ने आकर सूचना दी कि राव साहब आए हैं। उषा ने पूछती-सी नज़र से अपने पिता की ओर देखा। ठाकुर उसके आशय को भाँप कर बोला, "लगता है राव साहब अपनी मर्ज़ी से ही आया है। मैंने उसे फोन नहीं किया था।" वह उसी क्षण भोजन को बीच में ही छोड़कर कारीडार में चला गया।

राव हरीसिंह ने अपनी कार पोर्च में खड़ी की और फिर वह अन्दर चला आया। वह सूट-बूट पहने था। उसके चेहरे और हुलिए को देखकर किसी को यह अन्दाज़ नहीं हो सकता था कि वह ज़मींदार घराने से सम्बन्ध रखता है। करीब आकर उसने अपने पुराने दोस्त से हाथ मिलाया और हाथ को आवश्य-कता से अधिक दबाते हुए बोला, "मुझे अफसोस है मैं पहले न आ सका !"

उषा भी स्वागत के लिए कारीडार में चली आई थी। "नमस्ते अंकल !" उसने जैसा कि उसकी आदत थी ढीले हाथों से नमस्ते की और फिर वह संकोच का-सा अभिनय करती हुई डाइनिंग-रूम की ओर लौट गई। राव हरीसिंह अच-कचाया-सा उसे देखता रहा। उसे अनुभव हुआ जैसे कोई चौंधियाता-सा तेज़ प्रकाश उसकी नज़रों के आगे भभक कर अलोप हो गया हो। "बिटिया !" यह शब्द उसके होंठों में आकर उलझ-सा गया और जब उसने देवीसिंह को

ड्राइंग-रूम की ओर न जाकर आगे जाते हुए देखा तो उसने कह दिया, "कहाँ जा रहे हो ठाकुर ? ड्राइंग-रूम में बैठते हैं।"

"खाना नहीं खाओगे ? मेज़ पर रखा है।"

"मैंने तो खा लिया। तुम खत्म कर लो। मैं तब तक ड्राइंग-रूम में बैठता हूँ।"

देवीसिंह ने आग्रहपूर्वक कहा, "अच्छा तो फिर चाय या दूध पी लेना !"

"इस वक्त कुछ नहीं। थोड़ी देर बाद मैं कॉफी पी लूंगा।" यह कहकर हरीसिंह ड्राइंग-रूम की ओर बढ़ गया।

"मैं सिर्फ पाँच मिनट में आया।" देवीसिंह ने उससे कहा। एक लम्बे अरसे वाद पुराने मित्र को वहाँ आया देखकर वह अपने भीतर काफी उल्लसित-सा महसूस कर रहा था। उसे एकाएक महसूस हुआ कि राव साहब के आगमन के पीछे कोई विशेष मनोरथ अवश्य है।

देवीसिंह का ड्राइंग-रूम पुरानी वजह-कतह का ही चला आ रहा था। यह राव साहब ने एक नजर में ही भाँप लिया। वही बरसों पुराने भारी-भरकम सोफों के सैट पड़े हैं जिनका रँग किरमची है और उसी रँग का ईरानी कालीन भी बिछा रखा है जिसमें छोटे आकार के फूलों का डिजाइन है। इसी तरह खिड़कियों और दरवाज़ों पर वही बरसों पुराने मोटी टेप्सट्री के परदे लटक रहे हैं : और मैंटलपीस ?…उस पर तो जैसे दुनिया-भर का कूड़ा-कड़कट जमा किया गया हो, पीतल के फूलदान, सींग के बगुले, हाथीदाँत के खिलौने और न जाने क्या-क्या।…राव हरीसिंह ने यह सब देखकर वितृष्णा से नाक-भौं सिकोड़ लिए।

सहज ही उसका ध्यान मैंटलपीस पर रखी एक फोटो ने आकर्षित किया। वह सोफे से उठकर इसके पास चला आया। उस फोटो में उसने अपने को भरपूर जवानी के दिनों में हंटिंग यूनीफार्म पहने और हाथ में बँदूक लिए खड़े देखा। साथ में देवीसिंह है बिल्कुल वैसी ही पोशाक में और उसी मुद्रा में बंदूक थामे हुए।…वह भारी आश्चर्य में था। वह होंठों में धीमे-से बुदबुदाया—पता नहीं ठाकुर ने इस फोटो को कहाँ से खोज लिया है ! वह फोटो उसे पहले मैंटल-

पीस पर दिखाई नहीं दिया था।

जवानी के दिनों की वह आकृति कठिनाई से ही पहचानी जाती थी। उन दिनों वह कितना रोबदाब वाला और बलिष्ठ था! लेकिन अब कितना परिवर्त्तन आ गया है! लगता है समय ने उसकी सारी शक्ति और कशिश को तहस-महस कर दिया हो!...लेकिन एक दुखद बात और भी है, उसे ऐसे ही विचार आया। पहले वह और ठाकुर कितने गहरे दोस्त थे। किन्तु अब उनके बीच एक दरार-सी पड़ गई है। समय-गति के साथ-साथ सिर्फ शरीर ही नहीं टूटता, मन की भी दुर्दशा हो जाती है।

उसने जेब से पाइप निकाल कर सुलगा लिया। फोटो में अंकित अतीत की स्मृति ने उसे सचमुच झटका-सा दिया था और उसके अन्तर में दुख की लकीर-सी खिच गई थी।

सोचमग्न-सी मुद्रा में वह अपना पाइप पीता रहा। जभी ठाकुर अन्दर आया तो उसने पूछ लिया, "ठाकुर, वह मैंटलपीस पर रखा हुआ फोटो तुम्हें कहाँ से मिला?"

देवीसिंह समझ गया कि राव साहब का संकेत किस फोटो की ओर है। उसने उत्तर दिया, "कुछ दिन हुए अलमारी की सफाई करवा रहा था। वहीं पुराने कागजों में पड़ा मिल गया।"

"उस फोटो को देखकर मैं कुछ उदास-सा हो गया हूँ।"

"क्यों?"

"पहले मैं जवान था, लेकिन अब मैं बुढ़िया गया हूँ और मुझे डायब्टीज भी है।"

"राव साहब!" देवीसिंह ने हँसते हुए कहा, "वक्त के साथ कौन बूढ़ा नहीं होता! तुम बिल्कुल बच्चे जैसी बात कह रहे हो।"

कुछ क्षणों तक चुप्पी छाई रही। राव हरीसिंह अपने भीतर कुछ विमर्श-सा करता दिखाई दिया। फिर उसने ठाकुर से कहा, "मैं तुमसे एक जरूरी बात करने आया हूँ।" और यह कहकर वह प्रयत्नपूर्वक मुस्कराने भी लगा।

"हाँ-हाँ।" ठाकुर ने उत्तर दिया। लेकिन उसने सोचा अगर हरीसिंह ने

अशोक और जयचन्द बजाज की लड़की से बनने वाले सम्बन्ध के विषय में उसकी राय तलब की तो परिस्थिति निश्चित रूप से कठिन हो जाएगी। कुछ मिनट पहले खाने की मेज़ पर बैठे हुए उसने हरीसिंह के आगमन के मनोरथ को यही अर्थ दिया था।

राव साहब ने एक ही साँस में पाइप के दो-तीन कश लिए। फिर कहा, "मैं जानता हूँ तुम मुझसे नाराज़ रहते हो और तुमने मेरे विचारों को कभी पसन्द नहीं किया। लेकिन आदमी की अपनी मजबूरियाँ होती हैं!"

इससे पहले कि देवीसिंह कुछ कहे, राव अपने स्वर को और अधिक प्रभावपूर्ण बनाते हुए बोला, "समझ नहीं आता मैंने अपने स्वार्थ की खातिर तुम्हारी दोस्ती से हाथ क्यों खींच लिया? मेरी अक्ल पर सचमुच ही पर्दा पड़ गया था। ठाकुर, क्या हम पुरानी दोस्ती को फिर से उठा नहीं सकते?"

"उठा सकते हैं!" ठाकुर ने उत्तर दिया, "वह कहावत है न? अगर सुबह का भूला शाम को घर आ जाए तो उसे भूला नहीं कहते।"

"सुनो!" राव हरीसिंह और अधिक विलम्ब न किए असली बात पर आ जाना चाहता था। "पता नहीं तुम्हारी अपनी राय क्या है, लेकिन मैंने इस मसले पर काफी सोच-विचार किया है कि आज की दुनिया में हम थोड़ी सी ज़मीन-जायदाद के भरोसे अच्छी तरह साँस नहीं ले सकते। मेरा तो इस सबसे मन खट्टा हो गया है। यह ज़मीन-जागीरदारी सब बकवास है! जितनी जल्दी इससे पिंड छूट जाए अच्छा है!"

इस विषय पर बातचीत देवीसिंह को अच्छी नहीं लगी। "तो क्या किया जाए?" उसने पूछ लिया। स्वर में हल्की-सी खीझ थी।

"ठाकुर, मेरी बात ध्यान से सुनो," हरीसिंह बोला, "तुम्हें पता ही है आजकल तो बिज़निस का डंका बज रहा है। कल तक जो मामूली-सा आदमी था आज वह लखपति बन गया है। आज जिसके हाथ में पैसा है हकूमत भी उसके हाथ में ही है। मेरे पास एक स्कीम है और यह स्कीम जयचन्द बजाज ने बनाई है।...एकदम ग्रांड!"

"क्या?"

"स्कीम यह है कि हम सब मिलकर एक पब्लिक फीनाँस लिमिटेड बनाएँगे। इसके लिए हमें पचास लाख रुपयों की जरूरत पड़ेगी।"

"पचास लाख ?"

"तुम सुनते जाओ !" हरीसिंह पाइप का लम्बा-सा कश खींचते हुए बोला, "इस कन्सर्न के दस डायरेक्टर होंगे जो एक-एक लाख की पूँजी लगाएँगे। बाकी चालीस लाख रुपए शेयर्ज़ बेचकर पब्लिक से इकट्ठे किए जाएँगे। मैं चाहता हूँ तुम्हारा नाम भी दस डायरेक्टरों में एक हो !"

"लेकिन मेरे पास तो···।"

"तुम यही कहना चाहते हो न कि फूटी कौड़ी भी नहीं। लेकिन ज़मीन तो है जो बेची जा सकती है और जिसे अब बेच ही देना चाहिए। एक लाख की पूँजी लगाने वाले को हर साल बीस हजार रुपए जरूर मिल जाएँगे। क्यों ?"

यह सब सुनते वक्त देवीसिंह के भीतर क्रोध रिसता रहा था। उसने कहा, "राव, मैं नहीं जानता था कि तुम मेरे साथ इस तरह की घटिया कारोबारी किस्म की बातें करने आए हो !"

"मैं तुम्हारे भले के लिए ही कह रहा हूँ। ज़मीन बेच दो।"

"ऐसी बात···।" ठाकुर देवीसिंह एक क्षण रुका रहा। वह यह कहना चाहता था कि ऐसी बात कहते हुए तुम्हें शरम नहीं आती···लेकिन उसने जो कहा वह इतना अपमानजनक नहीं था, "ऐसी बात तुम्हें बिल्कुल नहीं सोचनी चाहिए। मेरे अन्दर तुम्हारी तरह अमीर बन जाने की ज़रा भी लालसा नहीं।"

तभी उषा ट्रे में कॉफी लिए आई। अब उसने अपने बालों का सादा-सा जूड़ा बना लिया था जो ठीक गरदन के पीछे न होकर तनिक बाईं ओर था। इस नए प्रसाधन ने उसके चेहरे के आकर्षण को निश्चय ही बढ़ा दिया था।

अपने पिता और राव साहब की बदली हुई मुद्राओं को देखकर वह यह अनुमान कर सकती थी कि उन दोनों में अवश्य ही कोई झगड़ा हुआ है और उस झगड़े का कारण भी समझ लेने में उसने देर नहीं की। वह कॉफी देकर तत्क्षण ही वहाँ से खिसक जाना चाहती थी।

जब वह पलट कर जाने लगी तो राव हरीसिंह ने पूछ लिया, "उषा, मुझ-

से नाराज हो क्या ?"

उषा ने ठिठक कर मुस्कराते हुए उसकी ग्रोर देखा। वह बोली, "ग्रंकल, भला मैं ग्रापसे क्यों नाराज़ होना चाहूँगी ?"

"मैं यह कहना चाहता था," हरीसिंह कॉफी के दो-एक सिप भरते हुए बोला, "कि तुम्हें कॉफी बनाने का ग्रार्ट ग्राता है। बहुत ही ग्रच्छा टेस्ट है।"

"ग्राप ऐसे ही तारीफ कर रहे हैं ग्रंकल !" उषा का स्वर कितना साफ ग्रौर मधुर था ! कई बार उसके स्वर में संगीत की-सी ध्वनि ग्रा जाती थी।

हरीसिंह भी इससे प्रभावित हुए बिना न रह सका। उसे बातों में उलझाए रखने की नीयत से उसने कहा, "मैंने सुना है उषा, तुम बड़ों-बड़ों के कान कतर लेती हो।"

उषा को लगा कि ऐसा उन्हें ग्रशोक ने ही बताया होगा। उसने पूछा, "किससे सुना ग्रंकल ?"

"मेरा खयाल है एक दिन सरोज ही कह रही थी।"

"वह मुझे जाने क्यों इतना मानती है ? लेकिन इतना जरूर है मुझे ज़रा खरी-खरी ग्रौर सच्ची बात कहने में मज़ा ग्राता है !"

"ग्राई सी !" हरीसिंह हँसते हुए बोला, "खरी-खरी ग्रौर सच्ची बात कहना तो बीमारी होती है उषा, ग्रौर इस बीमारी का इलाज डाक्टरों के पास भी नहीं।"

"इलाज की जरूरत नहीं है ग्रंकल। इससे मेरा नहीं दूसरों का ही कुछ बिगड़ता है।"

"तुम काफी समझदार हो। मेरा खयाल गलत नहीं कि तुम ग्रपने ग्राइ-डियलस्टि विचारों से डैडी पर हो !"

ठाकुर देवीसिंह जो ग्रब तक इस बातचीत को उत्सकतापूर्वक ही सुन रहा था, बोला, "राव साहब, हमारी ग्राज की सन्तान हम पर बिल्कुल नहीं। ग्रशोक भी ग्रपने डैडी पर नहीं है।"

ग्रशोक की चर्चा ग्रा जाने पर राव हरीसिंह ग्रपने मानसिक ग्राक्रोश को दबा न सका, "ग्रशोक बिल्कुल ऊटपटांग होने लगा है। सारा दिन फ़िलासफ़ी

···गांधीवाद !···मेरे कारोबार में जरा भी रुचि नहीं लेता।"

यह सुनकर उषा मन-ही-मन क्षुब्ध अवश्य हुई। खुद अपने मुँह से वह अशोक का खण्डन कर सकती थी, लेकिन दूसरे के मुँह से यह उसे अच्छा नहीं लगता था।···उसने देखा राव हरीसिंह सोफे से उठने लगा है।

हरीसिंह ने कहा, "अब मैं चलूँगा ठाकुर ! मेरी स्कीम पर विचार करना। बहुत ही शानदार स्कीम है।"

ठाकुर देवीसिंह ने किसी तरह की हामी नहीं भरी। अपने पुराने दोस्त को पोर्च तक विदा देकर जब वह उषा के साथ कॉरीडार में जाने लगा तो वह बुदबुदाता हुआ बोला, "कितना अजीब वक्त आ गया है !"

उषा ने पूछ लिया, "पापा, तुम दोनों में कोई तकरार तो नहीं हुई ? जिस वक्त मैं कॉफी लेकर अन्दर आई तुम दोनों ने मुँह बुरा-सा कर रखा था।"

"अच्छा हुआ तू उस वक्त आ गई वर्ना हम जरूर उलझ पड़ते !"

"पापा !" यह कहते वक्त उषा का स्वर किसी मनोभाव से अवश्य खिंचा हुआ था, "कहीं आपने अशोक के होने वाले रिश्ते की चर्चा तो नहीं की ?"

उसका तो मुझे खयाल ही नहीं रहा। वह तो मेरे साथ बस एक कारोबारी-सी स्कीम ले बैठा। कहता है ज़मीन बेच दो और एक लाख की पूंजी लगाकर उनकी किसी स्कीम के डायरेक्टर बन जाओ। यह सुनकर मैं बहुत मुश्किल से अपने ऊपर जब्त कर सका !"

उषा कुछ सोचती-सी अपने पिता की ओर देखती रही। कुछ क्षण बाद उसने कहा, "यह ठीक है पापा ! आपको हरगिज बिज़निस में नहीं पड़ना चाहिए। हम मामूली जरूरतों के लोग हैं। हमारा गुजारा तो ठीक ही चल रहा है।"

"सवाल गुजारे का नहीं है उषी, सिद्धान्तों का है। चाहे मेरे पास गज-भर भी ज़मीन न रहे, लेकिन मेरा जो सोचने का ढंग बन चुका है उसे मैं कैसे बदल सकता हूँ। वह अपने कमरे के निकट आ कुछ क्षण ठिठका रहा, फिर उसने कहा, "मेरा खयाल है अब मुझे थोड़ी देर सुस्ता लेना चाहिए। सिर कुछ भारी-

सा हो रहा है ।"

"आप सो जाएँ डैडी !" इतना कह कर उषा अपने स्टडी-रूम की ओर जाने लगी ।

□ तीन

राव हरीसिंह ठाकुर के बँगले से निकल कर कनाटप्लेस की ओर लौट आया । उसे अपने मित्र के रवैए पर खेद ही हुआ था हालाँकि वह उसे कुछ फायदा पहुँचाने की गरज से ही उसके पास गया था ।

क्वींज-वे के चौराहे पर आकर उसे अपनी कार को दो-तीन मिनट के लिए रोक लेना पड़ा । उसके सामने बसों और कारों की लम्बी-सी कतार दौड़ रही थी । उसे एकाएक खयाल कि हिन्दुस्तान अब काफी अमीर होने लगा है । उस समय आसपास का वातावरण भी काफी शोख और चमकीला दिखाई देता था । पटरियों पर लोगों के हजूम आ-जा रहे थे और बेशुमार रँगों के लिबास आँखों को चौंधिया देते ।···उसे एक और खयाल आया कि दुनिया किस तेज़ी से बदल रही है । अब पीछे लौट जाना संभव नहीं और न ही अतीत को नए सिरे से खड़ा किया जा सकता है । तभी रास्ता खुल जाने की हरी बत्ती जल पड़ी । उसने कार को बाईं ओर मोड़ लिया जिस ओर सिंधिया हाउस है ।

सिंधिया हाउस में उसका दफ्तर है और जयचन्द बजाज जैसे अनुभवी और खुशमिज़ाज बिज़निसमैन की देखरेख में ही सारी कर्न्सन का काम चलता है । वह कर्न्सन का मैनेजिग डायरेक्टर भी है ।

दफ्तर दूसरी मंजिल पर है । इसलिए सीढ़ियों से होकर ही ऊपर जाना पड़ता है । इन सीढ़ियों पर ज्यूट मैटिंग भी बिछा ली गई है ताकि आने-जाने वालों को सुविधा रहे । सीढ़ियाँ बालकनी तक जाती हैं जहाँ एक निहायत ही

खूबसूरत-सा शीशे का दरवाज़ा हाथ लगाते खुल पड़ता है।

जब राव हरीसिंह अपने केबिन में जाने लगा तो बाहर स्टूल पर बैठा हुआ चपरासी अदब से खड़ा हो गया। मेज़ के सामने बैठते ही उसने घण्टी बजाई और उसी चपरासी के अन्दर आ जाने पर 'जी साब ?' के अनुरोध में आदेश दिया, "एक गिलास पानी !"

कुछ क्षण बाद एक सुन्दर-सी दिखने वाली युवती जो अपने नाक-नक्शे से काफी भली लगती थी उसके निकट आकर बोली, "अभी बजाज साहब का फोन आया था कि वे तीन बजे से पहले दफ्तर नहीं आ सकेंगे।"

उस युवती को वहाँ देखकर स्वाभाविक ही था कि राव हरीसिंह अत्यधिक आश्चर्य से भर उसे सिर से पाँव तक घूरने लगे। उसने पूछ लिया, "तुम कौन हो।"

"मैं यहाँ स्टैनो लगी हूँ और आज ही काम पर आई हूँ।"

राव हरीसिंह कुछ सोच में पड़ गया। वह यह समझ लेने में असमर्थ था कि एक खूबसूरत और जवान लड़की का स्टैनो के रूप में क्या काम हो सकता है। जयचन्द बजाज ने इस नौकरी के बारे में उससे कोई राय नहीं ली थी। फिर वह उस युवती से कुछ निजी प्रश्न पूछने लगा।

युवती ने बताया कि वह शरणार्थी है और विभाजन से पहले वे रावलपिंडी में रहते थे। उसके पिता दंगों में मारे गए। माँ है और वह भी नौकरी करती है। छोटे बहन-भाई स्कूल में पढ़ते हैं। उसने इसी वर्ष ही इन्द्रप्रस्थ कालेज से बी० ए० पास किया है।

"तुम्हारा नाम ?"

"सविता।"

यह सच है सविता को राव हरीसिंह के प्रश्नों से मानसिक कष्ट ही हुआ था। जब वह चली गई तो राव हरीसिंह अजीब-सी उधेड़बुन में उलझ गया था। भला कोई स्त्री आत्म-निर्भर होकर रह सकती है ? क्या यह युवती जो इतनी युवा और सुन्दर है इतने सारे आदमियों के बीच रह कर अपने चरित्र की रक्षा कर सकेगी ? यह सोचते वक्त उसे लगा कि वह अभी तक अपने पहले संस्कारों से मुक्त नहीं हो सका है और वह जो नया यथार्थ उसके समक्ष प्रकट होने लगा है

उसे वह पूरी तरह समझ लेने में भी असमर्थ है···।

तभी जयचन्द बजाज अन्दर आया। राव हरीसिंह के हाथ अपने हाथ में लेकर क्षमा-याचना के स्वर में बोला, "मुझे एक्सक्यूज करना भाई, मैंने आपको काफी इन्तजार करवाया है।"

"मुझे भी यहाँ पर आए दस मिनट से ज्यादा नहीं हुए!" हरीसिंह ने उत्तर दिया।

"फिर भी," जयचन्द उसके हाथ को किसी तरह भी छोड़ देने को तैयार नहीं था," मुझे अफसोस है! बेहद अफसोस! मैं पौने तीन बजे ही यहाँ पहुँच जाता, लेकिन रास्ते में अपनी जान-पहचान का एक अफसर मिल गया। उसकी मिसेज़ भी उसके साथ थी। मुझसे कहने लगी···मिस्टर बजाज, आपकी तो कनाटप्लेस में बहुत वाकफियत है आप हमें कहीं से अच्छा-सा गलीचा ले दें। चुनांचे मैं उन्हें एक कार्पेट वाली दुकान में ले गया। एक कार्पेट उन्हें बहुत पसंद आई और जब वह चैक देने लगी तो मैंने दुकान के मालिक से कह दिया कि श्रीमती जी से पैसे न लें और मेरे हिसाब में लिख दें। इस सारी कारवाई में मुझे कुछ देर हो गई। आई एम सो सॉरी!···सो सॉरी!"

राव ने कह दिया, "तो आपने उसे रिश्वत दी?"

"सब चलता है मेरे भाई। ईश्वर गवाह है," बजाज कहने लगा, "कि उस आदमी ने इम्पोर्ट का लायसेंस दिलवाने में हमारी कितनी मदद की। पाँच-सात सौ रुपयों का कार्पेट उसके एहसानों के आगे कुछ भी तो नहीं!"

राव हरीसिंह की नैतिक चेतना को गहरा आघात पहुँचा था। इसलिए उसके चेहरे से लग रहा था कि वह आश्वस्त नहीं हुआ। जयचन्द बजाज ऐसे स्वर में बोलने लगा जैसे उसे तसकीन दे रहा हो, "फार्गिट इट! मैंने कोई जुर्म नहीं किया और न ही उस अफसर ने किया। आज के ज़माने में यह लेन-देन तो चलता ही रहता है और मेरा फर्ज भी था। दरअसल," वह खिलखिलाकर हँसने लगा, "आपको हमारी दुनिया में आए बहुत अर्सा नहीं हुआ। यही बात है न? खैर, कोई बात नहीं। आपको जल्दी ही तजुर्बा हो जायगा। चीयर अप!" उसने इस अन्दाज़ से दोनों हाथों से ताली बजाई जैसे रूठे बच्चे को मना रहा हो।

जयचन्द बजाज ठिगने कद का मोटा-सा व्यक्ति है लेकिन उसके अन्दर गज़ब की फुरती है। लगता है उसके अन्दर जैसे गैस भरी हो जो उसे एक भी पल शांत नहीं रहने देती। उस समय अपने असाधारण रूप से छोटे पैरों पर उचक-उचककर बातें करते वक्त वह काफी कॉमिक-सा लग रहा था।

उसने मेज के निकट आकर वह घंटी बजाई जिसका सम्बन्ध अकाउंटेंट के साथ था। एक-दो मिनट में ही एकाउंटेंट आ गया तो उसने पूछ लिया "आज कितना बिज़निस आया ?"

"करीब-करीब बीस हजार के ड्राफ्ट आए हैं !"

"बीस हजार ? वाह क्या कहने !" मिस्टर बजाज की आँखें ऐसी हो गईं जैसे अगले ही क्षण पेवटों से बाहर उछल पड़ेंगी। "राव साहब ! अगर हमारी नई स्कीम की रफ़तार इसी तरह चलती रही तो दो-तीन महीनों के अन्दर ही हमारे पास पब्लिक की तरफ से काफी पूँजी आ जाएगी। लोगों के पास काफी पैसा है। वह इसे एक जगह बंद करके सड़ने देना नहीं चाहते बल्कि इसे जिंदगी की रौ में बहा देना चाहते हैं ताकि यह और भी निखर उठे और फले-फूले। मैं कहता हूँ अगर हमारी सरकार ब्लैक के पैसे पर भी सभी तरह के प्रतिबंध हटा ले तो सचमुच बूम आ जाएगा···बूम !"

"आप बजा फरमाते हैं !" अकाउंटेंट ने हामी भरी।

बजाज उसकी उपस्थिति को बर्दाश्त नहीं कर सका। "तुम जाओ !" एकाउंटेंट के बाहर जाते ही राव से पूछने लगा, "आप जिस काम से गए थे हो गया ?"

"नहीं हो सका। ठाकुर के पास फूटी कौड़ी भी नहीं और वह अपनी जमीन बेचना नहीं चाहता !"

दो क्षण राव के उत्तर पर गंभीरतापूर्वक सोचकर बजाज एकाएक हँस पड़ा। "उसके पास फूटी कौड़ी नहीं और वह ठाकुर है !"

राव हरीसिंह को लगा जैसे उसके वर्ग का अपमान हुआ है। उसने कहा, "बजाज साहब, ठाकुर बनना जमीन-जायदाद के साथ है, पैसे के साथ नहीं।"

"लेकिन मेरा मतलब है···।" अपने वाक्य को अपूर्ण ही छोड़कर बजाज ने उत्तर दे दिया।···यह भी मूर्ख और वह भी मूर्ख ! उसने मन-ही-मन सोचा।

रस्सी जल गई मगर बल नहीं गया। इस ऐंठ का अब कोई मतलब नहीं रहता जब जागीरदारी अपनी आखिरी साँसें गिन रही है। इन विचारों से उत्साहित होकर उसने कहा, "डायरेक्टर बन जाने के लिए हमें सेठ-साहूकारों की कमी नहीं होगी। लेकिन मैं चाहता था हमारी सूची में दो-चार भले लोग भी जाएँ। ठाकुर साहब अपने नेशनलिस्ट भाई हैं और आजादी के लिए जेल-यात्रा भी कर चुके हैं। अगर आज किसी फर्म को इस तरह के दो-चार कांग्रेसियों का सहयोग मिल जाए तो उसके लिए हकूमत की नाक में नकेल डालना मुश्किल नहीं होगा।"

"यह तो ठीक है," राव हरीसिंह ने कहना चाहा, "लेकिन जहाँ तक मेरे पुराने दोस्त की बात है वह बिजनिस में पड़ना नहीं चाहता।"

जयचन्द बोला, "इतनी जल्दी निराश होने की जरूरत नहीं। कल या परसों उसे डिनर कर दो। मैं भी आ जाऊँगा। राव साहब, अगर मैंने उसे अपनी बातों से पूरी तरह बिछा न दिया तो मेरा नाम भी बजाज नहीं!"

"तो डिनर कल ही पक्का समझो। मैं ठाकुर को फोन पर राजी कर लूँगा।"

इस मामले से निबटते ही बजाज को कुछ याद आ गया जो नीना और अशोक के पारस्परिक संबंध को लेकर था। उसने कहा, "राव साहब, यह तो हम तय कर ही चुके हैं कि अशोक की शादी नीना से होगी। जिस तरह अशोक एक आइडियल युवक है उसी तरह नीना भी एक आइडियल युवती है।"

"हाँ-हाँ।" राव ने बेमन से हामी भरी। वह जानता था कि अशोक आइडियल नहीं ऊटपटाँग-सा युवक है।

"आज सुबह नन्ही शिकायत कर रही थी कि अशोक ने उसके पत्रों का उत्तर नहीं दिया।" वह प्यार-प्यार में नीना को नन्ही कहता था।

राव हरीसिंह को बजाज की यह घोषणा बड़ी विचित्र-सी लगी। उसने पूछ लिया, "क्या वह अशोक को पत्र लिखती है?"

"लव लैटर्ज़ माई डियर! कोर्टशिप में तो यह सब चलता ही है।" यह कह कर बजाज खिलखिलाकर हँसने लगा।

राव हरीसिंह सोचने लगा कि वह सचमुच ही ऐसी दुनिया के किनारे आ

लगा है जिसके आचार-विचार और तरीके बिल्कुल और ही तरह के हैं। क्या यहाँ तक आकर लौट सकना संभव हो सकेगा ? यह प्रश्न एक बगूले की तरह उसके ज़हन में घूमने लगा।

□ चार

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि जिस समय राव हरीसिंह और जयचन्द बजाज के बीच उपरोक्त बातें हो रही थीं उस समय नीना मिसेज़ मनचन्दा के साथ कनाटप्लेस आई हुई थीं। आज मिसेज़ मनचन्दा के शापिंग में उसका साथ देने के लिए नीना फोन मिलते ही चली आई थी। वह खुश थी कि मिसेज़ मनचन्दा ने उषा को न बुलाकर उसे ही बुलाया है।

कुछ दिन पहले मिसेज़ मनचन्दा के घर जब उषा ने उसका मज़ाक बनाया था उसकी अन्तर्चुभन को वह अभी तक भूली नहीं थी। इस बीच जाने वह कितनी बार रोई है और कितनी ही बार उसे उषा पर क्रोध भी आया है। वह सोचती अगर ईश्वर ने मुझे उषा जैसी वाक्-पटुता दी होती तो मैं ऐसे मुँह-तोड़ उत्तर देती कि बच्ची को छठी का दूध याद आ जाता।...लेकिन खाली वाक्पटुता से क्या होता है, वह अगले ही क्षण अपने को तस्कीन देने की कोशिश करती। उषा में इतनी सुन्दरता कहाँ है कि किसी युवक को अपनी ओर आकर्षित कर सके। वह जानती है अगर वह उषा के साथ किसी खुली कार की पिछली सीट पर बैठी हो तो फुटपाथ पर चलने वाले स्मार्ट किस्म के लोग उसे ही देखेंगे, उषा को नहीं !

कनाटप्लेस की ओर आते हुए उसने मिसेज़ मनचन्दा से पूछा था, "आँटी, क्या उषा को मालूम है कि मेरी शादी अशोक से होगी ?"

"हाँ, मैंने बताया था।"

"फिर ?" नीना बड़ी उतावली-सी होकर मिसेज़ मनचन्दा की ओर देखने लगी।

"फिर कुछ नहीं," मिसेज़ मनचन्दा ने उत्तर दिया, "उषा तुम्हारे उन बुंदों की वहुत तारीफ कर रही थी जो तुम उस रोज पहन कर आई थी।"

"वह तारीफ क्यों करेगी ? वह तो मुझसे ईर्ष्या करती है !"

"ऐसे भाव तुम्हें अपने मन में नहीं लाने चाहिए !" मिसेज़ मनचन्दा ने उसे उसी क्षण टोक दिया।

कनाटप्लेस में आकर मिसेज़ मनचन्दा ने अपने मतलब की कुछ साड़ियाँ खरीद लीं। चुनाव भी उसने अपनी मर्जी का ही किया। नीना ने हूँ-हाँ से अधिक योग नहीं दिया था। फिर आइसक्रीम खाने के निमित्त मिसेज़ मनचन्दा उसे वोलगा में ले आई। नीना से ठीक तरह बैठा नहीं जा रहा था और उसकी नज़रें किसी को तलाशती-सी लग रही थीं। मिसेज़ मनचन्दा समझ गई। उसने छेड़ते हुए कहा, "मुझे पता है तुम किसे ढूँढ रही हो, लेकिन वह तुम्हें इस वक्त कॉफी हाउस में ही मिल सकता है।"

"तो आँटी फिर कॉफी हाउस ही चलते हैं।"

"लेकिन वहाँ बहुत शोर होता है नीना !"

नीना ने रूठा-रूठा-सा मुँह कर लिया। मिसेज़ मनचन्दा अगले ही क्षण पिघल गई। "पहले आइसक्रीम तो खा लें। मैं तुम्हें वहाँ ले जाऊँगी।" दो-तीन क्षण बाद उसने पूछ लिया, "नीना, तुम अशोक को बहुत प्यार करती हो ?"

"हाँ।" धीमे-से फुसफुसाकर नीना मुस्कराई। मुस्कराते वक्त उसके होंठ जरा-से खुल जाते और उसके सफेद दाँतों की झलक दिखाई दे जाती।

"प्रेम में कैसे अनुभव होता है ?" मिसेज़ मनचन्दा का प्रश्न काफी ऊट-पटाँग-सा था।

"क्या कहती हो आँटी ?"

मिसेज़ मनचन्दा बोली, "मैं इस अनुभूति से बिल्कुल अपरिचित हूँ। तुम पूछोगी शादी करवाकर ऐसी अनुभूति नहीं होती ? लेकिन मैं कहूँगी बिल्कुल नहीं होती ? शादी तो फार्मल···मेरा मतलब है व्यावहारिक-सी चीज़ है। शादी

का प्रेम मजबूरी का प्रेम होता है !"

"मेरे डैडी चाहते हैं," नीना ने अपनी ओर से कहा, "कि मैं शादी से पहले कोर्टशिप करूँ !"

"हाँ-हाँ जरूर करो !" मिसेज़ मनचन्दा उल्लसित-से स्वर में चहकी, "लेकिन तुम्हें यह नहीं सोचना चाहिए कि उषा तुमसे डाह करती है ।"

"वह कभी मुझसे सीधे मुँह बात ही नहीं करती । मुझे देखते ही उसकी आँखों का भाव और से और हो जाता है ।"

मिसेज़ मनचन्दा ने उत्तर दिया, "इसकी यह वजह नहीं । जहाँ तक मैंने उसका मनोविज्ञान समझा है उसे उन सभी लोगों से चिढ़ है जो सिर्फ रुपए के बूते पर आगे आने लगे हैं ।"

"लेकिन इसमें हमारा क्या कसूर है अगर हम अमीर हैं !" नीना ने बड़े भोलेपन से कहा ।

"यह बिल्कुल ठीक है । तुम सचमुच बहुत समझदार होती जा रहा हो ।" फिर कुछ और सोचकर मिसेज़ मनचन्दा ने आगे कहा, "अब रहा अशोक के प्रति उसकी भावनाओं का प्रश्न ? मेरा खयाल है वहाँ प्रेम जैसी चीज़ बिल्कुल भी नहीं । वह अपने को बहुत ऊँचा समझती है और ऐसी युवती भला कैसे प्रेम कर सकती है ? प्रेम में तो नीचा होना पड़ता है ।"

सुनकर नीना चकित-सी मुद्रा में उसकी ओर देखने लगी । "क्या वह अपने को अशोक से भी ऊँचा समझती है ?"

"हाँ ।"

"फ़ूल ! फ़ूल !" नीना उत्तेजित होकर बोली ।

फिर वह आइसक्रीम खाने लगी । बीसों तरह की बातें थीं जो उसके भीतर छोटी-छोटी लहरियों की तरह उठ-बैठ रही थीं । उसने पूछ लिया, "क्या यह सच है कि अशोक और उषा छोटी उम्र में एक ही पालने में लेटा करते थे ?"

"हाँ, यह सच है ।," मिसेज़ मनचन्दा कहने लगी, "जिस बंगले में उषा के डैडी रह रहे हैं उसके एक हिस्से में अशोक के घरवाले बरसों तक रहे हैं । अशोक और उषा का बचपन उसी घर में बीता है । फिर साथ-साथ ही

देहरादून के कान्वेंट में पढ़े हैं। बहुत ही स्नेह रहा है उन दोनों में !"

सुनकर नीना को अपना दिल डूबता महसूस हुआ। वह बोली, "फिर आप कैसे कहती हैं कि उषा मुझसे डाह नहीं करती ? जब उन दोनों का आपस में इतना स्नेह रहा है तो आप कैसे कह सकती हैं कि वह उससे प्रेम नहीं करती ?"

"अरी बेवकूफ !" मिसेज़ मनचन्दा ने उससे कहा, "अगर वह तुमसे डाह करती है तो उसे करने दो। तुम्हारा तो कुछ नहीं बिगड़ता।"

"हाँ, मेरा तो कुछ नहीं बिगड़ता !" कहकर नीना ने अपने सिर को इस अन्दाज़ से झटका-सा दिया कि उसके बालों का चन्दोवा लहरा उठा।

"आओ चलें !" मिसेज़ मनचन्दा कुर्सी से उठ बैठी।

कॉफी हाउस में अशोक और उसका दोस्त आर्टिस्ट अजीत किसी गंभीर विषय पर बातचीत कर रहे थे। जब उन्होंने दो महिलाओं को अपनी ओर आते हुए देखा तो अशोक एकाएक उनके स्वागत में उठ खड़ा हुआ। मिसेज़ मनचन्दा आगे थी और नीना उसके पीछे।

"सरोज आँटी," उसने पूछा, "आप आज इधर कैसे भूल पड़ीं ?"

"नीना तुमसे मिलने के लिए बहुत उतावली हो रही है !" कहकर मिसेज़ मनचन्दा हँसने लगी।

अशोक ने कनखियों से नीना की ओर देखा। वह झेंप रही थी।

यह सोचकर कि वे भद्र-सी महिलाएँ उसके दोस्त की परिचित हैं अजीत भी कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ। अशोक उनका परिचय कराने लगा, "ये हैं मेरे आर्टिस्ट दोस्त अजीत जिनकी पेंटिंग्ज़ के बारे में मैंने आपसे बात की थी और आप हैं मिसेज़ मनचन्दा यानी हमारी सरोज आँटी···और आप मिस नीना !"

"आपसे मिलकर बहुत खुशी हुई !" अजीत ने एटीकेट के तौर पर कहा।

"और मुझे भी," उत्तर मिसेज़ मनचन्दा ने दिया, "मैं पन्द्रह-बीस दिनों के अन्दर आपकी पेंटिंग्ज बिकाने के लिए डिनर का बंदोबस्त करूंगी।"

"शुक्रिया !"

"लेकिन इतनी देर क्यों ?" अशोक ने पूछा।

"मेरा रसोइया जगतराम कल दो हफ़्तों की छुट्टी पर चला गया। तुम्हें पता है वैसा रसोइया शायद ही दिल्ली में कहीं और हो !"

नीना चुप थी। उसने उचटती-सी नज़र से आर्टिस्ट अजीत के व्यक्तित्व का परीक्षण किया—अटपटे से बाल, बढ़ी हुई दाढ़ी और अन्दर को धँसी हुई आँखें। कमीज़ के कॉलर मैले-से हो रहे थे और उसका ढीला-सा स्वेटर कोहनियों से फट रहा था। उसने सोचा ऐसे आदमी को अशोक अपना दोस्त कहता है। कितनी घटिया पसंद है उसके दोस्तों की !

"अशोक", उसने आर्टिस्ट को यह कहते हुए सुना, "भई अब मैं जा रहा हूँ। शाम को मिलेंगे।"

अशोक ने उसे रोका नहीं, चले जाने दिया।

"कितना भला है तुम्हारा दोस्त," मिसेज़ मनचन्दा अजीत के उठते ही बोली, "बेचारा अपने-आप ही चला गया। और मेरा खयाल है मुझे भी तुम दोनों के बीच बैठा नहीं रहना चाहिए।" वह उठने लगी।

"मगर क्यों ?" अशोक ने उसका हाथ पकड़कर बिठा लिया, "मेरे और मिस नीना के बीच ऐसी कोई बात नहीं जो हम एकदू-सरे से एकांत में करना चाहें !"

"शायद हो !" कहकर मिसेज़ मनचन्दा ने नीना की ओर देखा।

नीना को लगा कि परिस्थिति सचमुच ही कठिन हो गई। अगर उसका बस चलता तो वह उठकर भाग जाती।

अशोक का माथा ठनका। कहीं ऐसा तो नहीं कि नीना ने मिसेज़ मनचन्दा को झूठ-सच बता दिया हो। वह उसी क्षण नीना को लज्जित करने के लिए उतारू हो गया, "कहीं नीना ने यह तो नहीं कह दिया कि हमारा आपस में प्रेम है ?"

मिसेज़ मनचन्दा उसे डाँटती हुई बोली, "बेवकूफ ! कम-से-कम नीना के मुँह पर तो तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए।"

नीना के मन में हुआ कि वह अशोक को गंवार, अक्खड़ जाट कहकर अपमानित करे, लेकिन यह न कहकर सिर्फ़ यही कहा, "इन्हें तो बिल्कुल ऐटीकेट नहीं आता।"

"ऐटीकेट सीखने के लिए तुम्हें नीना की शागिर्दी करनी होगी," मिसेज़ मनचन्दा ने सुझाव दिया, "क्यों मंजूर है ?"

अशोक बोला, "शायद मैं नीना जी के परिश्रम की फीस न चुका सकूं !"

"सुन लिया नीना ?" मिसेज़ मनचन्दा बिल्कुल बनावटी ढंग से खीझती हुई बोली, "तुम अशोक से मिलने के लिए बड़ी गलत जगह पर आ गई हो। यहाँ तो अच्छे-भले आदमी का दिमाग भी खराब हो जाए ! उफ कितना शोर है यहाँ !"

"हम हिन्दुस्तानी हैं। शोर से बिल्कुल नहीं घबराते। महज शोर करके ही हमने अंग्रेज़ों को यहाँ से चलता कर दिया !"

मिसेज़ मनचन्दा हँसने लगी और उसे उकसाते हुए बोली, "अशोक, कोई और ऐसी मज़ेदार-सी बात सुनाओ। तुम कभी-कभी ऐसी नफीस-सी बात कह देते हो और मैं उसे बार-बार याद करके बहुत हँसती हूँ। एक दिन तुमने कहा था कि अगर हिन्दुस्तान में सोशलिज़्म आ गया तो वह धोती पहनकर आएगा। कहा था न ?"

"शायद कहा हो !" अशोक ने सिग्रेट सुलगा लिया। कुछ क्षण तो उसने माचिस की तीली को वैसे ही पकड़े रखा और उसे जलता हुआ देखता रहा। सहसा उसे अनुभव हुआ कि नीना उसकी क्रियाओं को बड़े ध्यान से देख रही है और उसके होंठों में हल्की-सी मुस्कराहट भी है। "एक्सक्यूज़ मी !" उसने नीना की ओर भरपूर दृष्टि से देखा, "यह मेरी आदत है।"

नीना की मुद्रा में रुष्टता का भाव था जैसे वह कहना चाह रही हो—क्यों बन रहे हो ? मैंने तुम्हें कुछ नहीं कहा।

"क्या बात है अशोक ?" बारी-बारी से अशोक और नीना की ओर देखकर मिसेज़ मनचन्दा ने कहा, "तुम दोनों कोई बात क्यों नहीं करते ?"

"अरे हाँ," अशोक जैसे अपनी असमंजस से बचता हुआ बोला, "मैंने तो आप लोगों को कॉफी के लिए पूछा ही नहीं।"

"नो थैंक्स !" नीना ने उत्तर दिया, "हम आइसक्रीम खा आए हैं।"

मिसेज़ मनचन्दा को अनुभव हुआ कि परिस्थिति सचमुच ही दिलचस्प होने लगी है। उसने नीना से कहा, "कॉफी पीने के लिए हाँ कर दो नीना ! तुम्हें अशोक की सद्भावना का आदर करना चाहिए।"

"अगर सद्भावना से पूछा होता तो मैं इन्कार न करती।"

"अशोक," मिसेज़ मनचन्दा बोली, "तुमने सुना नीना ने जो कहा ?"

अशोक ने सिग्रेट का ज़ोर से कश लिया। वह बोला, "मिस नीना मेरे बारे में कुछ भी राय बना लेने में स्वतंत्र है। इसमें आप और मैं कर ही क्या सकते हैं !"

नीना खुश हुई कि उसने कटाक्ष करके अशोक के मर्म को छू दिया। उसे खयाल आया कि अशोक के स्वाभिमान की प्रताड़ना ऐसे ही होनी चाहिए। उसने कहा, "अशोक, आप के बारे में मेरी एक राय यह भी है कि आप दूसरों को पीड़ा देकर बहुत खुश होते हैं !"

"कोई प्रमाण ?"

"हाँ है !" नीना एक क्षण झिझकी, लेकिन उसने कह दिया, "मैंने आप को पत्र लिखा था जिसका उत्तर आपने मुझे दिया ही नहीं।"

जिसेज़ मनचन्दा ने आश्चर्य-भाव से नीना की ओर देखा। "सच नीना ? तुम ने अशोक को पत्र लिख था ?"

अशोक एक साँस में कह गया, "मिस नीना ने पैड के रंगीन कागज़ों पर वैसे ही अपने रंगीन भाव पोस्ट आफिस की मारफत भेजे थे जिन्हें पढ़कर मुझे अपने अस्तित्व में संदेह-सा होने लगा !"

नीना छटपटाते हुए बोली, "यह झूठ है ! आपको गलतफहमी हुई !"

"मुझे कभी गलतफ़हमी नहीं होती।"

मिसेज़ मनचन्दा ने परिहास किया, "यह सोचना भी गलतफ़हमी है।"

"अब बोलिए !" नीना हँसने लगी, "आँटी ने आपको निरुत्तर कर दिया !

अशोक ने उत्तर दिया, "आंटी अनुभव और उम्र में मुझसे बहुत बड़ी हैं। इसलिए मैं कुछ कह उनकी शान में गुस्ताखी नहीं कर सकता।"

नीना बोली, "जब आदमी को दलील देने के लिए कुछ नहीं सूझता तो वह ऐसे ही कहता है।"

"मिस नीना," अशोक ने कहा, "आप तो मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ गईं ?"

"आप मुझे मिस नीना ! मिस नीना ! बिल्कुल न कहिए। इसमें बनावटीपन की बू आती है!"

अशोक बोला, "आखिर ऐटीकेट भी कोई चीज़ है!"

"लेकिन आप तो ऐटीकेट को मानते ही नहीं। एक दिन आप कहते थे कि ऐटीकेट सभ्यता का खोटा सिक्का है जिसे बार-बार उछाला जाता है।"

"मैंने यह भी तो कहा था मिस नीना," अशोक का उत्तर आया, "कि आज की सभ्यता की व्याख्या ऐटीकेट के बिना नहीं हो सकती!...और इधर अंग्रेज़ी डिक्शनरी में कुँवारी लड़की के लिए मिस का ही संबोधन दिया गया है!"

"इसका मतलब यह हुआ कि आप अँग्रेज़ी डिक्शनरी सामने रखकर ही किसी से बात करते हैं?"

"हाँ, यह देखिए!" अशोक ने उसी क्षण पाकेट साइज़ की एक डिक्शनरी जेब से निकाल कर नीना के आगे रख दी।

नीना विजयपूर्ण भाव से मुस्कराकर मिसेज़ मनचन्दा से कहने लगी, "देखा आँटी? मैंने ठीक ही कहा था न?"

"मुझे खुशी है नीना," मिसेज़ मनचन्दा ने कहा, "कि यहां आकर तुमने एक ही दिन में बहस करने की कला सीख ली है। मेरा खयाल है यहाँ की आबो-हवा ही कुछ ऐसी है। लेकिन मेरा तो यहाँ दम घुट रहा है। आओ चलें। हम कॉफी नहीं पिएँगे।"

फिर वे तीनों एक साथ ही कुर्सियों से उठे। नीना का मन वहाँ से जाने को नहीं था। लेकिन मिसेज़ मनचन्दा के निश्चय के आगे वह कर ही क्या सकती थी?

अशोक उन्हें रीगल तक छोड़ने के लिए चला आया जहाँ मिसेज़ मनचन्दा ने अपनी कार पार्क कर रखी थी। नीना के साथ विदाई के समय अशोक अत्यंत शिष्ट अथवा विनयशील ही रहा। जब उसने 'बाई-बाई' कहा तो उसने अपना हाथ ऊपर उठा लिया था। फिर वह कुछ सैकण्ड में ही भीड़ में ओझल हो गया।

अपनी कार को पंचकुइयाँ रोड की ओर मोड़ते हुए मिसेज़ मनचन्दा ने नीना से कहा, "आज तुम दोनों की भेंट काफी संतोषजनक रही। मेरा खयाल है अशोक ने बनावटी-सी उपेक्षा का जो कवच ओढ़ रखा है उससे वह जल्दी ही बाहर आ जाएगा!"

"आँटी !" नीना उल्लसित-से स्वर में बोली, "अशोक को बहस में पछाड़ देना तो बहुत ही आसान है।"

मिसेज़ मनचन्दा ने अचानक विषय बदलकर पूछ लिया, "कल अशोक के घर डिनर है, तुम आओगी न ?"

"शायद न आ सकूँ !"

"क्या इसलिए कि वहाँ उषा होगी ?"

नीना बोली, "मैं उसका सामना कर सकती हूँ आँटी, लेकिन मेरे वहाँ न पहुँच सकने की वजह कुछ और है। मेरी ममी बिल्कुल नहीं चाहती कि मैं शाम को बाहर जाऊँ। मुझे उनके पास ही रहना पड़ता है।"

मिसेज़ मनचन्दा समझ गई। रमो, नीना की माँ कई महीनों से बीमार थी। सहानुभूति से भरपूर स्वर में मिसेज़ मनचन्दा ने कहा, "सचमुच ! उसकी बीमारी कितनी लम्बी होती जा रही है। मेरा खयाल है उसे चारपाई पकड़े हुए तीन-चार महीने तो हो गए हैं।"

"हाँ !"

"मुझे रोहतक रोड जाने की ऐसी जल्दी नहीं। मैं तुम्हारे घर ही जा रही हूँ। और अगला चौराहा आने पर उसने अपनी कार साउथ पटेलनगर को जाने वाले रास्ते पर डाल दी।

साउथ पटेलनगर की मेन-रोड पर स्थित जयचन्द बजाज का दो-मंजिला बंगला काफी शानदार है। उसे बने हुए दो वर्ष से अधिक नहीं हुए और उसका शिल्प भी अतिशय नवीन ही कहा जा सकता है। खुले-खुले टैरेस, शीशे की दीवारें, क्रेजी व चिप्स के फर्श...उसमें क्या कुछ नहीं ! मिसेज़ मनचन्दा ने पोर्च के नीचे कार खड़ी की। फिर वह निचली मंज़िल के उस कमरे में गई जिसमें रमो रोग-शैया पर लेटे हुए जिंदगी और मौत के बीच झूलती रहती थी।

कमरे के निकट आने पर उसकी मिमियाती-सी आवाज़ सुनाई दी, "जल्दी करो जल्दी ! मैं मर जाऊँगी !"

नीना ने मिसेज़ मनचन्दा को बताया कि नर्स किट्टी उसकी ममी को इंजेकशन दे रही है।

मिसेज़ बजाज पलंग की पीठ के साथ दो तकियों का सहारा लिए आधी

लेटी हुई थी। जब किट्टी ने सिरिंज की सुई उसके बाजू के नर्म फूले स्थल में चुभो दी तो वह 'ऊई !' कहकर चीख सी पड़ी। नीना तब देहलीज तक आ गई थी। वह दौड़ कर उसके पास चली गई और कहने लगी, "ममी, ऐसे नहीं ! सरोज आँटी आई है।

"हाऊ डू यू फील माई डियर ?" मिसेज़ मनचन्दा ने निकट आकर पूछा।

"वैसी की वैसी हूँ। सारी दिल्ली में ऐसा कोई भी डॉक्टर नहीं जो मेरा इलाज कर सके।" यह कहकर मिसेज़ बजाज अपनी सहेली के स्वागत में मुस्कराई, लेकिन उसकी मुस्कराहट उसकी आंतरिक पीड़ा या विवशता के अधिक निकट थी।

मिसेज़ मनचन्दा ने उसे धैर्य देते हुए कहा, "तुम बिल्कुल ठीक हो जाओगी !"

रमो यानी मिसेज़ बजाज पैंतालीस से अधिक उम्र की नहीं। बीमारी से पहले वह कॉफी स्मार्ट और युवा ही समझी जाती थी। उसका मेक-अप भी बस देखने लायक होता था। बढ़िया से-बढ़िया साड़ियाँ पहनने का भी उसे शौक था। लेकिन अब उसका चेहरा पीला और निचुड़ा हुआ-सा लगता है। आँखें पेवटों के अन्दर धँसने लगी हैं। बीमारी से पहले वह अपने वर्ग में काफी हँसमुख और मनमौजी-सी महिला समझी जाती थी। लेकिन अब वह झक्की और चिड़चिड़ी हो गई है। वह सिंधी घराने की है और जयचन्द के साथ उसने प्रेम-विवाह किया था। इससे अनुमान हो सकता है कि आज से पच्चीस-छब्बीस वर्ष पहले के पुरातनवादी वातावरण में इसने कितना बड़ा स्कैण्डल पैदा किया होगा।

"सरोज," वह मिसेज़ मनचन्दा से कहने लगी, "मुझे हर वक्त लेटे रहना पड़ता है और मैं बोर हो जाती हूँ। तुम्हें पता ही है मैं जब ठीक थी तब विला-नागा पिक्चर देखती थी और हर शाम कनाटप्लेस में भी जाती थी।...सरोज, मुझे बताओ आजकल कौन-सी पिक्चर रश ले रही है ?"

"सबीना, जो रिवोली में चल रही है।"

"आह सबीना !" मिसेज बजाज अपने कमज़ोर-से स्वर को मनोभाव से खींचते हुए बोली, "काश ! मैं यह देख सकती। मेरे लिए तो अब जिंदगी के सभी मनोरंजन खत्म हो गए। कनाटप्लेस कैसा है ? क्या कोई नया रैस्तराँ

ग्रौर खुला है ?"

"एम्बेसी खुला है। स्टैंडर्ड का फेस-लिफ्ट किया जा रहा है !"

"ग्रोह माई गॉड ! मेरी ग्रांतों में सोज़िश है। मैं टोमाटो-सूप भी हज़्म नहीं कर सकती !"

उसी क्षण किट्टी मिसेज़ बजाज को मना करते हुए बोली, "ग्राप बोलिए नहीं। ग्राप को बोलने से कष्ट होता है !"

किट्टी जो एक सुशिक्षित नर्स थी, मिसेज़ बजाज की देखभाल के लिए ही रखी गई थी। मिसेज़ बजाज ने खीझभरे स्वर में उत्तर दिया, "कैसी मुसीबत है ! मैं कोई भी बात नहीं कर सकती !"

नीना मेकग्रप वाला डिब्बा ले ग्राई ग्रौर उसके निकट ही बैठ कर उसका मेक-ग्रप करने लगी। बीमारी के दिनों में वह बस हल्का-सा मेकग्रप ही चाहती थी। जब नीना ने उसके हाथ में ग्राईना दिया तो वह उसमें ग्रपनी शक्ल देख-कर निराशा ग्रौर झुँझलाहट से भर कर बोली, "मेरी शक्ल ग्रब मेरी शक्ल नहीं रही ! मेरी ग्राँखें मेरी ग्राँखें नहीं रहीं ! यह मैं नहीं कोई ग्रौर ग्रौरत है !··· मेरे ईश्वर ! मैं क्या से क्या हो गई हूँ···!"

वह इस तरह प्रलाप करती रही ग्रौर नीना हल्के-हल्के उसका मेकग्रप करती रही। मिसेज़ मनचन्दा कुछ भी कह सकने में ग्रसमर्थ कुछ सोचती हुई उनकी ग्रोर देख रही थी।

□ पाँच

जहाँ राव हरीसिंह ग्रौर ठाकुर देवीसिंह की दोस्ती बहुत पुरानी है वहाँ राव हरीसिंह ग्रौर जयचंद की दोस्ती कुछ वर्ष पहले की। ठाकुर के साथ तो उसका बस एक भावना का सम्बन्ध रह गया है, लेकिन जयचंद बजाज के साथ

मिलकर उसने सरकारी ठेके लिए हैं, इम्पोर्ट ग्रौर एक्सपोर्ट का विज़निस किया है ग्रौर लाखों रुपया पैदा किया है। रुपए की चकाचौंध के ग्रागे भावना-जैसी चीज क्या महत्त्व रखती है !

राव एक समझदार ग्रादमी है। वह जानता है कि ज़मींदारी का युग ग्रब बीत चुका ग्रौर इसे ग्राज नहीं तो कल ग्रवश्य खत्म हो जाना है। ग्राजादी के बाद के राजनीतिक जीवन में ग्राए दिन ऐसी ही ग्रावाज़ें सुनाई देने लगी हैं कि ज़मींदारी के दिन ग्रब खत्म हो गए। इससे पहले कि सरकार विधान के ज़रिये ग्रतीत की उस वहुत ही वदनाम संस्था को खत्म कर दे राव हरीसिंह ने करीब-करीब ग्रपनी सभी ज़मीनें बेच दीं ग्रौर इस तरह जो रुपया ग्राया वह उसने व्यापार में लगा दिया ग्रौर ग्राज़ादी के सिर्फ पाँच सालों के ग्रन्दर ही ग्रन्दर उस रुपए ने ग्रपने से दुगनी-तिगनी पूँजी को खींच लिया है। उसे पता है कि राजधानी में भी एक ग्रौद्योगिक ग्रौर व्यापारिक क्रांति-सी ग्रा गई है ग्रौर ऐसे-ऐसे लोग ग्रागे वढ़ते ग्रा रहे हैं जिनकी ग्रमीरी का तो कोई ठिकाना ही नहीं। उधर मोतीनगर, फरीदाबाद नजफगढ़ ग्रौर गाज़ियाबाद की ग्रोर इन लोगों ने फैकट्रियाँ लगा ली हैं ग्रौर कुछ ऐसे हैं जिन्होंने कनाटप्लेस ग्रौर ग्रासफ ग्रली रोड पर ग्रपने कारोबारी दफ्तर खोल लिए हैं। परिस्थितियाँ कितनी तेजी से वदल रही हैं···नए लोग ! नया समाज ग्रौर नए रीति-रिवाज !

फिर भी वह मानसिक रूप से ग्रपने को उखड़ा हुग्रा महसूस कर रहा है। एक ग्रोर पुरानी परम्पराग्रों का मोह है ग्रौर दूसरी ग्रोर नए परिवर्तनों का तकाज़ा भी है। यही कारण है कि ग्रत्यन्त साधारण परिस्थितियाँ भी उसके ग्रन्तर में संघर्ष-सा उठा देती हैं।

करौलबाग की नई, फैशनेबल ग्रौर रौनक वाली बस्ती में उसका बंगला है। कुछ वर्ष पहले ही बनाया गया था। उसका परिवार बस छोटा-सा है, पारवती उसकी पत्नी, दो लड़कियाँ—प्रीती ग्रौर दीपी, जिनकी उम्र क्रमशः बारह ग्रौर दस साल की है ग्रौर ग्रशोक। इसके इलावा घर में नौकर-चाकर भी हैं।

उस रात के भोज की प्रबन्ध-व्यवस्था देखने के लिए वह शाम के पाँच वजे ही घर चला ग्राया। पोर्च में रुकी कार के हॉर्न को पहचान करके पारवती डाइनिंग-रूम से निकल कर दरवाज़े पर ग्राकर खड़ी हो गई। राव के ग्राने के

समय वह प्रीती और दीपी के साथ चाय पी रही थी। उसे दरवाज़े में खड़े देखकर राव कॉरीडार की ओर न जाकर उसकी ओर चला आया। "क्या हो रहा है ?" उसने बरसों से डाली आदत के मुताबिक आदेशात्मक से स्वर में पूछा।

पारवती ने उत्तर दिया, "चाय अभी गरम है। तुम भी पी लो !"

राव के अन्दर आने पर प्रीती और दीपी अपनी-अपनी जगह अस्थिर-सी हो गईं और चहकती हुई "पापा ! पापा" कह उठीं। उनकी ओर स्वीकृति की-सी मुद्रा में सिर हिलाकर राव ने पारवती से पूछा, "अशोक कहाँ है ?"

"ऊपर अपने कमरे में है।"

"ऊपर क्या कर रहा है ?" राव के स्वर में खीझ थी। प्रश्न करके स्वयं ही उत्तर दिया, "मुझे पता है वह जो कर रहा है। व्यर्थ की किताबों पर दीदे फोड़ रहा होगा !"

पारवती अपनी उम्र में उससे सिर्फ चार-पाँच साल ही छोटी है, लेकिन लगता है उस पर बुढ़ापा जैसे पहले आ ही गया है। उसके बाल सफेद हैं और वह आँखों पर ऐनक भी लगाती है ! इसके बावजूद उसका व्यक्तित्व एक अपूर्व आकर्षण से ओतप्रोत है जिसे देखकर मन में ही सहज ही श्रद्धा का उपज आना स्वाभाविक है। अशोक तो उसे देवी की तरह पूजता है। पति के शब्दों को सुनकर वह मन-ही-मन क्षुब्ध होकर बोली, "क्यों बिगड़ रहे हो बेचारे पर ?"

राव ने उत्तर दिया, "इतना पढ़-लिखकर भी वह मेरे किसी काम नहीं आया !"

उसी क्षण प्रीती ने चाय की प्याली उसके आगे रखते हुए उत्कंठित-से स्वर में कहा, "डैडी, चाय घुड़क लीजिए। ठण्डी हो जाएगी !"

राव चाय का घूँट भरकर बोला, "यह घुड़कना क्या हुआ ? क्या पब्लिक स्कूल वाले तुझे यही कुछ सिखाते हैं ?

"नहीं डैडी ! सिप करना ! उत्तर देकर प्रीती ने दीपी को कोहनी से छुआ और वे दोनों खिलखिलाकर हँसने लगीं।

"मैं झूठ नहीं कहता पारवती," राव का स्वर अपेक्षतया संभला हुआ था, बजाज का अपना लड़का सुरेश है। वह बिलानागा दफ्तर में बैठता है और कुछ काम भी करता है। यह ठीक है वह बिगड़ा हुआ है, लेकिन अशोक की तरह

वह घर में, कॉफी हाउस में और इधर-उधर निठल्ला तो नहीं रहता। मैं कहता हूँ अगर वह मेरे साथ काम करने लगे''मेरी कुछ मदद करे तो हमारी हालत और भी शानदार हो सकती है। आज बजाज कहता था अगर अशोक हमारी नई स्कीम का पब्लिसिटी अफसर बन जाए तो उसे एक हज़ार रुपए तनख्वाह मिलनी शुरू हो जाएगी!"

उसी क्षण उनका नौकर आलू के तले हुए कतलों की प्लेट लिए आया। पारवती ने उससे कहा, "हेमू! अशोक अपने कमरे में है। उसे नीचे बुला ला।"

दीपी जो अब तक अपने मन में न मालूम क्या-क्या गुनती हुई मुस्कराती रही थी, बोली, "डैडी, आज हम शोफर के साथ स्कूल नहीं गई थीं!"

"तो फिर किस के साथ गईं?"

"भैया के साथ, बहुत मज़ा आया! भैया गाड़ी खूब तेज दौड़ाते हैं!"

दीपी एकाएक समझ गई कि प्रीती की इस मूर्खतापूर्ण-सी घोषणा की प्रतिक्रिया अच्छी नहीं होगी। वह उसकी ओर घूरती हुई नाक-भौं सिकोड़ने लगी।

राव ने पारवती से कहा, "कुछ समझी? प्रीती ने जो कहा अशोक हमेशा ही गाड़ी तेज़ चलाता है और तुम्हें पता ही है कि दिल्ली की सड़कों पर ट्रैफिक कितना बढ़ गया है।"

"तुम खुद उसे क्यों नहीं कह देते?"

"मेरी निस्बत वह तुम्हारे कहने में ज्यादा है!"

अशोक वहाँ आया और अपने चेहरे की गम्भीर मुद्रा के बावजूद उसने कतलों वाली प्लेट से एक कतला लिया और उसको कचर्-कचर् खाने लगा।

पारवती ने उससे कहा, "अशोक, मैंने सुना है तुम कार बहुत ही तेज़ चलाया करते हो?"

अशोक ने वंकिम-सी दृष्टि से प्रीती और दीपी की ओर देख लिया। उनकी आकृतियाँ बुझी हुई थीं। अशोक ने उत्तर दिया, "माँ, सिर्फ पैंतीस-चालीस की स्पीड पर ही जाता हूँ। ट्रैफिक का तो कुछ पूछो नहीं माँ, और ट्रैफिक भी ऐसा कि आगे छकड़ा जा रहा है, पीछे ट्रक आ रही है, दाएँ हाथ मोटर-रिक्शा

घड़घड़ाती हुई जा रही है और बाएँ हाथ कोई साइकिल घिसट रही है। बस अपने-आप ही एक्सीडेन्ट होने लगते हैं···।"

उसके समाप्त करते ही प्रीती बोल पड़ी, "भैया ! ट्रैफिक की कई चीज़ें तो तुम छोड़ ही गए···टाँगे, बसें, खौंचा-गाड़ियाँ, ऊँट, घोड़े और गधे !"

"नहीं भैया !" दीपी ने प्रीती को टोक दिया, "ऊँट तो बिल्कुल नहीं होता।"

राव के सिवा और सभी हँसने लगे। उसने पारवती से कहा, "इन लड़कियों को अब यहाँ से ले आओ। मुझे अशोक से कुछ जरूरी बातें करनी हैं !" उनके बाहर जाते ही वह अशोक की ओर सीधी दृष्टि से देखता हुआ बोला, "तुमने आज अपना हुलिया क्या बना रखा है ? तुम्हें पता नहीं आज डिनर है ?"

अशोक कुरता-पाजामा पहने था। उसने उत्तर दिया, "लेकिन मैं डिनर सूट बिल्कुल नहीं पहनूँगा।"

लेकिन डिनर सूट और किस मतलब के लिए होता है ?"

"अंग्रेज तो अब चले गए। इसलिए यह जरूरी नहीं कि हम उनकी वरासत का बोझ आज भी ढोते फिरें !"

राव उपेक्षा से उसके शब्दों की खिल्ली उड़ाता हुआ बोला, "हम जाहिल और गँवार थे। वे हमें कुछ अच्छी चीजें सिखा गए हैं और तुम कहते हो कि उनकी वरासत का बोझ आज भी ढोते फिरें।···खैर, मैं तुमसे यह कहना चाहता था कि छह-सवा छह बजे बारह खम्भा रोड चले जाना और ठाकुर को अपनी गाड़ी में ले आना और···और उषा को भी ! ठाकुर बातें तो बड़ी ऊँची-ऊंची करता है, लेकिन उसकी माली हालत यह है कि वह एक गाड़ी भी नहीं खरीद सकता।"

अशोक कुछ क्षण कुछ सोचता-सा चुप रहा। फिर वह किसी तरह भी अपने को यह कहने से रोक न सका। "डैडी आप क्यों एक भले आदमी की जिंदगी का चैन और आराम खत्म करने पर तुल गए हैं ? क्या ज़रूरत है कि आप उन्हें अपने नए बिजनिस में ढकेलने की कोशिश करें ?"

राव हरीसिंह अपने बेटे के मुँह से ऐसी स्पष्ट और खुरदरी-सी बातें सुनने की अपेक्षा नहीं रखता था। उसने अपना पाइप जेब से निकाल कर होंठों से

लगा लिया और माचिस के लिए अपनी जेब टटोलता रहा। अशोक ने समझा कि कदाचित् वहाँ माचिस नहीं है। उसने करीब ही पड़े कप-बोर्ड के ऊपर से माचिस उठाकर उन्हें दे दी। राव ने उसे 'थैंक्स' कहा और फिर बोला, "सभ्यता का तकाज़ा है कि जिन बातों की हमें समझ नहीं उनमें टाँग अड़ाने की जरूरत नहीं। मेरा मतलब समझ गए ?"

अशोक ने उत्तर दिया, "यह मैंने इसलिए कहा कि आप और ठाकुर बहुत ही गहरे दोस्त रह चुके हैं !"

"मेरा खयाल है," राव बोला, "मैं अपने दोस्त का हित तुमसे बेहतर समझ सकता हूँ !"

"आप समझ सकते थे अगर आपने अब और तरह का दृष्टिकोण न अपना लिया होता !"

"और मेरा खयाल है," राव ने बहस के मूड में बोलते हुए कहा, "कोई भी आदमी मेरे दृष्टिकोण को प्रोग्रेसिव ही कहना चाहेगा। मैंने समझदार आदमी की तरह अपनी ज़मींदारी से पिंड छुड़ा लिया। सिर्फ रामपुर गाँव की थोड़ी-सी ज़मींदारी रह गई है और जल्दी ही उससे भी निबट लूँगा !"

उस ज़मीन के संबंध में पिता-पुत्र के बीच पहले भी तकरार हो चुकी थी। चालीस-पचास बीघों से अधिक वह ज़मीन नहीं थी और अशोक चाहता था कि वहाँ जाकर फार्मिंग करे। यह बात सोचकर ही उसने उत्तर दिया, "डैडी, मैं आपको पहले ही कह चुका हूँ कि वह जमीन मुझे चाहिए।"

"क्या हल जोतोगे ?"

"हल न सही, ट्रैक्टर तो है। मैं एक छोटा-सा फार्म बना लूंगा और···और मैं कुछ नहीं चाहता !"

राव हरीसिंह अपने क्रोध को किसी तरह ज़ब्त कर उपेक्षा से हँसता हुआ बोला, "तुम्हारा दिमाग खराब है···सचमुच ! उस ज़मीन का सौदा होगा और हर हालत में होगा !" वह चाय खत्म कर चुका था और उसी क्षण कमरे से बाहर चला गया।

शाम के पौने सात बजे अशोक ठाकुर देवीसिंह के बंगले पर था। कार को

पार्क में खड़ी करके वह कुछ सोचता-सा सीट पर बैठा रहा। सारा रास्ता यही विचार उसे सताता रहा कि ठाकुर कहीं यह न समझ लें कि वह उसी षड्यन्त्र में शामिल है जो मिस्टर बजाज और उसके पिता ने ठाकुर को बिजनिस में आ जाने के लिए रचा है। उसे अपनी स्थिति बिल्कुल स्पष्ट कर देनी चाहिए…वह यह निश्चय करके सीट से उठ बैठा। जब वह कॉरीडार में आया तो उसने ठाकुर के निजी कमरे के बाहर उषा को खड़े देखा। अशोक न मालूम किस कारण ऐसे ठिठक कर खड़ा हो गया जैसे पैरों में ब्रेक लग गई हो।

तभी उसने उषा को ऊँचे स्वर में हँसते और ठाकुर से यह कहते हुए सुना, "पापा, अशोक आया है, लेकिन मुझ से डर कर आगे नहीं आ रहा।"

"…उफ ! यह बेवकूफ लड़की कुछ नहीं समझती !…यह सोचकर अशोक अपने क्षण-भर को निःस्पंद हुए वजूद को फिर गति में लाकर चलने लगा।

उसने इस समय भी कुरता-पाजामा ही पहन रखा था…गहरे से बादामी रंग का गरम कुरता और काफी खुली मोहरी का पाजामा…उषा भारी विस्मय में भर तीखी नजर से उसके हुलिए को भेदती हुई बोली, "वाह ! आज तो बंगाली फिल्म के हीरो दिखाई देते हो। क्या कांग्रेस की चवन्नी वाली मेम्बरी तो नहीं मिल गई ?"

अशोक ने उत्तर दिया, "उषा, तुम्हारा मजाक दो धेले का भी नहीं !" फिर उसने कमरे के अंदर आकर ठाकुर को एक आराम-कुरसी में बैठे देखकर कहा, "नमस्ते काका !"

ठाकुर ने भी विस्मय के भाव से उसके पहरावे को देखकर मुस्कराते हुए कहा, "कुरते-पाजामे में तुम बहुत ही अच्छे लगते हो अशोक !"

उषा के ज़हन में अशोक को देखते ही फितूर समा गया था। ठाकुर के बात समाप्त करते ही वह बोल पड़ी, "बस एक चीज की कसर रह गई है। यानी खादी की टोपी ! उसे पहन कर तुम लीडर भी लग सकते हो और ब्लैक का धंधा करने वाला सेठ भी !"

उसके कटाक्ष को अनसुना करके अशोक ने कहा "काका, मैं दोनों को लेने के लिए आया हूँ। गाड़ी बाहर खड़ी है !"

"लेकिन मैं तो नहीं जा रही !" उषा अपने इन्कार को घोषणा के स्वर में बोली ।

ठाकुर ने कहा, "शायद तुम्हारे कहने से मान जाए अशोक ! मुझे तो इस ने टका-सा जवाब दे दिया !"

"यह तुम क्या कह रहे हो पापा ?" उषा को अपने पिता वे शब्द बड़े विचित्र-से लगे । भला यह कैसे संभव है कि जिस बात के लिए उसने अपने पिता को टका-सा जवाब दे दिया हो वही बात अशोक के कहने पर मान ले । वह बोली, "अशोक, मेरे पास डिनर या दूसरी पार्टियों के लिए वक्त नहीं । मेरी स्टडी खराब होती है !"

अशोक को लगा कि वास्तविक कारण कुछ और है । कदाचित् नीना के पार्टी पर होने के खयाल से ही उसने अपना निश्चय बदल लिया हो । वह यह बात ठाकुर की उपस्थिति में नहीं कह सकता था । इसलिए चुप रहा ।

"अशोक," ठाकुर आराम-कुरसी के साथ अपनी पीठ सटाता हुआ बोला, "उषा चाहती है कि मैं आप लोगों की नई स्कीम में एक लाख का पूंजी लगा दूं !"

अशोक बिल्कुल स्तंभित-सा रह गया । उसने कहा, "काका, पहले तो मैं आपको यह कहना चाहूँगा कि मैं उन लोगों में नहीं हूँ । और दूसरे उषा ने आप को जो सलाह दी है बहुत ही मूर्खतापूर्ण कही का सकती है !"

उषा का चेहरा एकाएक फक-सा पड़ गया । ठाकुर उसकी प्रतिक्रिया की कतई परवाह न करके हँसने लगा । कोई कड़वी-सी बात सुन लेने की प्रतीक्षा में अशोक ने उषा की ओर देखा ।

वह काफी कठिन-सा क्षण था । ठाकुर ने यह कह कर अशोक और उषा को उस कठिन क्षण के उलझाव से मुक्त कर देना चाहा, "मैं इतना बड़ा कदम कैसे ले सकता हूँ ? पहले तो मेरे पास एक लाख की पूंजी है ही नहीं और दूसरे मेरे पास ऐसा कोई नैतिक आधार भी नहीं कि मैं जमीन बेचकर एक लाख की पूंजी पैदा कर सकता हूँ !" वह कुरसी से उठ बैठा और फिर कारीडार की ओर जाते हुए बोला, "मैं बाथरूम जा रहा हूँ । अभी आया !"

कुछ क्षण खामोशी रही । उषा ने सीधी दृष्टि से अशोक को देखते हुए

पूछा, "कुछ समझ आया पापा ने जो कहा ?"

"हाँ !"

"कृपया बताइए !" उषा का स्वर व्यंग्य से ध्वनित था ।

अशोक ने कहा, "यही कि जमीन बेच देना अनैतिक काम है !"

"और यह तुम्हारे डैडी नहीं कर सके ?"

"मेरे डैडी जो करते हैं उसके लिए मैं जवाबदेह नहीं हूँ," अशोक ने उषा के व्यंग्य से ज़रा भी क्षुब्ध हुए बिना बड़े शान्त स्वर में कहा, "और दूसरे मैं तुम्हारे डैडी को अपने डैडी की निस्वत नैतिक रूप से ऊँचा मानता हूँ !"

उषा छटपटाते हुए बोली, "तुम बन रहे हो अशोक, बिल्कुल बन रहे हो !"

"तुमसे बहस करना फिजूल है । लेकिन मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि तुम डिनर पर क्यों जाना नहीं चाहतीं ?"

"मैं कारण बता चुकी हूँ । क्या वह काफी नहीं ?"

"नहीं !"

"फिर तुम क्या सोचते हो ?"

"मैं अन्तर्यामी तो नहीं हूँ," अशोक गम्भीर-सी मुस्कराहट अपने होंठों पर खींचता हुआ कहने लगा, "लेकिन इतना समझ सकता हूँ कि तुम इसलिए नहीं जाना चाहती कि वहाँ नीना होगी !"

उषा ने उत्तर दिया, "इसके लिए तुम्हें मेरे प्रति जरूर कृतज्ञ होना चाहिए !"

"क्यों ?"

"मेरे वहाँ होने से परिस्थिति अजीब डाँवाडोल-सी हो जाएगी और तुम्हारे हितों को देखते हुए मेरा वहाँ होना किसी तरह भी संगत नहीं !"

अशोक किसी तरह भी अपने आवेश को दबा न सका । बोला, "जो तुम सोचती हो गलत है । नीना से मेरा क्या है ? मैं उससे प्यार नहीं करता !"

"लेकिन वह तो करती है । अब तुम कहोगे यह भी गलत है !"

"हो सकता है उसके प्यार की यह भावना बिल्कुल छिलछिली हो !"

"तुम यह जल्दी ही समझ जाओगे," उषा का स्वर व्यंग्य से खिचा हुआ

था, "कॉफी हाउस का रास्ता उसे मालूम है !"

अशोक समझ गया कि उषा ने नीना के काफी हाउस में जाने की बात मिसेज़ मनचन्दा से ही सुनी होगी। लेकिन इसका यह मतलब नहीं, अशोक ने सोचा, कि उषा इस मामूली-सी बात का गलत मतलब सोचने लगे। उसने कहा, "उषा, तुम मानसिक रूप से काफी विकसित हो और तुम्हारे प्रोफेसरों का यह खयाल भी है कि तुम इस साल एम० एस-सी० की परीक्षा में नया रिकार्ड भी स्थापित करोगी···।"

"फिर ?"

"इसलिए मैं नहीं चाहता कि तुम्हारे अन्दर एक साधारण स्त्री की तरह ईर्ष्या-जैसी घटिया-सी भावना पैदा हो !"

"हा ! हा !" उषा सप्रयास हँसते हुए बोली, "मुझे खुशी है कि अब तुम्हारे अन्दर मनोवैज्ञानिक दृष्टि भी पैदा होने लगी !" कदाचित् उसने कुछ और भी कहा होता, लेकिन उसी क्षण कारीडार में कदमों की आहट सुनाई दी।

ठाकुर देवीसिंह अन्दर आया। उसने काली अचकन पहन रखी थी और उसके पैरों में काले रंग के पम्पशू भी थे। उसने अशोक से कहा, "मैं तैयार हूँ। आओ चलें !"

"उषा," अशोक उससे बोला, "मेरा खयाल है अब तुम मेरे अनुरोध पर नए सिरे से विचार करना चाहोगी ?"

"मैं अपने निर्णय पर अटल हूँ !" यह कहते वक्त उसने अपने सिर को एक झटका-सा दिया। बालों की एक छोटी-सी लट खुलकर माथे पर आ गिरी और वह इसे समेटने लगी।···खूब बुद्धू बनाया ! अकस्मात् उसे विचार आया। उसे पता था कि पार्टी पर न तो मिसेज़ मनचन्दा ही आ रही है और इस कारण नीना भी नहीं आ रही। कुछ देर पहले मिसेज़ मनचन्दा ने उसे फोन पर यह सब बता दिया था। इसलिए ऐसी परिस्थिति में उसका स्वयं वहाँ चले जाना किसी तरह भी संगत नहीं था। वह नीना को जता देना चाहती थी कि वह अशोक की बिल्कुल परवाह नहीं करती। लेकिन अशोक यह नहीं जानता था !

अशोक और देवीसिंह के पहुँचने से कुछ मिनट पहले जयचन्द बजाज भी

वहाँ आ गया था। वह देवीसिंह से मिलते ही अपने छोटे-छोटे पैरों पर थिरकता-सा कहने लगा, "मैं आपको एक लम्बे अरसे के बाद देख रहा हूँ। यह मेरी खुशकिस्मती है कि आपके दर्शन हो गए! आप तो बहुत बड़े आदमी हैं···।" वह बारम्बार उसके आगे झुक रहा था और उसके हाथों को अपने हाथों में लेकर दबा भी रहा था।

"बजाज साहब," कुछ परेशान-सा दिखता हुआ देवीसिंह बोला, "आप तो शर्मिन्दा कर रहे हैं!"

"नो! नो!" बजाज और अधिक आवेश में आकर कहने लगा, "मैंने जो कुछ भी कहा उसमें रत्ती-भर भी झूठ नहीं। आप सचमुच ग्रेट हैं। आपने देश के लिए जेल-यात्रा की और चरखा भी काता। आपके लिए पार्लियामेंट का मेम्बर बन जाना या मिनिस्टर भी बन जाना आसान है! माई डियर ठाकुर, आप क्या कुछ नहीं बन सकते?" उसने बड़े उन्मेष के साथ ठाकुर के हाथ को दबा दिया और फिर वह अशोक के सामने आकर खड़ा हो गया और बोला, "अशोक, नीना को एक्सक्यूज़ कर देना भाई, वह नहीं आ सकी। शाम को वह अपनी बीमार ममी के पास ही रहना पसन्द करती है!···हाऊ नोवल! हाऊ ब्यूटीफुल!"

अशोक कोई भी शब्द कहे बिना ड्राइंग-रूम से निकलकर अन्दर चला गया।

राव हरीसिंह अपनी रिस्टवाच पर नज़र डालकर बोला, "आठ बज रहे हैं। मेरा खयाल है अब हमें पीने-वीने का प्रोग्राम शुरू कर देना चाहिए।··· ठाकुर, तुम्हारे लिए मैंने एपल-जूस मँगवा लिया है!"

जयचन्द ने ठाकुर को छेड़ते हुए कहा, "ठाकुर साहब, ज़माना बदल रहा है, आप भी बदलिए!"

"शुक्रिया बजाज साहब," देवीसिंह ने उत्तर दिया, "मेरे कुछ सिद्धान्त बन गए हैं जो इस जिन्दगी के साथ निभाने ही पड़ेंगे!" फिर वह अपने पुराने दोस्त से कहने लगा, "राव, तुम्हें डायब्टीज़ है। मैंने सुना है इस बीमारी में ड्रिंक अच्छा नहीं होता!"

"मैं दो पैग से ज्यादा नहीं पियूंगा !" यह कहकर वह सोफे से उठा और दरवाजे के समीप आकर उसने ऊँचे स्वर में आवाज़ दी, "कोई है ?" अपने किसी नौकर को बुलाने के लिए वह ऐसे ही आदेशात्मक लहजे में पुकार उठता था।

उनके पीने-वीने और भोज का कार्यक्रम रात के दस बजे तक चलता रहा। एक तरह जयचन्द बजाज द्वारा किया गया यह सारा आयोजन असफल ही रहा। हालाँकि उसकी वक्तव्य-शक्ति ड्रिंक के कारण साधारण की अपेक्षा चार गुना और बढ़ गई थी, लेकिन वह किसी तरह भी ठाकुर को अपनी बातों से प्रभावित न कर सका। ठाकुर उसके मनोरथ को भाँप गया था···जो उसे बहुत ही वेहूदा और नीचतापूर्ण लगा। बजाज को दो-चार ऐसे भले और विशुद्ध नैतिक आचरण वाले काँग्रेसियों की जरूरत थी जिन्हें वह अपनी नई स्कीम के डायरेक्टरों की सूची में डालकर लोगों से सुगमता के साथ शेयर्ज के रूप में रुपया बटोर सकता था। ठाकुर देवीसिंह ने न्यू इंडिया फीनाँस लिमिटेड का परामर्शदाता भी बनना स्वीकार नहीं किया। हर बार वह अपने उत्तर में बस यही कहता रहा···"आप मुझे व्यर्थ की उलझन में क्यों डालना चाहते हैं ? मेरी उम्र इस वक्त पचपन साल की है और जो बाकी रह गई है वह मैं पूजा-पाठ और अध्ययन-चिन्तन में गुजार देना चाहता हूँ। इसलिए आप मुझे रहने दें। आपको और भी अच्छे आदमी मिल जाएँगे।"

जयचन्द बजाज के जाते ही राव ठाकुर से कहने लगा, "मैं तो पहले ही बजाज से कहता था कि ठाकुर को फाँस लेना आसान नहीं। लेकिन वह आदमी अपने को कुछ ज्यादा ही समझता है। वैसे क्या खयाल है इस आदमी के बारे में ?" राव हरीसिंह दो पैग से कहीं ज्यादा पी गया था और उसकी आवाज़ उखड़ी हुई थी।

ठाकुर ने उत्तर दिया, "काफी होशियार आदमी है जैसे हर बिज़निसमैन को होना ही चाहिए !"

"तुम बहुत ही सीधे हो," राव अपने-आप हँसता हुआ कहने लगा, "साफ-साफ क्यों नहीं कह देते कि वह एक चालाक और चंट आदमी है।" जब ठाकुर

ने अपनी ओर से कोई भी टिप्पणी नहीं की तो राव और अधिक स्पष्ट होकर कहने लगा, "ऐसा चँट है कि अपने ऊपर मक्खी तक न बैठने दे और वह यह भी कहता है कि वह हरे को पीला करके दिखा सकता है। जहाँ बातों से काम निकल आए वहाँ बातें कर लेता है और जहाँ रिश्वत से काम निकल आए वहाँ रिश्वत देता है और जहाँ तिकड़म से काम निकल आए वहाँ तिकड़म भी कर लेता है।···प्यारे ठाकुर ! तुम इस दुनिया से नावाकिफ हो। लेकिन यह दुनिया ही और है !"

राव हरीसिंह अपनी आदत के मुताबिक बहुत कम बोलने का आदी था। लेकिन उस समय नशे में होने के कारण उसे अधिक बोलने में मज़ा-सा आने लगा और केवल दो क्षण रुक कर ही उसने आगे कहा, "हमारी दुनिया और थी। हमारे वर्ग के लोग अपने स्वार्थ के लिए निर्दयी और ज़ालिम हो सकते थे, लेकिन उन्हें ठगी और मक्कारी नहीं आती थी। लेकिन बिजनिस की दुनिया में बिना ठगी किए कोई भी लखपति नहीं हो सकता। शुरू-शुरू में यह सब मुझे बहुत बुरा लगता था···कई बार अब भी लगता है, लेकिन इस के बगैर हमारा गुजारा नहीं चल सकता जिस तरह किसी ज़मींदार के लिए बिना ज़ालिम हुए गुजारा नहीं चल सकता।"

"क्या कहते हो राव"? देवीसिंह उसी क्षण उबल पड़ा, "क्या मैं ऐसा हूँ?"

"तुम एक अपवाद ही कहे जा सकते हो।" राव ने भी उत्तर देने में देर नहीं की।

"राव साहब", ठाकुर उससे कहने लगा, "यह ठीक है कि हमारा वर्ग सदियों से अपने जुल्मों के लिए बदनाम रहा इसलिए अगर यह टूट रहा है···और अगर मैं कहूँ कि वह अपनी आखिरी साँसें गिन रहा है तो दोष या अपराध इस वर्ग का अपना ही है।" फिर राव हरीसिंह द्वारा कुछ क्षण पहले कही गई बात को सोचकर उसने कहा, "मेरा खयाल है जयचन्द बजाज जैसे आदमी के साथ काम करते हुए तुम जल्दी ही लाखों में खेलना शुरू कर दोगे ?"

"बिज़निस में दोनों संभवानाएँ रहती हैं। आदमी लखपति भी हो सकता है और दीवालिया भी !"

ठाकुर देवीसिंह ने उसके उत्तर की परवाह न करके आखिर उस बात को उगल देना चाहा जो कई दिनों से उसके भीतर को कांटे की तरह साल रही थी। उसने कहा, ''मैंने सुना है तुम अशोक का रिश्ता जयचन्द बजाज की लड़की से कर रहे हो?''

''हाँ, हो जाए तो क्या बुरा है?'' राव ने जैसे शब्दों को फेंकते हुए कहा और फिर वह तिपाई से सिग्रेट की डिबिया लेकर सिग्रेट सुलगाने लगा।

ठाकुर को ऐसे उत्तर की कतई आशा नहीं थी। उसने उषा के मुँह से जो सुना था वह उसने एक संभावित-सी बात के रूप में ही लिया था, लेकिन अब किसी तरह के संदेह की गुँजायश नहीं थी। उसे अपने अन्तर में टीस-सो उठती हुई महसूस हुई।

राव कहने लगा, ''यह रिश्ता हो जाने से मुझे यह फायदा होगा कि जयचन्द बजाज के साथ मेरी पार्टनरशिप और भी पक्की हो जाएगी और वह आदमी मुझे धोखा देने की कभी कोशिश नहीं करेगा!''

''अब मुझे चलना चाहिए!'' ठाकुर सोफे से उठ बैठा। उसके भीतर की टीस को क्रोध में बदलते हुए देर नहीं लगी और उसकी मुख-मुद्रा तमतमाने लगी। सिर्फ आत्मसम्मानवश ही वह राव से यह नहीं कह सका कि वह अपने वायदे से मुकर गया है...इसलिए वह एक विश्वासघाती आदमी है। आज से कई बरस पहले जब राव उसके साथ ही बारहखंभा रोड वाले बँगले में रहता था उसने अपने मुँह से यह इच्छा व्यक्त की थी कि अशोक की शादी उषा से होगी। ठाकुर को लगा कि इस आदमी को उसके वायदे की याद दिलाने की कोशिश करना भी व्यर्थ है। वह बिल्कुल बदल गया है इसलिए वह विश्वघासात कर सकता है।

राव नशे की हिलोर में इतना गहरा डूब चुका था कि वह ठाकुर के एका-एक उठकर चले जाने के निश्चय से और उसके चेहरे की बदली हुई भंगिमा से कुछ भी समझ न सका। उसने कहा, ''हाँ, रात काफी हो गई है और उषा बेचारी अकेली होगी। मेरा शोफर आप को गाड़ी में छोड़ आएगा!'' वह किसी तरह अपने-आपको संभालता हुआ पोर्च तक जाने के लिए ठाकुर के साथ-साथ जाने लगा।

□ छह

अपनी जमींदारी के सम्बन्ध में ठाकुर देवींसिंह के आगे वास्तविक सी स्थिति उत्पन्न हो गई थी। जितनी जल्दी संभव हो, वह इसे अपने ढंग से सुलझा लेना चाहता था। कई महीनों से वह एक तरह के मानसिक द्वन्द्व में रहा था और उस द्वन्द्व के कारण उसे अपने-आपसे खीझ भी होने लगती थी। आखिर उसने जो निश्चय किया वह उसकी पारिवारिक परिस्थितियों और सिद्धांतों के अनुकूल ही था। उसकी एकमात्र संतान ही थी और वह भी लड़की। यदि उसका कोई पुत्र होता तब शायद वह उतना बड़ा निश्चय कर लेने में अपने को कुछ कमज़ोर ही पाता। उसने अपने-आपको लम्बी सोच के बाद इस परिस्थिति के लिए तैयार कर लिया कि वह अपनी ज़मीनों को किसानों में बाँट देगा और मुआवज़े भी नहीं लेगा। सिर्फ लडोली गांव की थोड़ी-सी ज़मीन अपने पास रख लेगा ताकि ज़मींदारी की साख बनी रहे।

यह निश्चय कर लेने के बाद उसने अपने-आपको एक बदले हुए मनुष्य के रूप में देखा और उसके विचारों में अब किसी तरह की उलझन नहीं थी। वह स्वगत कहने लगता—ज़मीनें सिर्फ उन्हीं की हो सकती हैं जो अपने खून और पसीने से उन्हें सींचते हैं। सदियों से दूसरों के श्रम पर हमारे जैसे लोग ऐशो-आराम की जिंदगी गुजारते रहे और साथ ही उन पर जुल्म भी ढाते रहे। इससे बड़ा अन्याय और अत्याचार और दूसरा न हो सकता था। यह सचमुच नेकी का काम होगा यदि मैं इस जिल्लत को गले से उतार दूँ।

इस नए दृष्टिकोण पर आ जाने के राव से विश्वासघात से पैदा हुई अन्तचुभन को भी उसने यथासंभव वश में कर लिया। वह नए यथार्थ को समझ रहा था। जीवन के हर क्षेत्र में उसे लगता था जैसे खूब उथल-पुथल-सी मच गई हो।

एक दिन वह कांग्रेस की किसी महत्त्वपूर्ण बैठक में दो-तीन घण्टों की सारी कार्रवाई देखकर घर आया। उसके साथ लोक-सभा का कांग्रेसी सदस्य ठुकराल

भी था जिसका संक्षिप्त-सा परिचय मिसेज़ मनचन्दा के निवास-स्थान पर आयोजित चाय-पार्टी के दौरान दिया जा चुका है। चालीस-बयालीस का होने पर भी वह काफी युवा ही लगता है। वह बुश-शर्ट पहनता है जो अनिवार्यतः खादी की ही रहती है। व्यक्तित्व लुभावना और स्वभाव से विनोदशील। वह काँग्रेस के वामपक्षीय दल में है और उसके दिल में यह मत्त्हवाकाँक्षा बैठ चुकी है कि उसे बहुत ऊपर उठना चाहिए। और उसकी समझ में ऊपर उठ जाने का मतलब है मिनिस्टर बन जाना!

ठाकुर को अपने ड्राइंग-रूम का वातावरण कुछ घुटता हुआ सा प्रतीत हुआ इसलिए अपने अतिथि के साथ बाहर वाले बरामदे में बैठकर चाय पीना उसे अधिक अच्छा लगा। शाम के चार-सवा चार हुए थे और दिसम्बर महीने की फीकी पतली-सी धूप निकटवर्ती लॉन के पेड़-पौधों पर अलसाई-सी दिख रही थी। ठाकुर ने कुछ देर पहले मीटिंग में उठाई गई समस्या पर बहस को सोचकर कहा, "आज तो खुल्लमखुल्ला इस बात को स्वीकार कर लिया गया है कि काँग्रेस पार्टी में नैतिक पतन आ चुका है और इस में सिर्फ आपसी फूट ही नहीं भ्रष्टाचार भी बढ़ता जा रहा है।"

ठुकाराल ने इस पर यह टिप्पणी की, "ठाकुर साहब, सैंतालीस से पहले काँग्रेस की बागडोर ज़मींदार के हाथ में थी और अब जल्दी ही उद्योगपतियों और व्यापारियों के हाथ में आ जाएगी। हमारा बहुत-सा चुनाव-शुल्क इन्हीं लोगों के जेब से आता है और ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही है कि हमारी नीतियों पर इन लोगों का प्रभाव बढ़ता चला जाए। भ्रष्टाचार का बहुत बड़ा कारण राजनीतिज्ञों और व्यापारियों का आपसी गठजोड़ होता है और मेरा खयाल है ऐसा इस देश में भी होने लगा है!"

"लेकिन आप के वामपक्षीय दल की स्थिति क्या है?" ठाकुर ने पूछ लिया।

यह सुनकर ठुकराल अपनी हँसी न रोक सका। फिर बोला, "ठाकुर हमारा वामपक्षीय दल ऐसा कोई क्रांतिकारी दल नहीं और न यह यथार्थ अर्थों में वामपक्षीय ही है। हाँ, इतना जरूर है कि इस के होने से हम गुटों से निरपेक्ष रहने

की नीति का प्रतिपादन कर सकते हैं, साम्यवादी या समाजवादी देशों की थोड़ी-बहुत मदद पर भरोसा कर सकते हैं और एशिया व अफ्रीका के नए स्वतंत्र हुए देशों की अगवानी करने का दम भी भर सकते हैं। लेकिन ठाकुर साहब, हमारे दल में और दूसरी ओर दक्षिणपक्षीय दल में ऐसी कोई खाई नहीं। विचारों का थोड़ा-बहुत मतभेद तो होना ही चाहिए। काँग्रेस में जो फूट आ गई है वह सिर्फ सत्ता के लोभ की ही हो सकती है और हर कोई पूंजी या सत्ता को बटोर लेने के लिए दौड़धूप कर रहा है।···हम लोग अब तक व्यर्थ ही आदर्शवादी बने रहे ! मैं कहता हूँ यह सिवाए मूर्खता के और कुछ नहीं !"

"क्या मतलब ?"

"मतलब यह है ठाकुर साहब," ठुकराल यह बताते वक्त हँसने भी लगा, "कि हम आदर्शों की डुगडुगी लेकर क्यों बजाते रहें ? और लोग तो खूब माला-माल हो रहे हैं !"

ठाकुर अचकचाया-सा पड़ कर उसकी ओर देखने लगा। उसने जैसे दुख के स्वर में कहा, "तुम्हें तो ऐसा नहीं सोचना चाहिए ठुकराल !"

"जब सारी संस्था ही बदनाम होने लगी है तो दो-चार व्यक्तियों के अच्छे होने से क्या होता है ?"

"क्या व्यक्तिगत नैतिकता कोई अर्थ नहीं रखती ?"

प्रत्युत्तर में ठुकराल धीमे से मुस्करा दिया। फिर वह अपने लिए चाय की दूसरी प्याली बनाने लगा।

ठाकुर देवीसिंह कुछ क्षण गहरी सोच में डूबा रहा, फिर उसने कहा, "मैं कई सालों तक निष्क्रिय रहा हूँ। लेकिन अब मुझे महसूस होने लगा है कि निष्क्रिय हो जाना काफी बड़ी भूल होगी। काँग्रेस में भ्रष्टाचार आ गया है। इस के विरोध में काम तो किया जा सकता है और मेरा खयाल है कुछ और भी लोग होंगे जो मेरी तरह सोचते हैं। उनके साथ मिलकर, जैसे भी हो, मुझे यह काम जरूर करना चाहिए···।"

उसी क्षण उसने उषा को कारीडार में आते हुए देखा। वह बाहर जाने के लिए तैयार होकर आई थी यह उसके पहरावे से लक्षित हो रहा था। ठाकुर

को याद ग्राया कि मिसेज़ मनचन्दा ने उषा को रात्रि-भोज का निमन्त्रण दे रखा है।

उषा के निकट ग्राने पर ठुकराल ने कह दिया, "ठाकुर साहब, ग्रब हम पोलिटिकल बातें नहीं करेंगे। उषा को चिढ़ होती है!" वह उषा के उन शब्दों को नहीं भूला था जो उषा ने कई दिन पहले मिसेज़ मनचन्दा के घर हो रही चाय-पार्टी के वक्त कहे थे। उसने उषा का उत्तर जानने के लिए मुस्कराते हुए उसकी ग्रोर देखा।

"हाँ, मुझे सचमुच चिढ़ होती है भाई साहब," उषा बोली, "हम लोग राजनीतिक होने से कुछ ज्यादा ही दबे पड़े रहते हैं ग्रौर यह हमारी बौद्धिक ग्रपरिपक्वता का ही लक्षरण समझा जा सकता है।"

ठाकुर उसे समझाने के लहजे में बोला, "ऐसी बात नहीं है बिटिया! हमारे देश में नई-नई ग्राज़ादी ग्राई है इस कारण राजनीतिक बहस या बातें यहाँ बहुत होती हैं!"

"पापा," उषा ने कहा, "मैंने पढ़ा है कि इंग्लैंड में लोग ऐसी बातों में वक्त बर्बाद नहीं करते।"

"तो फिर क्या हुग्रा?" ठुकराल ने पूछ लिया।

"मैं बातचीत के हित को सोचकर ही कह रही हूँ," उषा ने उत्तर दिया। "जब से राजनीति हमारी बातचीत में ग्रा घुसी है तब से इस में चिड़चिड़ापन ग्रौर व्यंग्य जरूरत से ग्रधिक ग्रा गया है। ग्रब लोग हँसी-विनोद की बातें नहीं करते। उन्हें परिहास भी नहीं ग्राता। लेकिन हम स्त्रियाँ बातचीत की इन विशेषताग्रों को राजनीति से कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण समझती हैं।...पापा, मैं सरोज के घर जा रही हूँ!"

"डिनर का न्योता तो मुझे भी मिला है," ठुकराल बोला, "लेकिन ग्रभी तो बहुत वक्त पड़ा है।"

"सरोज दीदी मुझे वक्त से पहले ही बुला लेती हैं ग्रौर मुझे जाना पड़ता है!" कह कर उषा जाने के निमित्त बरामदे की सीढ़ियाँ उतरने लगी।

मिसेज़ मनचन्दा ने उस शाम का भोज ग्रशोक के ग्रनुरोध पर ही किया था

ताकि वह आर्टिस्ट अजीत की तस्वीरें बिकवाने के लिए अपने कुछ परिचितों को (जो उसकी समझ में आर्ट में रुचि रखने वाले थे) अपने घर एकत्रित कर सके···आज खूब मनोरंजन रहेगा ! यह विचार आने पर उषा मुस्करती हुई अपने बँगले से बाहर निकली और फिर वह फुटपाथ पर आकर पर आकर किसी टैक्सी की प्रतीक्षा करने लगी।

अभी तीन-चार मिनट ही हुए थे कि अशोक कार दौड़ाता हुआ वहाँ आया और कार उसके निकट रोक कर मुस्कराता हुआ बोला, "तशरीफ रखिए, मैं तुम्हें लेने आया हूँ !"

"मुझे तो उम्मीद नहीं थी और न मैंने इस तरह का अनुरोध ही किया था।"

उषा के यह कहते ही अशोक बोल पड़ा, "मैं बिना अनुरोध या आदेश के भी आ सकता हूँ और ऐसे भी आ सकता हूँ जब किसी को कोई भी उम्मीद नहीं होती यानी संयोगवश···एक्सीडेंटल !"

"अगर मुझे फुटपाथ पर आते ही टैक्सी मिल गई होती तो···?" उषा यह पूछते वक्त मुस्करा रही थी।

"तो क्या ?" अशोक ने उत्तर दिया, "इसे भी मैं संयोग ही समझ लेता। ···अब बैठ जाओ !" उसने हाथ बढ़ाकर अगली सीट की खिड़की खोल दी। पिछली सीट तस्वीरों के कैन्वेस से अटी पड़ी थी।

जब कार चली तो उषा ने पूछ लिया, "तुम्हारे आर्टिस्ट दोस्त नहीं आए ?"

"वह नहीं आना चाहता हमारी महफिलों में। उसे बस तस्वीरें बेचने से मतलब है।"

"हमारी महफिलों में ऐसा क्या है जो उसे बुरा लगता है ?"

"हमारी महफिलों में घिसे-पिटे मजाक सुनने को मिलते हैं, मेक-अप और सस्ती फिल्मों की बातें होती हैं और रुपए व स्टेटस के हिसाब-किताब से किसी के व्यक्तित्व को परखा जाता है। मेरे दोस्त को इन बातों में जरा भी दिलचस्पी नहीं।"

सुनकर उषा हँसने लगी और हँसते हुए बोली, "मेरा खयाल है वह भी

तुम्हारी तरह ही प्रगतिशील होने का दम्भ करता होगा !''

अशोक मर्माहत-सा होकर बोला, ''उषा, अगर तुम्हारे कुछ पूर्वाग्रह बन गए हैं तो इस के लिए कोई क्या कर सकता है ?''

''बस बुरा मान गए ?''

''तुमने मुझे दम्भी कहा !''

''मैंने तो सोच समझ कर ही कहा,'' उषा ने उत्तर दिया, ''लेकिन तुम ने मेरे ऊपर ऐसे ही पूर्वाग्रह रखने का दोष मढ़ दिया !''

''और इसी पूर्वाग्रह के कारण ही,'' अशोक कहने लगा, ''तुम मेरे व्यक्तित्व को···मेरे विचारों को समझ लेने में असमर्थ हो। मैं तुम से और तरह के व्यवहार की अपेक्षा रखता हूँ।''

उषा जैसे विजय-भाव से गमकते हुए मुस्कराने लगी। उसे हमेशा ही आनंद की पुलक होती थी जब-जब अशोक उसकी किसी बात से दुखी हो उठता था। उसके लिए यह समझ पाना कठिन था कि अशोक उससे और तरह के व्यवहार की अपेक्षा क्यों करने लगा है ? क्या यह सच नहीं वह आज तक अपने व्यवहार में उसके प्रति आत्मीय ही रही है ?···लेकिन यह बेवकूफ समझता क्यों नहीं ? अगले क्षण उसने अशोक को गहरा-सा उसाँस छोड़ते हुए सुना।

''क्या बात है अशोक ?'' वह उसे छेड़ते बोली, ''मेरे व्यवहार से दुखी हो रहे हो या नीना देवी की याद आ रही है ?'' जब अशोक की ओर से कोई उत्तर नहीं आया तो उसने पूछ लिया, ''इन दिनों नीना से कॉफी हाउस में भेंट नहीं हुई ?''

''तुम्हें इस से क्या ?'' अशोक ने बेमन से उत्तर दिया।

उसे खूब अच्छी तरह टटोल लेने की नीयत से उषा ने कहा, ''तुम ऐसे ही उससे खिचे-खिचे रहते हो ! उसमें ऐसी कौन-सी विशेषता नहीं जो किसी भी पुरुष को अच्छी न लगती हो !''

''सचमुच !'' संक्षिप्त-सा उत्तर देकर अशोक यथावत् ही ग्लास-स्क्रीन के बाहर देखता रहा। पंचकुइयाँ रोड पर भीड़ और ट्रैफिक के कारण उसे कॉफी मुस्तैदी से कार चलानी पड़ रही थी।

उसके अच्छी तरह खुल न पड़ने के कारण उषा खीझ उठी। बोली, "क्या आज बोल पाना कुछ कष्टप्रद-सा लग रहा है ?"

"तुम्हारे निरर्थक-से प्रश्नों का मेरे पास उत्तर नहीं।"

"यह कोई तर्क नहीं।"

मैंने तर्क करना छोड़ दिया है, "अशोक कहने लगा," इससे कोई भी उलझन साफ नहीं होती।...साफ होने की बजाए वह और भी ज्यादा उलझ जाती है।"

उषा ने कठिन-सी दृष्टि से उसकी ओर देख लिया। लेकिन अशोक के ऐसी अन्त:प्रेरणा नहीं हुई कि वह भी उसकी ओर क्षण-भर देख ले। वह कसी हुई मुद्रा में स्टेयरिंग को दोनों हाथों में थामे हुए ड्राइव करता रहा।

मिसेज़ मनचन्दा के बंगले पर पहुँचते ही अशोक चित्रों की प्रदर्शनी के काम में जुट गया। इस मतलब के लिए ड्राइंग-रूम को ही उपयुक्त समझा गया जहाँ छोटी-छोटी तिपाइयों की मदद से चित्रों को दीवार के साथ सटाया जा सकता था। वह कुल आठ ही कैन्वेस लाया था जो माडर्न शैली, अथवा यों कहना चाहिए, पश्चिमी शैली के अनुरूप बनाए गए थे। उनमें उतनी आकृतियाँ नहीं जितनी रेखाएँ थीं, उतनी रेखाएँ नहीं थीं जितने रंग थे और उन रंगों का प्रयोग कलाकार के किसी विशेष मूड को व्यक्त करने के लिए किया गया था। अशोक स्वयं इस विचित्र-सी शैली का मतलब नहीं समझता था। वह तो बस यही चाहता था कि दो-एक पेंटिंग्ज़ बिक जाएँ ताकि उसके दोस्त अजीत की कुछ आर्थिक सहायता हो जाए।

वह जब चित्रों को यथास्थान रख रहा था तब मिसेज़ मनचन्दा और उषा में मज़ेदार-सी बहस चल पड़ी थी। किसी विशेष कारण से मिसेज़ मनचन्दा ने ऐसा विषय छेड़ दिया था जिसमें अशोक की उपस्थिति उस कमरे में असंगत नहीं लगती थी। मिसेज़ मनचन्दा के यह कहने पर कि उषा ने घर से न निकलने की कसम खा रखी है, उषा ने उत्तर दिया, "मेरी परीक्षा बिल्कुल निकट आ पहुँची है!"

"इतना पढ़-लिखकर क्या करोगी ? आखिर तुमने एक दिन शादी ही तो

करनी है !"

"मुझे शादी से नफरत है। मैं आत्म-सम्मान का जीवन बिताना चाहती हूँ और शादी का मतलब है गुलामी···।"

उसी क्षण अशोक के खाँसने की आवाज़ आई। यह सोचकर कि अशोक जान-बूझकर ही खाँसा है उषा धीमे से हँसकर बोली, "भेड़ को जुकाम हो गया लगता है !" फुसफुसाते-से स्वर में ये शब्द कहे गए थे, इस कारण अशोक इन्हें सुन लेने में असमर्थ था।

मिसेज़ मनचन्दा ने कहा, "उषी, तुम ऐसे ही बन रही हो। जो तुम्हारे मन में होता है वह तुमने कभी अपने होंठों पर लाने की कोशिश नहीं की।"

"लेकिन यह बिल्कुल सच है !"

"अगर यह बिल्कुल सच है तो मैं पूछती हूँ ऐसा क्यों है ?"

उषा ने उत्तर दिया, "मैंने अपने को उन संस्कारों से मुक्त कर लिया है जिन्हें पुरुष अपने स्वार्थ के लिए सदियों से हमारे अन्दर ठोंसता रहा है कभी धर्म का सहारा लेकर और कभी अपने मतलब के सामाजिक नियम बनाकर। ···सरोज बहन, मुझे कवियों और दार्शनिकों पर भी बहुत गुस्सा आता है !"

"क्यों ?"

"इन लोगों ने स्त्री को शृंगार और भोग-विलास की वस्तु से ऊपर देखा ही नहीं। ऐसी-ऐसी उपमाओं और रूपकों से इन्होंने स्त्री के व्यक्तित्व का बखान किया है जिन्हें पढ़कर पुरुष पागल हो जाते हैं। समाज में जितनी भी अनैतिकता फैली है इन्हीं कवियों और लेखकों के कारण ही।···हमारा सही रूप इन लोगों ने इतना बिगाड़ दिया है कि हम अपने-आपको ठीक तरह से पहचान भी नहीं सकतीं !"

मिसेज़ मनचन्दा विस्मित भाव से यह सब सुनती रही। उसने कहा, "मैं नहीं जानती थी उषी, कि तुम ज़मींदार घराने की होकर इतनी ऊँची और शानदार बातें सोच सकती हो !" तभी उसने देखा कि अशोक ने दीवार के सहारे एक ऐसा चित्र टेक दिया है जिसमें खिंची हुई आकृति किसी आकर्षक-सी युवती की है। वह सोफे से उठकर अशोक के निकट चली आई और पूछने लगी, "यह

किस की तस्वीर है ?"

"दा ब्लू गर्ल !" अशोक उस चित्र के सम्बन्ध में उसके शीर्षक से अधिक नहीं जानता था ।

वह चित्र यथार्थ के इतने समीप अवश्य था कि उसमें खिंची युवती की आकृति को देखकर किसी और चीज़ का भ्रम नहीं होता था। उसने कहा, "यह पेंटिंग मैं ले लूंगी । कीमत कितनी है ?"

"तीन सौ रुपए !"

"बहुत ज्यादा है । मैं दो सौ दे दूंगी । क्यों ?"

"मुझे मंजूर है । बहुत-बहुत शुक्रिया !"

उषा सरसरी-सी नज़र से सभी चित्रों का परीक्षण कर लेने के बाद बोली, "अशोक, लगता है तुम्हारा आर्टिस्ट दोस्त पुरानी लकीरें पीटने वाला नहीं !"

अशोक ने सव्यंग्य मुस्कराते उत्तर दिया, "वह अपने को माडर्न कहता है !'

इससे पहले कि उन दोनों में फिर कोई बहस शुरू हो जाए, मिसेज़ मनचन्दा ने कहा, "मेरा खयाल है अब दो-चार हाथ रम्मी के हो जाएँ !"

वे रम्मी खेलने लगे । इस खेल में भी जैसे उषा अशोक को चिढ़ाने पर तुल गई थी । वह उसके दाएँ हाथ बैठी हुई थी और उसके पत्ते रोक लेती थी। लगातार कई बाजियाँ हारने के बाद वह मिसेज़ मनचन्दा के आगे आ गया। इस पर भी उसे सफलता नहीं मिली । खिन्न-मन-सा होकर उसने कह दिया, "एक ताश का ही खेल है जिसे औरतें बहुत अच्छी तरह खेल लेती हैं !"

"औरत चाहे तो आदमी को हर खेल में मात दे सकती है !" उषा किसी तरह भी अपने को यह कहने से रोक न सकी और उसे हँसी भी आ गई ।

इसके बाद काफी देर तक अशोक को कुछ भी कह देने का साहस नहीं हुआ । फिर मिसेज़ मनचन्दा किचन की ओर चली गई और वे दोनों अकेले रह गए । अशोक ने ताश के पत्ते फेंक दिए और चुभ जाने वाले स्वर में उषा से बोला, "उषी, मेरा खयाल है तुम्हारे पास शब्द ही शब्द हैं। तुम्हारे अन्दर भावना-जैसी कोई चीज़ नहीं रही !" न मालूम अशोक कब से अपने में घुटा हुआ बैठा था और यह सब उगल देने के लिए ऐसे ही क्षण की प्रतीक्षा कर रहा था।

भौंचक्की-सी पड़कर उषा ने उसकी ओर देखा। वह इस अप्रत्याशित से आक्रमण के लिए तैयार नहीं थी। उसने पूछा, "मैं समझी नहीं!"

"तुम कभी समझ नहीं सकोगी···न मुझे, न अपने-आपको और न किसी और को! लगता है तुमने अपने स्त्रीत्व के प्रति जैसे बगावत कर दी हो! तुम स्त्री नहीं रहना चाहतीं···बस चिन्तन में भटकी हुई एक समस्या!" अशोक के मुँह में जो-जो भी आया वह उसने कह दिया।

उषा के मन में हुआ कि वह हँस दे। हमारी हँसी कठिन क्षणों में आत्म-रक्षा का कितना बड़ा अस्त्र है, वह यह जानती थी। लेकिन अगले क्षण उसने अशोक की समूची मुखमुद्रा में एक ऐसा उन्मत्त, पीड़ा में काँपता हुआ मनोभाव देखा था कि वह संभल गई। "अशोक!" किसी तरह अपने स्वर को संयत करके वह बोली, "यह तुम किस लिए कह रहे हो?"

"आखिर कब तक···!" अशोक इतना ही कह कर रुक गया और फिर अपने अधूरे कथन की सफाई देते हुए कहने लगा, "नहीं! नहीं! मुझे गलत मत समझ लेना!" फिर वह उठा और ड्राइंग-रूम से बाहर निकल कर उस ओर चला गया जिधर लॉन था।

उषा बेचैन-सी दृष्टि से उसे बाहर जाते हुए देखती रही। वह उसकी मनः-स्थिति को समझ रही थी। उसे विचार आया···मेरी उपेक्षा के कारण ही जो आज तक मेरे उपहास और व्यंग्योक्तियों का माध्यम लेकर उसके मर्म को कचोटती रही है उसे इस तरह उबल पड़ने के लिए बाध्य कर दिया। वह मुझ से प्यार करता है और यह समझ बैठा है कि मेरे अन्दर भावना नाम की चीज़ है नहीं। लेकिन···लेकिन यह कितनी बेहूदा-सी बात है! पता नहीं उसका स्वाभिमान कहाँ चला गया?···तभी मिसेज़ मनचन्दा अन्दर आईं। उसके हाथ में प्लेट थी जिसमें तले हुए पनीर के टुकड़े रखे थे।

उसने पूछा, "अशोक कहाँ है?" फिर उषा की सोचपूर्ण-सी मुद्रा को देखकर और इसे अपने मतलब का अर्थ देकर बोली, "तुम्हारा जरूर उससे झगड़ा हुआ लगता है। उषी, यह जरूरी नहीं कि हम हर बात में आदमी से उलझने की कोशिश करें!"

उषा ने उत्तर दिया, "मैंने तो कुछ नहीं कहा।"

मिसेज़ मनचन्दा हँसती हुई बोली, "तुम जिन्दगी-भर उलझते रहोगे और एक-दूसरे को समझने की कोशिश नहीं करोगे।"

उसके शब्दों के निगूढ़ आशय को भाँप कर उषा जैसे छटपटाते हुए बोली, "लेकिन सरोज दीदी···।"

"मैं सब जानती हूँ," मिसेज़ मनचन्दा बिना एक क्षण का भी विलम्ब किए अपनी धुन में कहती गई, "तुम दोनों एक-दूसरे को प्यार करते हो, लेकिन संकोचवश या किसी और कारण इस बात को होंठों पर ला नहीं सकते। लेकिन मैं कहती हूँ होंठों पर ला सकने की भी जरूरत नहीं। बस इसकी मौन स्वीकृति तो हर हालत में हो जानी चाहिए। इससे इतना तो होता ही है कि व्यर्थ की उलझनें पैदा नहीं होतीं!"

सुनकर उषा जैसे स्वगत बड़बड़ाने लगी हो, "स्वीकृति···फिर शादी··· फिर बिल्कुल उबा देने वाला दाम्पत्य-जीवन! नहीं! नहीं! ऐसी नानसेंस-सी बात तो मैं कभी सोच ही नहीं सकती!"

उसी क्षण बाहर पोर्च के नीचे किसी कार के रुकने की खड़खड़ाती-सी आवाज़ सुनाई दी। मिसेज़ मनचन्दा ड्राइंग-रूम के दरवाजे की ओर जाते-जाते बोली, "मेरे मेहमान लोग आने लगे हैं!"

उषा ने अपने को हल्का झटका-सा दिया जैसे इस चेष्टा से वह अपने को स्वस्थ कर लेना चाहती थी।

□ सात

राव देवीसिंह कुछ दिनों के लिए अपने गाँव लडोली चले गए, जहाँ पुश्तों

से चली आ रही उनकी एक हवेली भी है। पिछली बरसात में इसके दो कमरों की छत गिर गई थी और अब कुछ दिनों बाद दिसम्बर के तीसरे या चौथे सप्ताह में सर्दियों की बरसात शुरू हो जाने से पहले वह चाहता था कि वहाँ जाकर छतें डलवाने का काम खतम कर ले। उषा की परीक्षा के कुछ पेपर रह गए थे इसलिए वह साथ न जा सकी। जब स्टडी से उसका मन उचाट हो जाता तो वह रसोई में चली आती। भीमू रसोइये और शिब्बू नौकर से कुछ देर बातचीत करके उसका खासा मनोरंजन हो जाता।

उस रोज़ काफी ज़ोर की ठण्ड पड़ रही थी जब वह शिब्बू को नाश्ता लाने का आदेश देकर फिर स्वयं कुछ मिनट बाद रसोई में चली आई। भीमू तब अँगीठी पर टोस्ट सेंक रहा था और शिब्बू चाय के बरतन ट्रे में रख रहा था। भीमू ने कहा, "नाश्ता तैयार ही है। मुई इन दिनों इतनी ठण्ड पड़ रही है कि मक्खन टोस्ट पर ढंग से जमता ही नहीं!"

उषा ऊनी नाइट-गाऊन पहने थी। फिर भी जगे हुए कोयलों की अँगीठी के निकट आकर और अतिरिक्त गर्मी पा लेने के मोह को वह कैसे छोड़ नहीं सकी।

"अरे भीमू," उषा जैसे किसी गहरी सोच से एकाएक सचेत होकर बोली, "सब्जी-तरकारी का तो तूने आज पूछा ही नहीं?"

भीमू के झुर्रियों-भरे चेहरे में विनोद की चमक-सी भर गई, "तो बैंगन ले आऊँ या कद्दू?"

उषा हँसने लगी। भीमू जो उसके पिता की उम्र का है और होश संभालने के दिन से इस घर में काम करता आ रहा है, अकसर उससे यह पूछकर छेड़ दिया करता है। बैंगन हो या कद्दू, उषा को इन दोनों सब्जियों से नफरत है।" गोभी और मूली के पराँठे बना दो।" उसने उत्तर दिया, "बहुत दिन हुए ये खाए हुए।"

भीमू इतनी जल्दी मान जाने को तैयार नहीं था। उस बूढ़े आदमी में विनोद-प्रियता कूट-कूटकर भरी हुई थी। बोला, "पराँठे? तू पराँठे खाना चाहती है? सुन उषी! आज की लड़की पराँठा खाकर मोटी होना नहीं चाहती

उसे तो बस दो-एक रूखी-सूखी चपातियाँ चाहिए जो एक छटाँक आटे की बीस बनें। क्यों ? मैं कहता हूँ वह मेरे हाथ का एक पराँठा खा ले तो पेट-दरद के मारे हाय-हाय मचा दे। लेकिन वह भी क्या करे बेचारी। वह तो सिर्फ़ हवा खाकर और पानी पीकर जीना चाहती है।" और भीमू खी-खी करके अपने विशिष्ट अंदाज़ में हँसने लगा।

"नहीं भीमू, ऐसी बात बिल्कुल नहीं।" उषा ने कहा।

"बिल्कुल यही बात है," भीमू उसके शब्दों का उपहास उड़ाता हुआ बोला, "आज की लड़कियाँ जब खाना खाती हैं तो चम्मच-भर चावल और एक चपाती खाकर हाथ धोने चली जाती हैं। मगर एक बात है उषी ! आज की लड़कियाँ बातूनी बहुत हैं। घण्टों बोलती चली जाएँगी और थकने का नाम नहीं लेंगी। जब हर वक्त उनका बातों से ही पेट भरा रहता हो उन्हें भूख क्यों लगेगी ? अब समझा यह सब गोलमाल क्या है ?" और वह जान-बूझकर ऐसे सिर हिलाने लगा जैसे बहुत बुड्ढा हो।

"मेरा खयाल है भीमू, तू भी बहुत बातूनी है ! अब मेरा नाश्ता जल्दी में मेज पर रखवा दो। यूनिवर्सिटी जाने का वक्त हो गया !"

जब वह रसोई से निकलने लगी तब भीमू ने पूछ लिया, "और कितने परचे रह गए ?"

"आज बस आखिरी है !"

शाम को मिसेज़ मनचन्दा उससे मिलने आई। वह उसे अपने साथ रिवोली ले जाना चाहती थी जहाँ उन दिनों एक अंग्रेज़ी फिलम सबीना चल रही थी जिसकी उन दिनों बहुत धूम थी। उषा को भला क्या आपत्ति हो सकती थी ! परीक्षा के कठिन परिश्रम के बाद उसे ऐसे ही मनोरंजन की आवश्यकता थी। वह उससे कहने लगी, "आपने सचमुच मेरे मन की बात कही है। इस परीक्षा ने तो मुझे बुरी तरह थका दिया है···और सरोज, पापा के यहाँ न होने से मुझे अकेलापन भी खलता रहा है।"

"और मैं समझती हूँ," मिसेज मनचन्दा कहने लगी, "कि तुम्हारे जैसी जवान लड़की को शादी करवा कर ही अकेलेपन से मुक्ति मिल सकती है और

कोई भी पापा पति की जगह नहीं ले सकता।"

सुनकर उषा हंसने लगी और उसने पूछ लिया, "क्या अब भी आपके अन्दर दूसरी शादी करवा लेने का भूत घुसा हुआ है ?"

"मेरी बात और है। मैं शायद इस झमेले में अब पड़ना न चाहूँ, क्योंकि मुझे लगता है कि दूसरी शादी एक बहुत बड़ा सामाजिक स्कैण्डल ही पैदा कर सकती है। मेरे लिए अकेलेपन से मुक्ति पा लेने का सिर्फ यही एक रास्ता है कि मैं अधिक-से-अधिक मनोरंजनों में अपने को डुबोए रखूं !···अब जल्दी से तैयार हो जाओ उषी। अगर हम बातों में उलझ गए तो फिर पिक्चर का वक्त निकल जाएगा।"

थोड़ी देर बाद जब वे कनाटप्लेस के रास्ते पर थीं उषा ने ऐसे ही कह दिया, "नीना को देखे हुए बहुत दिन हो गए। वह कैसी है ?"

मिसेज़ मनचन्दा ने उत्तर दिया, "परसों मैं उसके पास गई थी। न जाने क्यों अब तो वह और भी सुन्दर लगने लगी है !"

"इसका कारण नहीं पूछा ?"

"कहती थी कि सिन्धिया हाउस में मैडम चैनी नाम की किसी अंग्रेज़ महिला ने सेलून खोला है और वह ढाई-तीन सौ रुपयों में ब्यूटी-ट्रीटमेंट कर देती है।"

"बिल्कुल मूर्ख है !" उषा आन्तरिक खीझ से भर बोली, "किसी भी प्रेमी या पति की नज़रों में स्त्री का सौन्दर्य आकर्षण की नहीं उपभोग की वस्तु है या मुझे यह कहना चाहिए कि वह उसके उपभोग के लिए ही उस आकर्षण को समझता है !"

मिसेज़ मनचन्दा बोली, "ईश्वर के लिए उषी, तुम्हें एक मामूली-सी बात को इतनी गहराई से नहीं सोचना चाहिए। इस तरह तो हमारे लिए साँस लेना भी मुश्किल हो जाएगा।···एक स्कैंडल सुनोगी ?"

"क्या ?" उत्तर देकर उषा ने अपनी प्रौढ़ उम्र की सहेली की ओर देखा। मिसेज़ मनचन्दा के होंठों पर एक दिलफरेब-सी मुस्कराहट आ गई थी।

वह कहने लगी, "नीना का भाई सुरेश एक ऐसी लड़की से प्रेम करने लगा है जो उसके दफ्तर में स्टैनो या पी० ए० का काम करती है।"

"अगर वह सचमुच ही उससे प्रेम ही कर रहा है," उषा ने उत्तर दिया "तो इसमें मुझे कोई बुराई नहीं दीखती। क्या लड़की भी उसे चाहती है?"

"लड़की सुन्दर है और ग्रेजूएट भी है। ऐसी लड़की किसी अमीर लड़के को अवश्य प्रेम करना चाहेगी।"

"यह कोई जरूरी नहीं!" उषा ने उसे टोक दिया।

"सचमच नीना का परिवार बहुत ही रोमाँटिक है," मिसेज़ मनचन्दा हँसती हुई बोली, "उसके पापा और ममी ने भी लव-मैरिज ही की थी।"

रिवोली पहुँचने पर उन्हें पता लगा कि अभी तक मैटिनी-शो खत्म नहीं हुआ है। मिसेज़ मनचन्दा नें ऊपर वाली गैलरी की टिकटें लीं और फिर वे दोनों लाँज में चली गईं जहाँ दर्शकों की काफी बड़ी भीड़ एकत्रित थी।

कुछ मिनट बाद मिसेज़ मनचन्दा ने सुरेश को एक सुन्दर स्मार्ट-सी युवती के साथ कार से उतरते हुए देखा।" "उषी," वह उससे बोली, "जिस सुरेश की हम अभी बात कर रहे थे वह अपनी प्रेमिका के साथ पिक्चर देखने आया है।"

सचमुच उसके साथ सविता ही थी जिसका संक्षिप्त-सा परिचय प्रारम्भ में दिया जा चुका है।

"अरे!" उषा ने सुरेश के साथ सविता को देखा तो अपना विस्मय न दबा सकी।

"क्यों? क्या बात है?" मिसेज़ मनचन्दा ने पूछ लिया।

"इस लड़की को तो मैं अच्छी तरह जानती हूँ। उसका नाम सविता है और हमारे कालेज में ही बी० ए० तक पढ़ी है।"

लाँज में आने पर जभी सुरेश की नज़र उन पर पड़ी तो वह ऐसे ठिठक कर खड़ा हो गया जैसे चलते-चलते अचानक ही उसके सामने खाई-सी आ गई हो। फिर सविता ने भी उनकी ओर देखा और उषा को पहचान कर उसके पास चली आई। "क्या हाल है उषी?" वह बोली, "मुझे पहचाना है या नहीं?"

"मैंने पहली नज़र में ही पहचान लिया था। सचमुच, बहुत ही स्मार्ट लगने लगी हो!" फिर उषा ने उसका परिचय मिसेज़ मनचन्दा से कराया। मिसेज़

मनचन्दा अपनी जगह प्रशंसापूर्ण नज़रों से ही उसके हुलिए को देखती रही थी। उसने कह दिया, "मेरा खयाल है तुम जरूर पिंडी की रहने वाली हो। ऐसा रंगरूप और कहीं दिखाई नहीं देता।"

अत्यन्त सहज भाव से हँसते हुए सविता ने उत्तर दिया, "आपका अनुमान ठीक है। विभाजन से पहले हम लोग पिंडी में ही थे। कौम्पलीमेंट के लिए धन्यवाद!"

इतने में सुरेश जैसे अनमने भाव से अपने कदमों को घसीटते हुए उनके पास चला आया। वह अपने पिता की तरह ही नाटे से कद का था। लेकिन अपने पिता की तरह उसे एड़ियों पर उचकते रहने की आदत नहीं थी, पर उसके माँसल, मोटी भवों और बारीकी से तराशी गई मूँछों वाले चेहरे पर वैसा ही काइयाँपन था। अपने भड़कीले पहरावे के बावजूद वह कुछ अस्त-व्यस्त-सा ही दिख रहा था। मिसेज़ मनचन्दा और उषा को उसने 'गुड ईवनिंग' कहकर अभिवादन किया। उसके चेहरे पर किसी तरह का संकोच या झेंप दिखाई नहीं देती थी···कदाचित् इसलिए कि सविता के साथ उसका जो सम्बन्ध बन गया था उसे इसमें कोई अपराध नज़र नहीं आता था।

तभी शो खत्म होने की घण्टी घिरर्र्-घिरर्र् करने लगी और अगले शो की प्रतीक्षा में लाँज में एकत्रित जनसमूह इधर-उधर डोलने लगा।

अगली सुबह जब भीमू उषा को बैड-टी देने आया तो उसने कहा, "कल शाम जब तुम सनीमा गई थी तब अशोक बाबू यहाँ आए थे।"

सुनते ही उसी क्षण उषा के मन में एक तरह की खलबली-सी मच गई। "सच?" आश्चर्य से भर उसने कह दिया।

"सचमुच अशोक बाबू ही थे···बिखरे हुए बाल और कुछ सोचते हुए सिग्रेट फूँकते रहना जैसा कि उनकी पुरानी आदत ही है। मैंने उनसे कहा अशोक बाबू, अन्दर चलकर बैठिए। उषा बिटिया नौ बजे तक आ जाएगी। लेकिन वे घण्टा-भर बागीचे में ही टहलते रहे और टहलते-टहलते कुछ सोचते भी रहे···।"

उषा कुछ ऐसी खोई-सी दिखने लगी कि उसे यह ध्यान ही नहीं रहा कि

उसने चाय में कितने चम्मच चीनी डाली है। उसने एक घूंट भरा। चीनी सच-मुच अधिक लगी। भीमू ने उसकी उलझन को समझते हुए कहा, "अगर चीनी ज्यादा लगती है तो यह प्याली रहने दें, मैं और बना देता हूँ।"

"चीनी ठीक है!" उषा ने अपनी उलझन से बचते हुए कहा। चाय की प्याली को होंठों से लगाकर वह कुछ सोचती रही। मिसेज़ मनचन्दा के घर रात्रि-भोज के अवसर पर अशोक ने जो तीखे-कड़वे शब्द उसे कह दिये थे वे कई बार एकांतिक क्षणों में उसके भीतर टीस-सी उठा देते थे। वह आज तक इस बात के लिये अपने को क्षमा नहीं कर सकी थी कि क्यों उसने अशोक से वह सब सुन लेने पर उसका मुँह बन्द नहीं कर दिया था? वह अशोक को उससे कहीं ज्यादा समझती है जितना अशोक उसे समझता है। उसकी आदर्शवा-दिता एक नकाब है···धोखा!

उसे सचमुच अफसोस था कि कल शाम उसकी अशोक के साथ क्यों भेंट न हो सकी? यह अफसोस उस शिकारी के अफसोस से कितना मिलता-जुलता था जिसे अपना शिकार थोड़े फासले पर ही दिखाई दिया हो और फिर वह नज़रों से ओझल हो गया हो!

भीमू ने कह दिया, "लगता था जैसे अशोक बाबू दुखी-दुखी हों।"

"उसे कोई दुख-वुख नहीं," उषा ने उत्तर दिया, "आजकल हमारी फिल्मों में जो हीरो लोग करते हैं वही वह करना चाहता है। सच-सच बताना भीमू, उसने किसी पेड़ के तने के साथ पीठ सटाकर आसमान की ओर देखा था?"

"हाँ-हाँ," भीमू उसके शब्दों के व्यंग्य-भाव को न समझ कर अनुमोदन के स्वर में बोला, "पहले वे मौलश्री के नीचे खड़े हो गये और मुँह उठाकर आस-मान की तरफ देखने लगे। फिर वे सफेदे के साथ लगकर खड़े हो गये!"

उषा खिलखिलाती-सी हंसने लगी। भीमू के बाहर जाते ही वह बिस्तर से निकल आई और फिर ऐसे ही कौतूहलवश वह उद्यान की ओर जाने लगी। धूप निकल आई थी, लेकिन आसमान में बादलों की पतली-सी झाईं के कारण वह बुझी-बुझी और उदास-सी लग रही थी। मौलश्री के निकट आकर उसने देखा कि सिग्रेटों के जले हुए टुकड़े बिखरे पड़े हैं। सफेदे के तने के निकट भी उसे

कुछ ऐसे ही टुकड़े दिखाई दिये। पूरा उद्यान कितना आत्मीय-सा लग रहा था! बचपन से लेकर अब तक की स्मृतियाँ उसके साथ जुड़ी हुई थीं। उसे लगा कि अकेले उसका अपना अतीत ही नहीं···दस वर्ष पहले तक अशोक का अपना अतीत भी इसके साथ जुड़ा हुआ है। इसी मौलश्री की छाया के नीचे लेटे हुए टैनीसन की कविताएँ पढ़ना, इधर-उधर उछल-कूद करना और आपस में बात-बेबात पर झगड़ पड़ना, रूठ जाना और फिर सुलह कर लेने के लिए नई-नई तरकीबें सोचना···बरसात आने पर वे दोनों जामुन या अमरूद के पेड़ों का बहुत-सा फल कच्चा ही तोड़कर खा जाते थे।···उषा को खयाल आया कि सम्भवतः कल रात अशोक अतीत की उन्हीं स्मृतियों के कारण ही उद्यान में रुका रहा हो!

लेकिन मैं ऐसे ही भावुक हो रही हूँ और भावुकता मन की कमज़ोरी है। ···यह विचार आते ही उसने अपने को स्वस्थ कर लेना चाहा। फिर उसने पाँव से स्लीपर उतार दिए और नंगे पाँव लॉन के दूब पर चलने लगी। बाहर सड़क पर दिन का ट्रैफिक जमा होने लगा था।

शाम को वह अपनी निजी जरूरत की चीजें खरीदने के लिए कनाटप्लेस गई। क्वींज़-वे के एक स्टाल के बाहर उसे प्रीती और दीपी दिखाई दीं। उसे देखते ही वे दोनों मधुर घंटियों की तरह बज उठीं, "नमस्ते उषा दीदी!"

"तुम दोनों यहाँ क्या कर रही हो?" उसने पूछ लिया।

उत्तर प्रीती ने दिया, "हमने ड्राइंग वाली कापी लेनी थी। हमारा ड्राइवर हमें सैर कराते यहाँ ले आया!"

"सैर का बहुत मज़ा आया दीदी," दीपी बोली, "उसने इतनी तेज़ गाड़ी चलाई कि पसीने छूट गए!"

प्रीती हँसने लगी, "हाँ दीदी, इसका ही पसीना छूटा था। यह तो बहुत डर गई थी।"

"ओहो!" आत्म-रक्षा में केवल इतना ही कह कर दीपी ने अपने होंठों को सिकोड़ लिया।

उषा कुछ क्षण हँसती रही। फिर ऐसे ही उसने कह दिया, "आज मैं

अशोक को फोन करने की सोच रही थी।"

"किसे ? भैया को ?" यह कहते वक्त प्रीती को खूब ज़ोर की हंसी आ गई।" लेकिन भैया तो गाँव चले गए हैं···आज सुबह ही चले गए !"

"और वह ट्रेक्टर चलाएँगे। खेती करेंगे !" दीपी ने यह अपनी तरफ से जोड़ दिया।

यह सुनकर उषा का स्तम्भित रह जाना स्वाभाविक ही था। वह कभी सोच भी न सकती थी कि अशोक जिसे वह आज तक एक भावुक, निष्क्रिय और दँभी-सा युवक समझती रही थी इतना विचित्र और साहस-भरा कदम ले सकता है। वह रामपुर गाँव ही गया होगा जहाँ उनकी थोड़ी-सी ज़मींदारी रह गई है···उसे एकाएक विचार आया···और रामपुर गाँव उनके अपने गाँव से आठ-दस मील ही पड़ता है। उसे यह भी मालूम था कि राव साहब रामपुर गाँव की ज़मींदारी को भी बेच देना चाहते हैं।

"प्रीती !" उसने जिज्ञासावश पूछ लिया, "तुम्हारे डैडी ने उसे रोक लेने की कोशिश नहीं की ?"

"डैडी भैया से नाराज़ हैं !" इतना कह कर प्रीती ने उषा की कलाई पर अपना हाथ रख दिया और फिर वह कहने लगी, "चलो दीदी, हमारे घर चलो। आप तो कई महीनों से गईं ही नहीं !"

"हाँ-हाँ दीदी," दीपी ने भी उसे कलाई से पकड़ लिया, "जरूर चलो। माँजी आपको बहुत याद करती हैं।···और दीपी मैं आपको अपनी 'वाकिंग डाल' भी दिखाऊँगी !"

उषा कुछ सोचती सी असमंजस में खड़ी रही। फिर जैसे उसका अन्तर्मन बोल पड़ा हो। "अच्छा चलो !"

घर आने पर प्रीती और दीपी तेज़-तेज़ माँ के कमरे की ओर बढ़ीं। "उषा दीदी आई हैं !" प्रीती ने कमरे की देहलीज़ पर आते ही ऊँचे स्वर में घोषणा की।

पारवती वार्डरोब के आगे खड़ी थी और कुछ धुले हुए कपड़े उसमें तह करके रख रही थी। "सच !" उसका चेहरा उल्लास से जैसे खिल-सा गया।

उसी क्षरण उषा भी आ पहुँची। उसके नमस्ते के प्रत्युत्तर में पारवती ने उसके सिर पर हाथ फेरा।

उसने जैसे शिकायत के स्वर में कहा, "उषी, तुमने तो अपनी आंटी को बिल्कुल भुला दिया-सा लगता है।"

"ऐसी बात नहीं है माँजी," उषा ने उत्तर दिया, "पढ़ाई के कारण मुझे काफी व्यस्त रहना पड़ता है।"

"एक दिन अशोक कहता था," पारवती धीमे से हँस दी, "कि उषा ने पढ़-पढ़कर अपने को बहुत ही कमज़ोर कर लिया है।"

"क्या मैं कमज़ोर लगती हूँ ?" उषा ने पूछा।

"नहीं, आप सुन्दर लगती हैं !" प्रीती ने यह कहा और उसी क्षरण कमरे से भाग गई।

"और चालाक भी !" यह दीपी ने कहा और वह भी कमरे से निकल भागी।

उषा और पारवती खिलखिलाकर हँसने लगीं। लेकिन कुछ ऐसा हुआ कि हंस चुकने के क्षरण-भर बाद ही पारवती ने अपने चेहरे को असाधारण रूप से गम्भीर कर लिया और फिर वह कुछ सोचती-सी दरवाजे के बाहर देखने लगी। जैसे उसकी मन:स्थिति को समझकर ही उषा ने कहा, "मुझे पता लगा है कि अशोक गाँव चला गया है और वहाँ खेती करना चाहता है।"

"हाँ। और उसके डैडी···।" पारवती इतना कहकर अपनी आँखें झपकने लगीं जैसे आँसुओं को रोक लेने के प्रयास में हो। फिर कुछ क्षरण चुप रहने के बाद उसने कहा, "उसके डैडी उस पर बहुत ही खफा हुए हैं। कई दिनों से वे उसे समझा रहे थे और कई बार गुस्से में आकर डाँटने भी लगते थे···मगर अशोक ने यही ज़िद पकड़ रखी थी कि वह खेती का काम ही करना चाहता है। तुम ही बताओ उषी ! भला उससे यह काम कैसे हो सकेगा ?" यह पूछते वक्त पारवती की आँखों में कुछ गीली-सी चमक थी।

उषा कुछ बोली नहीं। उसने सिर्फ अपनी आँखों में सहानुभूति का-सा भाव लाकर पारवती को देख लिया।

"[1]अशोक सचमुच बहक गया है," पारवती कहने लगी, "खेती का काम कर लेना आसान तो नहीं। उस बेचारे को तो मालूम ही नहीं कि तेज़ धूप और कड़कती सरदी क्या होती है! उषी, हम लोगों की चाहे कितनी बड़ी ज़मींदारी रही हो, लेकिन खेती का काम तो दूसरे लोग ही करते रहे हैं।"

"आप बिल्कुल ठीक सोचती हैं," उषा ने उत्तर दिया, "सुख और ऐश्वर्य में पड़े हुए व्यक्ति के लिए यह काम कैसे हो सकता है?" इन शब्दों में कदाचित् हल्का-सा व्यंग्य भी था जिसे उषा अपनी उपेक्षा के कारण रोक पाने में असमर्थ थी।

"माँजी," कुछ क्षण बाद उसने कहा, "आपको इतना दुखी नहीं होना चाहिए!"

"उषी, ज्यादा दुख तो मुझे इस बात का है कि अशोक और उसके डैडी के बीच में काफी मन-मुटाव रहने लगा है। अशोक हमारा इकलौता बेटा है।"

उषा के अन्तर्मन का एक अंश ऐसा भी था जो यह सुनते वक्त संतुष्ट ही हुआ था, लेकिन तब भी वह जैसे यह कह देने के लिए बाध्य हो, "अंकल से उसे किसी तरह का झगड़ा नहीं करना चाहिए।"

"लेकिन मैं समझती हूँ," पारवती जैसे आक्रोश के स्वर में बोली, "कुछ कसूर तुम्हारे अंकल का भी है। जब अशोक बिज़निस में नहीं आना चाहता तो फिर वे उसके साथ जबरदस्ती क्यों करते हैं। और दूसरे जब जयचन्द बजाज की लड़की का रिश्ता उसे मंजूर ही नहीं···।" पारवती अपने वाक्य को अधूरा ही छोड़कर चुप हो गई। शायद यह सोचा हो कि उषा के समक्ष उसे इस तरह की बात नहीं करनी चाहिए।

उषा होंठों में बुदबुदाई, "माँजी, नीना काफी सुन्दर लड़की है।"

"लेकिन अशोक तो उसे पसंद नहीं करता।"

उषा को एकाएक महसूस हुआ जैसे अकस्मात् ही वह एक ऐसी कठिन-सी स्थिति में फँसने लगी हो जिससे बाहर निकल सकना उसके लिए दुष्कर हो जाएगा। वह मन-ही-मन छटपटाती हुई खामोश हो गई।

पारवती ने कहा, "जिसे अशोक पसंद नहीं करता उसे मैं कैसे पसन्द कर

सकती हूँ ? दूसरे एक यह बात भी है उषी कि नीना के घरवाले कुछ और तरह के लोग हैं। यह ठीक है हमारी उन लोगों के साथ बिज़निस के कामों में साझेदारी रहती है, लेकिन यह कैसे हो सकता है कि हम उन लोगों का-सा रहन-सहन और सोचने का ढंग अपना लें ! नीना कितना फैशन करती है और अब मैंने सुना है वह बाल-डाँस भी सीखने लगी है।"

किसी तरह की टिप्पणी करना उपयुक्त न समझकर उषा मौन ही रही। उसे सहसा अनुभव हुआ कि उसने यहाँ आकर मूर्खता ही की है। जिस तरह की परिस्थिति उस घर में बनी हुई है उसमें उसका वहाँ चले आना सम्मानजनक न हो सकता था। अशोक की माँ ने सचमुच ही यह सोचा होता कि वह अशोक को मिलने के लिए ही यहाँ आई है।···मेरे ईश्वर ! वह मन-ही-मन अपने से उलझने लगी···यह मैंने क्या किया ? मेरे विवेक···मेरी समझ को क्या हो गया ! इतने में प्रीती और दीपी जैसे उसे उसकी दुविधाजनक-सी परिस्थिति से बाहर निकालने के लिए ही वहाँ आ गईं। दीपी छोटे से आकार की 'वाकिंग डाल' का हाथ पकड़े हुए ला रही थी और वह बेजान-सी गुड़िया छोटे-छोटे कदम लेते हुए अपने-आप चलते रहने का विभ्रम-सा पैदा करती थी। "हाऊ नाइस !" उषा के होंठों से निकला और उसकी आँखे कौतूहल से सचमुच ही फटने को आ रही थीं।

तीन-चार दिन बाद उषा को पिता की चिट्ठी मिली। लिखा था—मुझे कुछ चोट लग गई है। ठीक होते ही लौटूंगा। कोई चिन्ता की बात नहीं।··· चिट्ठी पढ़ते ही उषा सुन्न रह गई। उसने उसी क्षण गाँव चले जाने का संकल्प कर लिया। भीमू को उसने साथ ले लिया और शिब्बू को बंगले की देख-रेख के लिए पीछे छोड़ दिया।

उनका गाँव लडोली दिल्ली से बीस-बाईस मील की दूरी पर है। वहाँ मोटर भी जाती है। उषा जब वहाँ पहुँची तो उसने अपने पिता को बिस्तर में लेटे हुए पाया। वह दौड़कर उसके निकट चली गई। "क्या हुआ पापा ? ज्यादा चोट तो नहीं आई ?" उसका स्वर मनोव्यथा में डूबा हुआ था।

"मैं सीढ़ियों से फिसल गया था। भगवान का शुक्र है कि रीड़ की हड्डी

टूटते-टूटते बच गई !"

"कितने दिन हो गये ?"

"चार-पाँच रोज़ हो गये। लेकिन अब मैं काफी ठीक हूँ। तुझे इन दिनों क्रिसमिस की छुट्टियाँ हो गई होंगी।"

उषा क्षोभ के लिये स्वर में शिकायत-सी करने लगी, "लेकिन आपने मुझे उसी दिन ही बुला लिया होता। क्रिसमिस की छुट्टियों से कई दिन पहले ही मेरी परीक्षा खत्म हो गई थी !"

"इसका मुझे पता नहीं था," ठाकुर देवीसिंह मुस्कराते हुए कहने लगा, "वैसे उषी मुझे यहाँ आयडैक्स नहीं मिल सकी, लेकिन मीठे तेल की मालिश और सेंक देते रहने से काफी फायदा हुआ है। परसों अशोक भी आया था। उसने ट्रैक्टर ले लिया है और फार्मिंग करने की सोच रहा है !"

"उसका दिमाग खराब है !" उषा जैसे एकाएक भड़क उठी हो।

ठाकुर देवीसिंह किसी तरह भी अपनी हँसी न रोक सका। फिर बड़े शांत से स्वर में उसने कहा, "ऐसा नहीं कहते उषा बिटिया ! अब तुम मुँह-हाथ धो लो और कुछ खा-पी लो !"

पिता के इन शब्दों को सुनकर ही उषा को यह संज्ञा हुई कि शाहदरा से आगे कई मीलों तक उसकी बस कच्ची सड़क पर ही चलती रही थी और इस कारण उसका चेहरा सचमुच ही धूलि-धूसर सा लग रहा होगा। फिर ऐसे ही उसने उचटती-सी नज़रों से आसपास देख लिया। उनकी पुरानी हवेली के उस कमरे का सब कुछ कितना अपरिचित-सा लग रहा था। उस कमरे की छत, दीवारें, खिड़कियाँ और दरवाजे···और उसी तरह वहाँ पड़ा हुआ फरनीचर और सजावट का दूसरा सामान ऐसी दुनिया के अवशेष लगते थे जो अब अतीत में विलय होने लगी थी।···तभी एक बड़ी उम्र का आदमी जिसके बाल खिचड़ी हो रहे थे, कमज़ोर झुर्रियों-भरा चेहरा था और कमर को किंचित् झुकाकर चलता था, वहाँ आकर उषा को पहचान लेने के बाद बोला, "रानी बिटिया आई है ?" यही रामभरोसे था जो उस हवेली की चौकीदारी किया करता था।

उषा अपनी जगह उसे पहचान लेने की कोशिश करने लगी। उसे ऐसे लगा जैसे अतीत के धुँधलके से कोई भूली-बिसरी आकृति बाहर आ गई हो और उसे चुनौती-सी दे रही हो। सात-आठ साल पहले ही तो उसने इस व्यक्ति को देखा था···खूब बलिष्ठ, फुर्तीला और दमकता-सा चेहरा ! पर अब तो वह जैसे अपनी उस तस्वीर की उपहासमयी अनुकृति ही लगता था। "मैं तुम्हें पहचान गई हूँ रामभरोसे ?" उषा ने उससे कहा, "लेकिन तू इतनी जल्दी बूढ़ा कैसे हो गया ?"

"मैं कई साल जूड़ी के बुखार में पड़ा रहा हूँ। ठीक इलाज नहीं हो सका !" कहकर उसने बड़ी कातर और विवश-सी नज़र से उषा की ओर देखा।

उषा को लगा कि रामभरोसे जैसे हवेली की बूढ़ी आत्मा हो जो सशरीर उसके सामने आ गई हो। यह विचार ऐसा ऊटपटाँग-सा था कि सहज ही उस सारे वातावरण के प्रति एक उत्कट-सी वितृष्णा उसके भीतर भरने लगी। उसने सोच लिया कि जितनी जल्दी संभव हो सके वह अपने पिता को यहाँ से ले जाएगी।

□ आठ

अगले दिन अशोक भी आ गया। उसके साथ उसका दोस्त अजीत आर्टिस्ट भी था। कल शाम को ही वह अशोक के निमन्त्रण पर रामपुर चला आया था और पेंटिंग करने का कुछ सामान भी ले आया था। लडोली जाने के लिये ट्रैक्टर की सवारी ऐसी बुरी नहीं थी। वे घण्टे-भर में वहाँ पहुँच गये। अशोक

ने हवेली से कुछ फासले पर ट्रैक्टर रोक लिया, क्योंकि उसके आगे हवेली को रास्ता ऊँचाई पर जाने लगता था। अजीत ने उससे कहा, "मैं यहाँ स्कैचिंग के लिये थोड़ी देर रुकूँगा। मुझे काफी मैटीरियल दिखाई दे रहा है।"

"बहुत अच्छा," अशोक ने ट्रैक्टर से उतरते हुए उत्तर दिया, "जब अपना काम खत्म कर चुको तो फिर सीधे इस रास्ते पर चले आना। आगे हवेली का फाटक आ जाएगा!" फिर उसने सरसरी नज़र से उस हजूम को देख लिया जो ट्रैक्टर के पीछे-पीछे गाँव की परिधि में दाखिल होते ही शोर करता हुआ, दौडता हुआ चला आया था। ये गाँव के बेशुमार बच्चे और कुछ बड़ी उम्र के लड़के थे जो अपनी मैली बेढँगी आकृतियों में असीम कौतूहल लिये विज्ञान के उस करिश्मे को देख रहे थे। आसपास घरों के दरवाज़ों पर औरतें भी थीं और गलियों में चारपाइयों पर लेटे हुए बूढ़े लोग भी उस अचरज को देखने के लिये उठ खड़े हुए थे।

हवेली के अन्दर आने पर सर्वप्रथम अशोक की भेंट भीमू से हुई। उसकी उपस्थिति से अशोक ने यह अनुमान करने में देर नहीं की कि सम्भवतः उषा भी आई हो। "राम-राम! छोटे सरकार!" भीमू के इस सम्बोधन के प्रत्युत्तर में अशोक ने पूछ लिया, "कब आया भीमू?"

"हम कल आये थे। उषा भी आई है।" यह कह कर भीमू आश्चर्यान्वित-सा उसे घूरने लगा।

"क्या बात है भीमू?"

"आपके पहरावे को देख रहा था। बिल्कुल बदला हुआ सा लगता है।"

अशोक खाकी कमीज, कार्डराय की पेंट और चाकलेटी रँग का ट्वीड-कोट पहने था। बाल लापरवाही से बिखरे हुए थे और उसके समूचे व्यक्तित्व में एक विचित्र उखड़ा-उखड़ा-सा भाव था। फिर भी भीमू की फबती को सुन-कर वह मुस्कराने लगा। उसे लगा कि उसे मुस्कराती हुई मुद्रा के साथ ही उषा का सामना करना चाहिये।

भीमू उसे वहाँ ले आया जहाँ ठाकुर और उषा मेज़ के आगे बैठे नाश्ता कर रहे थे। कमरे की देहलीज पर आते ही भीमू ने उसके आने की घोषणा

की, "छोटे सरकार आए हैं !"

देवीसिंह ने अशोक को देखते ही कहा, "तुम्हारी बहुत लम्बी उम्र है अशोक ! हम तुम्हारे बारे में ही बातें कर रहे थे।"

"नमस्ते अंकल !" उसने निकट आते हुए कहा और जब उषा ने नज़रें उठाकर उसकी ओर देखा तो उसे यह कहना पड़ा, "नमस्ते उषा ! तुम्हें यहाँ देखकर बेहद खुशी हुई !"

उषा ने उत्तर दिया, "नमस्ते अशोक ! कुशल तो है। यहाँ आने का बहुत कष्ट किया !"

"उषी !" देवीसिंह ने उससे कहा, "मैंने तुझे बताया तो था कि अशोक मेरे चोट लगने का सुनते ही यहाँ चला आया था। सचमुच हम दोनों को ही उसके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए !"

अशोक एक कुरसी खींचकर बैठ गया। उषा से नज़रें मिलीं तो उसने प्रयत्नपूर्वक तत्क्षण अन्तर्मन में उमड़ आए किसी दुखते-से भाव को दबा लिया। वह किसी तरह-तरह खुश-खुश ही दिखाई देना चाहता था। उषा ने पूछा, "नाश्ता करोगे न ? काफी अच्छा दलिया बना है। अगर दो-चार पराँठे भी खाना चाहो तो वे भी बनवाए जा सकते हैं !"

"तुम्हें पता ही है उषा कि मुझे ज्यादा खाने की आदत नहीं।"

"लेकिन यह आदत तुम्हें अब बदल देनी होगी। जब तुम देहात में आ बसे हो तो तुम्हें देहातियों की तरह ही खाना चाहिए।"

अशोक नहीं जानता था कि उषा नाश्ते के सम्बन्ध में पूछकर अपनी बात को यहाँ तक खींचती ले आएगी। सचमुच उसने व्यंग्य ही किया था। फिर भी अशोक को अपने भीतर किसी तरह की तिलमिलाहट अनुभव नहीं हुई। वह धीमे-धीमे हँसने लगा।

देवीसिंह ने कहा, "अच्छा हुआ तुम आ गये अशोक। उषा कल से ही यहाँ आकर बोरडम-सा महसूस कर रही है।"

"मेरे साथ मेरा आर्टिस्ट दोस्त अजीत भी आया है। मेरा खयाल है उषा उसकी पेंटिंग्ज़ के माध्यम से उसे पहले जानती ही है।"

अशोक से यह सुनने की देर थी कि उषा उतावली-सी होकर बोली, "वह कहाँ है ? तुम्हारे साथ तो नहीं ?"

"वह स्कैचिंग करने के लिये हवेली को आने वाले रास्ते पर रुक गया है। वह थोड़ी देर में अपने आप आ जाएगा।"

"वह एक माडर्न आर्टिस्ट है," उषा आश्चर्य-सा करते हुए बोली, "उसकी भला गाँव के स्कैचिंग में क्या रुचि हो सकती है ?"

"वह माडर्न कला-दृष्टि से गाँव को देखना चाहता है !" उत्तर देकर अशोक को फिर हँस पड़ने की अन्तःप्रेरणा-सी हुई। उसे लगा कि ठाकुर विस्मित-सी नज़रों से उसकी ओर देख रहा है।

न मालूम क्या सोचते हुए ठाकुर ने गहरा-सा निःश्वास लिया। फिर उसने उषा से कहा, "उषी, दो आदमियों का नाश्ता और चाहिये। यदि हो सके तो दलिये के इलावा कोई और चीज़ भी बनवा लो।"

उषा के वहाँ से हटते ही ठाकुर ने अशोक से कहा, "अशोक, आज मैं तुम्हें उस दिन की अपेक्षा काफी बेहतर देख रहा हूँ। उस दिन तुम सचमुच ही बहुत उदास और बुझे-बुझे से लग रहे थे !"

अशोक ने सोचा कि उसका अन्तर्द्वन्द्व जितना टीसता हुआ उस दिन था उतना ही आज है और सिर्फ प्रयत्नपूर्वक ही उसने इसे अपनी मुद्रा में लक्षित हो जाने से रोक रखा है। अगर वह अभिनय ही कर रहा है तो यह कितना संतोषप्रद है !···उसने बड़े संयत भाव से और जैसे अपने प्रत्येक शब्द पर विमर्श करते हुए उत्तर दिया, "मुझे सचमुच ही दुख होता है जब मैं यह सोचता हूँ कि मुझे अपने डैडी के प्रति विद्रोह करना पड़ा।" फिर अगले ही क्षण उसे अनुभव हुआ कि 'विद्रोह' उपयुक्त शब्द नहीं। उसने अपनी भूल सुधार लेने में देर नहीं की।···"मेरा मतलब है काका, मुझे विरोध करना पड़ा।"

ठाकुर कुछ सोचते हुए अपने आगे प्लेट में पड़े दलिए को खाने लगा। चंद रोज़ पहले इस प्रसंग में उसने जो कहा था वह अशोक को याद था—अशोक, मैं बिल्कुल नहीं चाहता कि तुम्हारे और राव साहब के बीच किसी तरह का मन-मुटाव रहे। पिता-पुत्र के आपसी सम्बन्ध साधारण तथ्यों से बहुत ऊपर

रहते हैं।···अशोक नहीं चाहता था कि ठाकुर आज फिर वही शब्द दोहरा दे। इसलिए अपने दृष्टिकोण को और भी पुष्ट कर देने की नीयत से उसने कहा, "अंकल, डैडी से समझौता कर लेने का मतलब होगा उनके बताए हुए रास्ते पर चलना···और यह मुझसे नहीं हो सकेगा!"

"पिछले दिनों", ठाकुर कहने लगा, "मैंने किसी पत्रिका में एक लेख पढ़ा था···विद्रोही पीढ़ी। तुम्हारी बातें सुनता हूँ तो मुझे उस लेख की याद आ जाती है।"

अशोक बोला, "मैं विरोध के लिए विरोध नहीं करता। जिस तरह आप भी काँग्रेस का विरोध के लिए विरोध नहीं करते। मेरे कुछ सिद्धान्त हैं। वे सिद्धान्त मुझे अपने डैडी की पूँजी और सम्पत्ति से भी ज्यादा प्रिय लगते हैं!"

"ईश्वर तुम्हें सुखी रखे!" ठाकुर ने यह कहा और उसका दायाँ हाथ जिसमें दलिए वाला चम्मच था क्षण-भर के लिए काँप-सा गया।

"क्या बात है काका?" अशोक अत्यन्त भावपूर्ण-सी मुद्रा में उसकी ओर देखने लगा।

"मेरा मतलब है," ठाकुर ने अपने स्वर को यथासम्भव किसी मनोभाव से खिचा जाने नहीं दिया, "कि सिद्धान्तों के बूते पर जीने के लिए कठिनाइयों और दुखों को ही सहेजना पड़ता है इसलिए यह आसान काम नहीं। मैं काँग्रेसी होते हुए भी उन लोगों की नज़रों में खटक रहा हूँ जिनके पास सत्ता है। पिछले दिनों प्रदेश काँग्रेस कमेटी की मीटिंग में मैंने कुछ सिद्धान्त की बातें कही थीं और बहुत से लोग मेरी हँसी उड़ाने लगे थे। और सुनो···मैंने बिना मुआवजे के ही अपनी जमीनें किसानों में बाँट दीं और इस इलाके के ज़मींदार मुझे गालियाँ देने लगे हैं···।"

अशोक जैसे चमत्कृत-सा होकर बोल पड़ा हो, "सचमुच! यह कितना अच्छा है···शानदार!"

"लेकिन अशोक, एक बात मैं और कहूँगा," ठाकुर पहले के से शान्त धीर स्वर में कहने लगा, "तुम्हारे मामले में यहाँ तक सम्भव हो सकता है मेरी सद्-भावना तुम्हारे साथ ही है, लेकिन मैं राव साहब की नज़र में गलत समझा नहीं

जाना चाहता···।''

इस स्थल पर अकस्मात् ही ठाकुर और अशोक ने एक-दूसरे की ओर देख लिया। सहज ही अशोक उसके शब्दों के भीतरी आशय को भाँप गया और यह अनुभूति कचोटती-सी पीड़ा का रूप लेकर उसके अन्दर पैदा हुई। उसे लगा कि ठाकुर ने जो कहा उसमें आत्म-सम्मान का ही भाव है···और किसी भी बात का स्वाभिमान उसमें नहीं। उसने कहा, ''अंकल, विश्वास कीजिए आपके सम्मान पर किसी तरह की आँच नहीं आने दूँगा। मुझे बस आपसे प्रेरणा मिलती रहनी चाहिए !''

उसी क्षण उसे उस दरवाजे पर अजीत की आकृति दिखाई दी जिस दरवाजे से वह स्वयं अन्दर आया था। इस समय अजीत ने फ्रैंच-स्टाइल की दाढ़ी बना रखी थी और वह सूट-टाई भी लगाए था। ''अन्दर आ जाओ अजीत ! रुक क्यों गए ?'' अशोक ने उससे कहा और वह उसके स्वागत के लिए ही कुरसी छोड़कर उठ खड़ा हुआ।

उसके निकट आने पर ठाकुर ने उससे कहा, ''आप अशोक के दोस्त हैं। इस घर को अपना ही समझो। तुमसे मिलकर सचमुच खुशी हुई।''

''थैंक यू ठाकुर साहब !'' यह कहकर अभिवादन के लिए अजीत ने अपना हाथ ऊपर किया। फिर जैसे एकाएक कुछ स्मरण हो जाने पर उसने पूछ लिया, ''सुना आपको चोट लग गई थी ? अब आप कैसा महसूस कर रहे हैं ?''

''आज इतना तो है,'' ठाकुर ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, ''कि चारपाई से उठकर कुरसी में आ बैठा हूँ।···कृपया बैठिए। मेरी बेटी नाश्ता लेकर आती ही होगी।''

''ठाकुर साहब, अशोक आपकी बहुत तारीफ किया करता है। मुझे उसका कृतज्ञ होना चाहिए कि आपके दर्शन करा दिए !''

उषा अन्दर आई। उसके पीछे-पीछे भीमू था जिसने एक बड़ी सी ट्रे में खाने-पीने का सामान उठा रखा था।

किसी तरह झेंप महसूस किए बिना उषा ने उसकी ओर देख लिया। निकट आकर उसने कहा, ''मिस्टर अजीत, आपके नाम और कला से तो

परिचित हूँ। मुझे उषा कहते हैं !"

"नमस्ते !" यह कह कर अजीत ने भेदती-सी नजर से उसकी ओर देखा जैसे वह किसी कला-वस्तु को ही देख रहा हो।

भीमू जब नाश्ते का सामान मेज़ पर रख रहा था तो अशोक को परांठे भी दिखाई दे गए। वह अपने को यह कहने से न रोक सका, "उषा, मैं तो ठहरा देहाती आदमी ! दो-एक परांठे खा लूंगा। लेकिन ये तो आध-दर्जन से कम नहीं।"

"सभी आपके लिए थोड़े ही हैं। आपके दोस्त भी तो खाएँगे !"

अजीत बोला, "सभी इनके लिए ही होने चाहिए। पता नहीं इन्हें क्या हो गया है कि दो-तीन दिन से जिस दिन से मैं इनके साथ हूँ इन्होंने ठीक ढंग से खाना नहीं खाया।"

"क्या ?" ठाकुर के होंठों से निकला और वह कुछ सोचता हुआ अशोक की ओर देखने लगा।

अशोक ने बहुत चाहा कि उसकी मुद्रा यथावत् ही रहे, लेकिन फिर भी उसके अन्तर्द्वन्द्व की धूमिल-सी परछाईं उसकी आँखों में झलक उठी। उसने मुस्कराते हुए, हालांकि वह मुस्कराहट पीड़ा के अधिक अनुरूप ही थी, उत्तर दिया, "आप मेरे दोस्त की बात पर बिल्कुल विश्वास न कीजिए। वह आर्टिस्ट है और आर्टिस्ट अतिरंजना से काम तो लेता ही है। हा ! हा !" वह हँसने भी लगा। उसकी हँसी कितनी बनावटी-सी थी !

उसके हँसी में सिवाए उषा के और किसी ने योग न दिया। शायद वह हँस-कर उसकी हंसी का उपहास ही उड़ाना चाहती थी। ठाकुर ने घूरते हुए उसकी ओर देखा। उषा ने आत्मरक्षा में कहा, "मुझे यह सुनकर हँसी आ गई कि आर्टिस्ट अतिरंजना से काम लेता है। और यह बात अशोक ने अपने दोस्त के बारे में कही जो माडर्न आर्टिस्ट है !"

"तुम्हारा मतलब है मुझे विकृति कहना चाहिए था ?" अशोक ने पूछा।

"आप दोनों ही गलत सोचते हैं," अजीत बोला, "आज की कला में आप लोग जिसे यथार्थ की विकृति या फिर अतिरंजना समझ लेते हैं वास्तव में कला-

कार का स्वानुभूत सत्य है···।''

उसे टोकते हुए ठाकुर ने कहा, ''मेरा खयाल है आप लोग कुछ खाते रहें और साथ-साथ वातें भी करते रहें !''

''यह ठीक है !'' अजीत ने अनुमोदन में कहा और वह डोंगे का ढक्कन उठाकर अपनी प्लेट में दलिया डालने लगा। वह कुछ सोचते हुए मुस्करा रहा था और उसकी तीखी-सी नाक की टिप और भी चमकने लगी थी। उसका माथा जो गंजेपन के कारण भी काफी चौड़ा लगता था उसके मेधावी होने का प्रमाण था। फ्रेंच-स्टाइल की दाढ़ी भी किसी हद तक उसके व्यक्तित्व को विलक्षण रूप से प्रबुद्ध बनाने में भी सहायक हुई थी। कुछ मिनट बाद उषा और वह कला-चर्चा करने लगे। उषा श्रद्धा भाव से ही उसकी बातें सुनने लगी थी क्योंकि अजीत जो कुछ कह रहा था वह उसके लिए बिल्कुल नया और कौतूहलपूर्ण था। अजीत के बोलने का ढंग भी कम आकर्षक नहीं। कुछ शब्द कहकर वह ठहर जाता और फिर ऐसे हाथ हिलाने लगता जैसे किसी जटिल-सी उलझन से अपने को मुक्त कर लेने की कोशिश में हो और उसकी यह आन्तरिक छटपटाहट उसके बहुत ही पतले, झिल्लीदार चेहरे में व्यक्त हो जाती। अशोक को लगा कि उसका दोस्त केवल उषा को प्रभावित करने के लिए अपने शब्दों ···और ऐसे ही उनके अर्थों को भी जटिल और दुरूह बनाने की कोशिश कर रहा है। उस तरह की वातों में उलझ जाना व्यर्थ समझकर वह चुप्पी··· सचेतन-सी चुप्पी बनाए बैठा रहा। अपने होंठों को व्यंग्य से सिकोड़ कर उसने अजीत के इन शब्दों को सुना····''यथार्थ से सम्बन्धित भावनाओं या विचारों के वशीभूत होकर मैंने अपनी पेंटिंग्ज बनाना छोड़ दिया है। मैं बस सूक्ष्म को पकड़ लेने की कोशिश करता हूँ और इसे मूर्त रूप देने के लिए मैं परम्परागत रंगों और रेखाओं को स्वीकार करना नहीं चाहता !''

अशोक उसे अपने इन शब्दों के स्पष्टीकरण के लिए कह सकता था, लेकिन वह चुप ही रहा।

नाश्ते के वाद अजीत फिर स्कैचिंग के लिए चला गया। उन दोनों के आराम के लिए अलग कमरे की व्यवस्था कर दी गई थी। अशोक उस कमरे

में आराम के लिए चला आया और बिस्तर पर लेटते ही उसे झपकी आ गई। वह करीब घण्टा-भर सोया। जागने पर उसने देखा कि उषा निकट ही कुरसी में बैठे हुए किताब पढ़ने में तल्लीन है। वह कुछ क्षण आँखें झपकता रहा जैसे यह भ्रम हुआ हो कि वह सपना देख रहा है। उसके भ्रम को यथार्थ में बदलते देर नहीं लगी जब उषा ने उसकी ओर देखा और वह खीझ के स्वर में बुदबुदाई, "ओफ! यह आदमी तो घोड़े की तरह सोता है!"

"उषा तुम!" अशोक ने आँखें खोलकर उसकी ओर देखा और थोड़ा-सा उचक कर उसने पीठ को पलंग की बाईं के साथ सटा लिया।

यह सब इतना आकस्मिक था कि उषा यह पूछने के लिए विवश थी, "तुम सो रहे थे या जाग रहे थे?"

"मैं सो भी रहा था और सपना भी देख रहा था!"

"दिन का सपना अच्छा नहीं होता।"

"यह ठीक है। मैं जिसका सपना देख रहा था वह मेरे प्रति कभी सदय नहीं हुई!"

"क्या चीज?"

"तुम!"

यह पहला मौका था जब अशोक ने अपने अन्तर्मन के उस रहस्य को इतने खुले शब्दों में खोल दिया जो और दूसरी विसंगतियों के बोझ तले तिरस्कृत-सा पड़ा था...जो कभी एक तरह स्वाभिमान की दीवार-सी खड़ी कर देता था और कभी अपने तिरस्कृत हो जाने के भाव से अपनी ही पीड़ा के मकड़ीजाल में उलझने भी लगता था।...भीतरी उत्तेजना से उसे अपने कानों में साँय-साँय सी सुनाई देने लगी।

"लगता है तुम नींद में बोल रहे हो!" उषा का स्वर कितना धीमा था!

"शायद ऐसा ही हो!" अशोक ने अपना चेहरा नीचे ही झुकाए रखा। वह कहता गया, "उषा! सचेतन अवस्था में यह बात कह सकने का मेरे अन्दर कभी इतना साहस न आ सकता था। शायद इसी कारण ही मेरे अपराध को तुमने क्षमा कर दिया और कोई भी चुभती-सी व्यंग्योक्ति तुम्हारे होंठों पर नहीं

आ सकी !"

उषा हँसने लगी। उसके स्वर में किसी तरह का तीखापन नहीं था। उसने उत्तर दिया, "मेरा व्यंग्य···तुम नहीं जानते अशोक···आत्मरक्षा का कितना बड़ा शस्त्र रहा है !"

अशोक ने इन शब्दों को सुनते ही अपने कुछ क्षण पहले के संकोच को फेंक कर उसकी ओर देखा। उसने पूछ लिया, "आत्म-रक्षा क्यों ? किस से आत्म-रक्षा ?"

"मैं अपने व्यक्तित्व के उस अंश को बचाए रखना चाहती हूँ जो मेरे परम्परानुगत स्त्रीत्व के अंश से होड़ लेता रहा है। एक दिन तुमने ठीक ही कहा था कि मैं अपने स्त्रीत्व के प्रति विद्रोह किए हूँ···मैं मन पर मस्तिष्क का और भावुकता पर विचारशीलता का अंकुश बनाए रखना चाहती हूँ।"

"क्या तुम सुखी हो ?"

"तुमने मुझे दुखी कब देखा है ?"

"उषी, जब-जब भी मैंने तुम्हें व्यंग्य या उपहास करते हुए सुना है मुझे यही लगा है कि तुम्हारे अन्दर बहुत गहरे जाकर कोई दुख है···कोई अभाव···कोई सूनापन !"

"एक्सक्यूज़ मी ! मैं अपने-आपको तुमसे बेहतर समझ सकती हूँ।" उषा ने क्रोधवश ही यह कहा और वह उसी क्षण कमरे से बाहर चली गई।

एक प्रश्न अकस्मात् ही अशोक को याद आया था···"उषा, क्या तुम अपने पिता के प्रति भावुक नहीं हो ? लेकिन यह पूछने से पहले ही उषा कमरे से चली गई और यह प्रश्न उसके ज़हन में ही टँगा रहा। वह कुछ क्षण निश्चेष्ट-सा लेटा रहा। फिर एकाएक ही यह विचार शूल की तरह गड़ता हुआ उसे भीतर-ही-भीतर पीड़ा देने लगा कि उसने व्यर्थ ही उषा से यह कह दिया कि वह उसके प्रति सदय क्यों नहीं ? दूसरे शब्दों में वह उससे प्रेम की भीख ही माँग रहा था !···मेरे ईश्वर ! वह आक्रोश अथवा पश्चात्ताप की जलन से उफनता हुआ सोचने लगा···यह मैंने क्या कह दिया ? इससे अधिक मूर्खता की बात और कोई नहीं हो सकती थी ! उखड़ती हुई नींद के प्रभाव में कैसी उट-

पटाँग-सी बात मेरे होंठों से निकल गई !…वह इसी उधेड़बुन में उतनी देर पड़ा रहा जितनी देर भीमू ने आकर यह सूचना नहीं दी कि ठाकुर भोजन के लिए उसे बुला रहे हैं।

शाम की ढलती हुई धूप में अशोक और अजीत गाँव की परिधि से काफी दूर निकल गए थे। अशोक के कन्धे पर दोनाली बन्दूक थी जो ठाकुर ने उसे शिकार के लिए दी थी।

वह पूरी तन्मयता के साथ उस उन्मुक्त-से वातावरण में डूब जाना चाह रहा था…दूर तक फैले हुए धूप में नहा रहे खेत, झाड़ियों में चहचहा रहे पक्षी और गहरा नीला आसमान जिसमें बहुत ऊपर उड़ती हुई चीलें जैसे स्थिर-सी हो गई थीं। अजीत ने उससे कहा, "अशोक तुम दोनाली तो उठा लाए, लेकिन अभी तक तुमने एक भी गोली नहीं चलाई !"

"शायद चला भी न सकूँ ! ऐसे खूबसूरत शान्त वातावरण में धमाका पैदा नहीं करना चाहता।"

"फिर शिकार किस चीज़ का करोगे ?"

"किसी चीज का नहीं। सिर्फ संस्कारवश ही मैं यह बन्दूक ले आया। निरीह पशु-पक्षियों को गोली से भून डालने में कोई बहादुरी नहीं !" फिर उसने बन्दूक उसे देते हुए कहा, "यह लो। थोड़ी देर के लिए तुम भी इसे संभाल लो !"

"मैं पहले ही कह चुका हूँ मुझसे उठाई नहीं जाएगी। मैं कमज़ोर और मरियल-सा आदमी हूँ !"

"तुम्हें ज़रा भी खेद नहीं होना चाहिए," अशोक ने चुटकी ली, "तुम शरीर की अपेक्षा मस्तिष्क को ही पीसते रहे !"

अजीत ने उत्तर दिया, "शरीर बस काम-चलाऊ रहना चाहिए। मेरी कला का सम्बन्ध तो मस्तिष्क से ही है।"

फिर कई मिनट तक वे चुपचाप चलते रहे। खेत छंटने लगे थे और ऐसा प्रदेश दिखाई देने लगा था जो जँगल था और नज़रों के विस्तार तक घनी झाड़ियाँ ही फैली हुई थीं। हवा की आवाज़ शोकपूर्ण हू-हा जैसी थी।

"इस वीराने में कैसा लग रहा है ?" अशोक ने एकाएक सचेत होकर अपने साथी से पूछ लिया ।

"कुछ बेचैनी-सी महसूस हो रही है । जब बहुत ज्यादा खामोशी हो तब भी मेरा मूड अस्थिर-सा हो जाता है ।"

"लेकिन मुझे तो बहुत अच्छा लग रहा है । मैं महानगरी में ही जन्मा और बड़ा हुआ लेकिन यह सच है कि मैं वहाँ के संस्कारों को ओढ़ लेने में असमर्थ रहा हूँ !"

अजीत ने हँसते हुए कहा, "मैं तुम्हें एक बहुत ही खुशकिस्मत आदमी समझता हूँ !"

"कैसे ?"

"तुम्हें एक साथ दो बहुत ही सुन्दर युवतियों से प्रेम मिल रहा है । उषा भले ही नीना जैसी आकर्षक न हो, लेकिन वह असाधारण युवती है···सोलह आने इन्टेलेक्च्युअल !"

अजीत अपने मित्र के सभी गुप्त भेदों से परिचित था इसीलिए वह इतने खुले शब्दों में ऐसी बात कह सका ।

सुनकर अशोक कुछ अव्यवस्थित-सा हो गया । कहने लगा, "जो मुझे चाहती है उसे मैं पसन्द नहीं करता और जिसे मैं पसन्द करता हूँ वह अपने स्त्रीत्व के प्रति विद्रोह किए हुए है !" तत्क्षण उसे वे बातें याद आ गईं जो दोपहर के समय उषा के साथ हुई थीं और जिन्होंने उसे पश्चात्ताप की वेदना में अकुलाते रहने के लिए विवश-सा कर दिया था ।

"क्या उषा तुम्हें प्यार नहीं करती ?"

"मेरा खयाल है वह अपने पिता के सिवा और किसी को प्यार करना नहीं चाहती ।"

"तब वह एक मनोवैज्ञानिक केस ही कही जा सकती है । क्यों ?"

"शायद !"

वे लौट पड़े । उस समय सूर्यास्त से पहले की रोशनी काफी फीकी पड़ गई थी । झाड़ियों वाले जंगल से गुजरते वक्त हू-हा करती हवा का शोर उन्हें और

भी खौफनाक-सा सुनाई दिया। उस प्रदेश में रास्ते का उन्हें सही अन्दाज़ नहीं था इसलिए वे भटक भी गए। गाँव की परिधि में प्रविष्ट होने तक शाम का झुटपुटा सभी जगह फैल चुका था। भीमू और रामभरोसे उन्हें अपनी ओर आते हुए मिले। भीमू ने लालटेन उठा रखी थी और रामभरोसे के हाथ में लाठी थी।

"आपने बहुत देर कर दी छोटे सरकार," भीमू कहने लगा, "हम लोग आपको ही ढूँढ़ने निकले हैं। घर में बहुत फिक्र हो रही है।"

अशोक ने उत्तर दिया, "हम सैर करते-करते बहुत दूर निकल गए!"

रामभरोसे ने कहा, "उधर जँगल में बाघ आता है!" उसकी हौंकती-सी आवाज में उस खतरे की चेतावनी थी जो अब टल गया था।

हवेली में आने पर ठाकुर और उषा निस्संदेह काफी परेशान-से दिख रहे थे। ठाकुर ने गहरा-सा निःश्वास खींचकर कहा, "शुक्र है तुम लोग आ गए। कुछ देर पहले तक उषा मुझे डाँटती रही कि मैंने तुम्हे क्यों शिकार के लिए जाने दिया!"

अशोक ने उषा की ओर देखा। उषा की मुद्रा में उसके भीतर की रोष-भरी छटपटाहट दिखाई दे रही थी। उसे विचार आया कि जब उषा भावना-शून्य सी लड़की है तो यह सब दिखाने की क्या जरूरत है···?

ठाकुर ने पूछ लिया, "क्या बहुत शिकार खेला?"

"खाली हाथ ही लौट आया हूँ।"

"क्यों?"

उत्तर अजीत ने दिया, "ठाकुर साहब, जंगल में पहुँचते ही मेरे दोस्त के भीतर का गाँधीवाद और भी ज्यादा बेचैन हो गया।" यह कहकर वह निढाल-सा कुरसी में गिर पड़ा। "थकान के मारे जिस्म का पोर-पोर दुखने लगा है। लगता है जैसे बुखार होने लगा हो!"

अशोक ने उसकी कलाई पर हाथ रखा। "सचमुच!" वह कुछ सोचता-सा ठाकुर और उषा की ओर देखने लगा और एक अपराधी का-सा भाव उसकी मुद्रा में आने लगा।

"अशोक," उषा उबल पड़ी, "तुमने अपना और अपने दोस्त का कुछ तो खयाल किया होता। पता नहीं कहाँ-कहाँ भटकते रहे हो ?"

"हम सिर्फ नदी के कगार तक गए थे !"

"अरे !" ठाकुर के स्वर में आश्चर्य था, "नदी यहाँ से तीन-चार कोस से कम नहीं !"

अजीत कहने लगा, "मेरे पर्स में अनासीन की गोलियाँ हैं। बस मुझे गरम-गरम चाय मिल जाए !"

"भीमू अब चाय लाता ही होगा !" उषा ने यह कहा और वह रसोई की अरे चली गई।

उस वक्त रात शायद आधी से अधिक बीत चुकी थी जब अजीत बुखार की बेहोशी में चिल्लाया, "पानी !"

अशोक ने उसके माथे पर हाथ रखा। माथा बुरी तरह तप रहा था। उसने माचिस लेकर लालटेन जलाई और तिपाई पर पड़ा हुआ पानी का गिलास उठाकर अजीत के होंठों से लगाया। उसने कहा, "सिर्फ दो घूंट ! ज्यादा मत पी लेना !"

गिलास को यथास्थान रख कर वह कुछ क्षण सोचता रहा कि अब उसे क्या करना चाहिए ! पहले तो उसे खयाल आया था कि ठाकुर और उषा को जगाकर उन्हें सूचित कर दे कि अजीत बुखार में बुरी तरह तप रहा है, लेकिन आधी रात के वक्त उन भले लोगों की नींद खराब करना उसे उचित नहीं लगा। अगर जरूरत हुई तो वह रात-भर जागकर अजीत की तीमारदारी करते रहने का संकल्प किए था। "अजीत ! ओ अजीत ! चाय पियोगे ?" उसने बहुत ही धीमे स्वर में पूछा।

अजीत के मुँह से क्षीण-सी आवाज़ आई, "पानी !"

अशोक ने फिर उसे कुछ घूंट पानी दिया। यह सोचकर कि रसोई में जाकर भीमू से और पानी ले आना चाहिए उसने आहिस्ता से कमरे का दरवाज़ा खोला और दबे-पाँव सेहन में चलता हुआ रसोई की ओर जाने लगा। एकाएक दूसरी मंजिल पर दृष्टि जाते ही उसने देखा कि उशा के कमरे में रोशनी है।

क्या वह अब तक पढ़ रही है या लालटेन जला कर सो रही है···ऐसे ही उसे विचार आया ।

कम्बल में लिपटे होने के बावजूद वह जाड़े की उस रात में सरदी को अपनी हड्डियों में घुसते हुए महसूस कर रहा था। भीमू को जगाकर उसने पानी माँगा ।

"पानी तो मैं आपके कमरे में रख आया था।" भीमू उठते हुए बड़-बड़ाया ।

"मेरे दोस्त को तेज़ बुखार है । वह सारा पानी पी गया ।"

"तब उसे गरम पानी चाहिए ।···मैं कुछ मिनटों में पानी लेकर आया !"

अशोक जब कमरे में लौट आया अजीत बेहोशी में बड़बड़ाने लगा था, "ये रेखाएँ···इन्हें समझो !···एकदम माडर्न !···अमृता शेरगिल···उसकी बात मत करो···वह एक रोमाँटिक-सी औरत है···पाब्लो पिकासो ।···मैं उसे आर्ट का जीनियस मानता हूँ···तुम्हें उसके क्यूबिज्म से चिढ़ क्यों है···गलत बात···तुम ने आइनस्टाईन की थ्यूरी आफ़ रेलेटिटी नहीं पढ़ी···।"

"अजीत यह क्या कह रहे हो ?" अशोक को याद आया अजीत बेहोशी में उन्हीं शब्दों को दोहरा रहा था जो कभी उन दोनों के मध्य हुई थीं ।

तभी भीमू के साथ उषा अन्दर आई । चिंता से भारी हो रहे स्वर में उस-ने पूछा, "क्या आप के दोस्त को बहुत तेज बुखार है ?"

अशोक ने स्वीकृति में सिर हिलाया । उधर अजीत फिर बड़बड़ाने लगा था, "सर्वेडार डाली···इमेज़िमा मूल चीज़ यही है जैसे कॉसमिक रेज···मौली क्यूल !···नहीं समझे !···।"

उषा ने कहा, "लगता है बुखार जैसे सिर को चढ़ गया हो, लेकिन गाँव में तो कोई भी डॉक्टर नहीं ।"

"ऐसा ही होता है उषा !" अशोक को कुछ महत्त्वपूर्ण कहने के लिए सूझ गया, "जो लोग हमेशा मस्तिष्क को ही पीसते रहते हैं उन्हें बुखार की हालत में असंतुलित हो जाने में देर नहीं लगती ।"

"यह मुझे बताने की क्या जरूरत है?" उषा ने पूछा ।

क्योंकि तुम भी एक इन्टेलेक्च्युअल औरत हो ?"

उषा अत्यंत कठिन-सी दृष्टि से उसकी ओर कुछ क्षण देखती रही फिर उसने कहा, "तुम कुछ नहीं समझते।···भीमू अब हमें क्या करना चाहिए ?"

"'बात नहीं करनी चाहिए। अजीत बाबू को परेशानी होती होगी।"

उषा और अशोक ने फिर आपस में कोई बात नहीं की। अशोक मन-ही-मन चाह रहा था कि अजीत फिर बड़बड़ाना शुरू कर दे। उस बड़बड़ाहट में उसके मुँह से ऐसी बात भी निकल सकती है जो उसके और उषा के सम्बन्धों को लेकर हो। कितनी अजीब बात है, उसे विचार आया, कि हमारा यह मस्तिष्क जिसे हम इतना ऊँचा मानते हैं जिस्म के निढाल होते ही स्वयं भी निढाल हो जाता है···।

कुछ मिनट बीत गए। ऐसा लग रहा था जैसे अजीत को गहरी नींद आ गई हो।

□ नौ

अजीत को ठीक होने में दो दिन लग गए। अशोक अपने दोस्त के साथ रामपुर लौट जाने के लिए तैयार हो गया। ठाकुर ने भेंट होने पर पूछ लिया, "दिल्ली कब जा रहे हो ? मैं सोच सकता हूँ तुम्हारे घरवालों को काफी परेशानी होगी!"

यह सुनते ही अशोक की मुद्रा कुछ बोझिल-सी हो गई। उसने उत्तर दिया, "हाँ, मेरी माँ तो सचमुच ही।"

"मेरा खयाल है राव भी परेशान होगा। मैं जानता हूँ उसे बहुत जल्दी गुस्सा आ जाता है, लेकिन उसे यह स्थिति कैसे गवारा हो सकती है कि उसका इकलौता बेटा उससे नाराज रहे!"

"अंकल, वह कारोबारी लोगों के चंगुल में बुरी तरह फँस गए हैं!"

"इस चंगुल के रहते हुए भी अशोक," ठाकुर बोला, "खून के रिश्ते तो नहीं बदल जाया करते।"

"वे कहते हैं मैं उनके किसी भी काम नहीं आ सका," अशोक का स्वर मनोवेग से खिंचा हुआ था, "इसका मतलब यह हुआ कि मुझे अपने ढंग से जीने और सोचने का कोई अधिकार नहीं··· कि मुझे अपने व्यक्तित्व को, अपने आदर्शों को उनकी एक बहुत ही मामूली···मामूली नहीं भद्दी-सी इच्छा पर कुर्बान कर देना चाहिए।"

"अशोक," ठाकुर का स्वर संवेदनापूर्ण था, क्योंकि वह अशोक के शब्दों से प्रभावित हुए बिना न रह सका।" मैं तुम्हारे अन्तर्द्वन्द्व को समझ रहा हूँ। अगर मैं यह कहूँ कि राव साहब आत्म-प्रवंचना का शिकार हैं तो यह अनुचित नहीं होगा।" कुछ क्षण रुके रहकर उसने अपनी बात का स्पष्टीकरण किया, "व्यक्ति के अपने संस्कार कुछ और हैं और परिस्थितियों का तकाज़ा कुछ और है। हम युग के प्रति ईमानदार होना चाहते हैं और इसके साथ अपने प्रति भी और जब हम इन दो विपरीत से आदर्शों के बीच पिसने लगते हैं तो हम आत्म-प्रवंचना के भरोसे ही अपनी जिन्दगी का निर्वाह कर सकते हैं।"

कुछ देर तक अशोक ठाकुर के शब्दों के वास्तविक अर्थों को बूझ लेने की कोशिश में लगा रहा, फिर उसने कहा, "आत्मप्रवंचना! आपने बिल्कुल ठीक कहा अंकल।"

ठाकुर ने विषय बदलते हुए पूछा, "फार्मिंग के लिए तुमने क्या सोचा है?"

"इस फसल के बाद ही अपने ढंग का व्यवस्था कर सकूँगा। इस वक्त जो ज़मीन बंजर पड़ी है उसी को ठीक करने में लगा हुआ हूँ।"

"ऐसी ज़मीन कितनी है?"

"बीस-पच्चास बीघे तो होगी।"

"और ज़मीन ?"

"और ज़मीन मुझे अपने ही किसानों से मोल लेनी होगी। मैं बेदखली के पक्ष में नहीं हूँ।"

ठाकुर बिल्कुल भौंचक्क-सा होकर उसकी ओर देखने लगा, फिर हँसते हुए बोला, "आदर्शवादिता में तुम मुझसे भी बाजी ले गए। ऐसा लगता है गाँधी बाबा का सारा आदर्शवाद हम दोनों को ही वरासत में मिल गया है···।"

"हाँ-हाँ !" अशोक ने विस्मित-सी मुद्रा में ठाकुर की ओर देखा।

"लेकिन हमारा वर्ग बौखला नहीं उठेगा ? ठाकुर ने इस क्षण अपने चेहरे को गम्भीर कर लिया, "मैंने अपनी बहुत-सी ज़मीनें बिना मुआवज़े के ही किसानों को दे दीं और मेरे वर्ग के लोग मुझे गालियाँ देने लगे हैं। जो विधान बनेगा उसमें मुआवज़े की शर्त रखी गई है। लेकिन मैंने सोचा कि न्याय के आगे नैतिकता भी है···।"

"लेकिन काका," अशोक बोला, "कितना अच्छा रहता अगर आपने किसानों को ज़मीनें दे देने का काम कुछ वर्ष पहले ही कर लिया होता।"

"स्वार्थ से मुक्ति पा लेना सहज नहीं होता अशोक ! इस निश्चय तक पहुँचने के लिए मुझे भी मानसिक संघर्ष के बीच रहना पड़ा है और फिर एक क्षण आता है जब अपने-आप ही रास्ता खुल जाता है। यह क्षण पहले न आ सकता था···देश में ऐसा वातावरण ही नहीं था।"

···एक क्षण आता है जब अपने-आप ही रास्ता खुल जाता है ! अशोक मन-ही-मन इन शब्दों पर विमर्श करने लगा और उसे लगा जैसे ये शब्द उसकी निजी समस्या को लेकर ही कह गए हों। उसे अपने भीतर के अँधेरे में आशा की एक स्वर्ण-रेख-सी फूटती हुई दिखाई दी···यानी प्रतीक्षा···कुछ देर और प्रतीक्षा ! उसकी समस्याएँ अपने-आप ही सुलझ जाएँगी। "आप कब दिल्ली लौट रहे हैं ?" उसने जिज्ञासावश पूछ लिया।

"मेरा खयाल है तीन-चार दिन बाद। प्रदेश कांग्रेस की मीटिंग भी होने वाली है। मुझे निमन्त्रण मिल चुका है।"

उसी क्षण भीमू नाश्ते की ट्रे उठाए आया। अशोक ने उससे कहा, "भीमू,

मेरे दोस्त से कह दो कि नाश्ते के लिए चला आए।"

"वे बस आ रहे हैं। उन्होंने उषा की तस्वीर बनाई है पैंसिल से।"

ठाकुर को एकाएक तैश आ गया, "उषा की तस्वीर बनाई है···लेकिन किस की आज्ञा से?"

"मेरा खयाल है ऐसा अनुरोध उषा ने ही किया है!" अशोक बोला।

"लेकिन क्यों?"

"एक अच्छे आर्टिस्ट के हाथ से हर कोई अपनी तस्वीर बनवाना पसन्द करेगा। काका, इसमें तो कोई बुराई नहीं है।"

"लेकिन यह मुझे स्वीकार्य नहीं होगा," ठाकुर ने कहा, "कि वह उस तस्वीर को अपने पास रख ले!"

अशोक ने ठाकुर के विरोध के पीछे जो वर्ग-मर्यादा का भाव था उसे समझ लेने में देर नहीं की। उसे स्वयं भी···वह सोचने लगा···यह स्थिति कभी स्वीकार्य नहीं होगी कि अजीत उस तस्वीर को किसी प्रदर्शनी में रख दे। उसने उत्तर दिया, "आप विश्वास कीजिए, वह तस्वीर उषा के पास ही रहेगी!"

फिर उन्होंने उषा को कमरे में आते हुए देखा और इस विषय को लेकर फिर उन्होंने कोई बात नहीं की।

कल रात हल्की-सी बारिश हुई थी और कच्चे रास्ते की मिट्टी बैठी हुई थी। इसलिए दौड़ते हुए ट्रैक्टर के भारी चक्कों से धूल नहीं उड़ रही थी। आसमान के पश्चिमी छोर पर और बादल दिखाई देने लगे थे जिन्हें पश्चिमी हवा ढकेलती हुई अपने साथ ला रही थी। धूप और छाया का बड़ा मनोरंजक-सा खेल हो रहा था। अजीत ने अकस्मात् ही अशोक से पूछ लिया, "तुम कहते थे कि बुखार की बेहोशी में मैं बहुत ज्यादा बड़बड़ाने लगा था?"

"हाँ, तुम पाब्ला पिकासो और आइन्स्टाईन के बारे में कुछ कह रहे थे!"

"मैंने कोई ऐसी बेहूदा बात तो नहीं कह दी थी?"

"अगर कह दी हो तब क्या फर्क पड़ता है!"

"तुम कहते थे न कि वहाँ उषा आई थी?"

"अगर आई भी हो तब क्या फर्क पड़ता है!" स्पष्ट ही अशोक खिन्न-मन

से अपने उत्तरों को फेंक रहा था।

अजीत उसे घूर कर पूछने लगा, "लगता है जैसे तुम्हारा मूड बिगड़ा हुआ हो।"

"नहीं तो।"

"तुम्हारे बिगड़े हुए मूड का यही कारण हो सकता है कि उषा आज तक तुम्हारे प्रति सदय नहीं हो सकी।"

अशोक ने उत्तर नहीं दिया। अजीत ने और कहा, "लेकिन वह यह भी नहीं चाहती है कि तुम किसी और के हो जाओ।"

अजीत का संकेत नीना की ओर था। नीना का स्मरण होते ही अशोक अस्थिर-सा हो गया। बोला, "मैंने अकारण ही उस लड़की के प्रति उपेक्षा का व्यवहार बना रखा है।"

"अकारण ही?" अजीत ने प्रश्न-भरी नजर से उसकी ओर देख लिया। "यह बात मैं पहली बार तुम्हारे मुँह से सुन रहा हूँ।"

"मेरा मतलब है," अशोक कहने लगा, "कि इसमें उस बेचारी का क्या अपराध है अगर वह लखपति बाप की बेटी है और आज तक सुख और ऐश्वर्य की दुनिया में ही रही है? उसमें स्त्री-रूप का जो आकर्षण है वैसा कम ही युवतियों में दिखाई देता है···।"

"लेकिन तुम उसे उषा की तुलना में नहीं रख सकते। अगर नीना जैसी युवतियाँ सौ में से पाँच होंगी तो उषा जैसी हजारों में एक।···शी इज एन इन्टेलेकच्युअल वोमन! उसमें प्रबुद्धता है!"

"उससे प्रेम तो नहीं करने लगे?" सहज ही ये शब्द अशोक के होंठों से निकल गए।

अजीत बौखला गया, "अरे ओ गधे! क्या बक रहे हो?"

"तुम भी तो इन्टेलेकच्युअल हो···मॉडर्न आर्टिस्ट! और उषा विज्ञान में रुचि लेने वाली एम०एस-सी० आनर्ज की छात्रा! तुम दोनों में काफी समानता है।"

अजीत ने उत्तर दिया, "विज्ञान का यह सिद्धान्त भी तो है कि दो समाना-

न्तर वस्तुओं में आकर्षण नहीं होता।"

कुछ फासले पर रामपुर गाँव दिखाई देने लगा था। खेतों की हरियाली में वह मटमैले धब्बे-सा लग रहा था। अशोक ने उत्तर नहीं दिया। नहीं तो उसने कहा होता कि विज्ञान के कई सिद्धान्त मानवीय सम्बन्धों पर लागू नहीं होते और यह बात सर्वविदित है कि समानान्तर रुचियों और विचारों वाले लोगों में ही मैत्री-सम्बन्ध बनने लगता है।

अशोक के लिए उस दृश्य में किसी तरह की नवीनता नहीं थी···पर अब उसके अन्दर नवीनता की ऐसी लालसा भी नहीं। पिछले कुछ दिनों में उसने इस विषय पर सोचा भी है। जीवन की गति जितनी यहाँ रुकी हुई है उतनी ही दिल्ली जैसे बड़े शहर में भी···उथल-पुथल और कोलाहल के बावजूद! लोग बस अतीत की झूठन बेलते ही रहते हैं और समय आगे नहीं बढ़ता।

रामपुर गाँव भी लडोली जैसा लगता है···बेतरतीबी से फैले हुए गारे और झाड़फूंस के घर जिनकी टेढ़ी-मेढ़ी सँकरी गलियों के बीच गन्दी नालियाँ बहती हैं, बच्चे मिट्टी में लोटते हैं, किसान मेंडों पर आते-जाते हैं और स्त्रियाँ पानी के मटके लिए कुओं के आसपास खड़ी रहती हैं।···एकाएक अशोक को खयाल आया कि भारत माँ का असली घर यही है और असली रूप भी यही है। इस विचार से उद्वेलित-सा होकर उसने अजीत से कहा, "मेरा खयाल है इस वातावरण में बिताए हुए तीन-चार दिनों में तुम्हें अपनी कला को नया अर्थ देने के लिए कुछ-न-कुछ प्रेरणा अवश्य मिली होगी!"

"बिल्कुल नहीं," अजीत ने उत्तर दिया, "अशोक, मुझे इन्सानों की बड़ी-बड़ी बस्तियाँ पसन्द हैं जहाँ हजारों लाखों लोग समुद्र की लहरों की तरह आपस मे मिलते हैं, टकराते हैं, साथ-साथ जाकर दूर हट जाते हैं और फिर कभी नही मिलते। लहरों की यह बेचैनी···यह शोर मुझे अच्छा लगता है। इस शोर को सुनते वक्त मुझे ऐसा लगता है जैसे यह हमारे स्पन्दनों की आवाज हो···हमारे जीवित रहने का प्रमाण हो!"

अशोक ने उत्तर न देकर ट्रैक्टर को उस रास्ते की ओर डाल दिया जो उसकी हवेली की ओर जाता है।

हवेली में आने पर अशोक की दो दिनों की डाक में एक ऐसा पत्र भी था जो उसकी माँ ने लिखा था। उस पत्र में राव के बीमार हो जाने का समाचार था और उसे ताकीद की गई थी कि वह पत्र मिलते ही दिल्ली चला आए। अशोक के अवचेतन में, यह सच है, कई दिनों से ऐसे ही पत्र की सम्भावना खटकती रही थी। वह अन्यमनस्क-सा पत्र को हाथ में लेकर कमरे में इधर-उधर डोलने लगा। अजीत ने पूछ लिया, "क्या बात है अशोक ? तुमने मुँह को लटका लिया ?"

"मुझे दिल्ली जाना होगा। डैडी बीमार हैं।"

"तुमने एक दिन कहा था कि उन्हें डायब्टीज है ?"

"हाँ," अशोक ने उत्तर दिया, "जब-जब भी वे ज्यादा पी लेते हैं उनका रोग बढ़ जाता है।" फिर यह विचार आ जाने पर कि डैडी के उच्छृंखल ढंग से पियक्कड़ बन जाने का कारण वह स्वयं भी हो सकता है। वह इस ढंग से बोलने लगा जैसे अपने डैडी को समझा-बुझा रहा हो, "लेकिन यह किसी तरह भी उचित नहीं। हर आदमी को अपने ढंग से जीने का अधिकार है।"

"यह तुम क्या कह रहे हो ?" अजीत उसकी मनःस्थिति को टोह लेने में असमर्थ उसे टोकते हुए पूछने लगा।

"हमें इसी वक्त दिल्ली के लिए चल पड़ना होगा।"

"हाँ-हाँ, इसी वक्त ! इस दोज़ख से जितनी जल्दी निकला जाए उतना ही अच्छा !"

"लेकिन मैं फिर लौट आऊँगा। दोजख तो दिल्ली है जहाँ ट्रैफिक की चीखों और भीड़ की तलखी के सिवा और कुछ नहीं !"

अजीत उसके निकट चला गया और उसने अपने दोनों हाथ उसके कन्धों पर रख दिए। बोला, "मैं तुम्हें इस उम्र में पलायनवादी बनने नहीं दूंगा। तुम्हारे जैसे आदर्श एक बूढ़े आदमी को ही शोभा देते हैं। तुम जवान हो, जिन्दगी की माँगों का तिरस्कार कैसे कर सकते हो ! तुमने ह्विस्की का स्वाद चखा है ?"

अशोक ने उत्तर नहीं दिया।

"तुमने किसी युवती के हाथ को छूकर देखा है ? उसकी गरम साँसों को अपने चेहरे पर महसूस किया है ?"

अशोक ने तब भी कोई उत्तर न दिया। वह सिर्फ विस्फारित-सी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा था।

अजीत कहता गया, "तुमने जिन्दगी का कुछ भी अनुभव नहीं लिया और तुम्हें चिन्तन करने को पड़ गई। इसलिए मैं कहूँगा कि तुम्हारा चिन्तन आत्म-घुटन की प्रतिक्रिया ही हो सकती है या फिर दूसरों के अनुभव की बासी झूठ। क्षमा करना अशोक, मैं इतने दिनों से घुटा हुआ रहा हूँ और मुझे तुम्हारा इस उम्र में इतना गम्भीर-मुख हो जाना किसी तरह भी पसन्द नहीं।

अशोक को लगा जैसे धमाका-सा हुआ हो जिससे उसके व्यक्तित्व का अणु-अणु काँपने लगा हो। कुछ क्षण पहले आत्म-रक्षा में कुछ कह देने की उसे अन्त:प्रेरणा-सी हुई थी, लेकिन वह जानता था कि अजीत ने उसे भी पलायनवाद या बासी चिन्तन कह कर ठेल दिया होता। असमर्थता के आक्रोश से झींकते हुए अशोक ने कहा, "नहीं ! नहीं !! नहीं !!!"

घर पहुँचने पर सर्वप्रथम अशोक की माँ के साथ भेंट हुई। पारवती ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "कुछ कमजोर-से हो गए हो। हम लोग परसों से तेरी राह देख रहे हैं !"

"मैं ठाकुर काका के गाँव गया हुआ था। डैंडी कैसे हैं ?"

"आज ही चारपाई से उठे हैं। तेरे चले जाने का बहुत गम कर रहे थे। अगर वे तुम्हें कुछ सुस्त-सख्त कह दें तो जवाब मत देना। बस चुपचाप सुन लेना। मेरे साथ आओ !"

पारवती उसे राव के कमरे की ओर ले जाने लगी। उसके कमजोर सोच-मग्न चेहरे को देखकर वह फिर उद्विग्न-सी हो गई। "गाँव में तेरी देख-भाल करने वाला कौन है ? अकेले तेरा जी कैसे लगता होगा ?"

अशोक ने कोई भी उत्तर नहीं दिया।

राव अपने कमरे में आराम कुरसी में बैठे हुए सुस्ता रहा था। अशोक ने उसे नमस्ते कही, "नमस्ते डैंडी !"

कुछ क्षण टटोलती-सी नजरों से उसे घूर लेने के बाद राव ने कहा, "तू आ गया ?"

"मुझे ममी का पत्र आज ही मिला था।" अशोक को लगा कि उसे अपनी देरी के कारण को स्पष्ट कर देना ही चाहिए। फिर उसने पूछ लिया, "अब आप कैसे महसूस कर रहे हैं ?"

"मैं बस चन्द महीनों का मेहमान हूँ !···पारवती, तुम जाओ !"

पारवती कमरे से निकल गई।

अशोक अपने भीतर अत्यन्त उखड़ा हुआ-सा महसूस करने लगा। किसी तरह साहस बटोर कर उसने कह दिया, "आपको डायब्टीज हैं। डाक्टर ने आपको पीने के लिए···।"

"मुझे तुम्हारा उपदेश नहीं चाहिए," राव ने तल्खी के स्वर में कहा "डायब्टीज़ हो या कैंसर ! तुम तो गाँव में जा बसना चाहते हो !"

पारवती की नसीहत का ध्यान आ जाने पर अशोक ने सिर्फ इतना ही कहा, "मैं आपसे बहस नहीं करना चाहता···कभी नहीं ! सचमुच !"

राव कुछ क्षण इस भाव से उसकी ओर देखने लगा जैसे उसके व्यक्तित्व का निरीक्षण-सा करने लगा हो, "अगर फार्मिंग करने का ही इरादा कर लिया है तो इसके लिए खुद धूप में झुलसने की क्या ज़रूरत है ? ट्रैक्टर चलाने के लिए नौकर रखा जा सकता है और जितने भी काम हैं उनके लिए भी आदमी रखे जा सकते हैं···।"

अशोक ने मुँह से कुछ न कहकर स्वीकृति में अपना सिर हिलाया।

"मेरा मतलब है," राव कहता गया, "यहाँ रहते हुए भी फार्मिंग की देख-भाल की जा सकती है। मैंने इसके विरोध में पहले जो कुछ भी कहा, उसे वापस लेता हूँ। तुम्हारा व्यक्तित्व कितना शानदार है ! तुम सचमुच बहुत ऊपर उठोगे। अब मुँह-हाथ धो लो और कपड़े भी बदल लो। आज हम दोनों का खाना बाहर है !"

अपने पिता के जल्दी-जल्दी बदल रहे भाव-परिवर्तनों पर अशोक विस्मित हुए बिना न रह सका। वह उनके कमरे से निकल कर कारीडार में चला आया।

बँगले के कोने से उसके कानों में प्रीती श्रौर दीपी की श्रावाज़ों की भनक-सी पड़ी। वह उस श्रोर मुड़ गया।

उस रात नीना के पिता बजाज के घर पर भोज था। शाम के सवा सात बजे श्रशोक ड्राइव कर रहा था श्रौर राव उसकी बगल वाली सीट पर बैठा था। ईस्ट पटेलनगर को जाते हुए जब वह कार पूसा रोड पर श्राई तो राव ने पूछ लिया, "क्या ठाकुर को बहुत चोट श्रा गई थी ?"

"कमर के नीचे हड्डी के पास माँस फट गया था !"

"यह सब हुश्रा कैसे ?"

"वह हवेली की दूसरी मंजिल की सीढ़ियों से फिसल पड़े थे।"

"पता नहीं श्रब उन्होंने उस हवेली का क्या करना है ? गाँव से श्रब हमारा सम्बन्ध एक तरह से टूट ही चुका !"

श्रशोक ने किसी तरह की टिप्पणी नहीं की।

पिता-पुत्र दोनों ने ही डिनर-सूट पहन रखे थे। फ़र्क सिर्फ़ इतना था कि राव ने सफेद-से कोट के साथ काले रंग की बो लगा रखी थी जब कि श्रशोक काले रंग के कोट के साथ सफेद टाई बाँधे था। श्रशोक को श्रकस्मात् ही यह विचार श्राया कि कल इस समय जब वह ठाकुर की हवेली के लालटैन की मद्धिम रोशनी वाले कमरे में उषा श्रौर श्रजीत के समक्ष भौतिकवाद की कटु श्रालोचना-सी कर रहा था तब उसे सपने में भी खयाल न श्रा सकता था कि एक दिन बाद ही वह श्रपनी उपेक्षित-सी दुनिया में फिर लौट चुका होगा श्रौर नियति का कोई झिलमिलाता-सा संकेत उसका मार्ग-प्रदर्शन करता हुश्रा उसे नीना के निकट भी ला रहा होगा···नीना जो उसी दुनिया का ही भाग थी। वह उपेक्षित-सी दुनिया इस समय श्रपने सन्ध्याकालीन श्राकर्षणों के साथ जगमग-सी कर रही थी। नीली रोशनी वाली नियून-ट्यूबें जलने लगी थीं जिन के साए में तेज़-तेज़ दौड़ रही कारों श्रौर बसों का ताँता-सा लगा था। सड़क के दोनों श्रोर नई तर्ज के खुशनुमा बँगले व्यापारी-वर्ग की नई समृद्धि के प्रतीक थे श्रौर उनकी कतारें दूर-दूर तक लम्बी होती जा रही थीं।

जयचन्द बजाज ने उस रात्रिभोज़ पर श्रौर भी कई लोगों को निमंत्रित कर

रखा था । सेठ मुकुटबिहारी को छोड़कर और सभी अतिथि राव और अशोक के पूर्व-परिचित ही थे । अपने नए अतिथि का परिचय देते हुए जयचन्द ने कहा कि सेठजी कलकत्ता में दो-तीन मिलों के मालिक हैं, राजधानी में कुछ दिन ठहरेंगे और उनकी कन्सर्न के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने के इच्छुक हैं।...यह कहते वक्त जयचन्द ने कभी अपने होंठों को सिकोड़ा, कभी फैला लिया, कभी खीसें निपोर कर हँसना चाहा और कभी अपने चेहरे को गंभीर कर लिया और अन्त में वह सेठ मुकुटबिहारी के आगे विशिष्ट मुद्रा में हाथ फैलाकर इतना झुक गया जैसे सजदा कर रहा हो ।

उस वक्त वह अत्यंत स्मार्ट लग रहा था । उसने भी डिनर-सूट पहन रखा था । उसके चमचमाते पेटंट चमड़े के काले रंग के शूज़ उस अवसर की वेष-भूषा के अनुकूल ही थे । उसका चेहरा तेज़ रोशनी से लश-लश कर रहे ड्राइंग-रूम में खूब चमक रहा था और अशोक से मिलते ही वह कहने लगा, "माई डार्लिंग सन-इन-ला ! कैसे मिज़ाज हैं ? नीना बेचारी का दिल मत तोड़ो ! उस पर तरस खाओ । शर्त हार देने की उसे बहुत खुशी होगी ।"

अशोक झेंपने लगा था । फिर भी उसने पूछ लिया, "कैसी शर्त ?"

"नीना का खयाल था कि तुम अभी अपने गाँव में हो, लेकिन मेरा खयाल था कि तुम आ चुके हो । तब मैंने कहा...कम ऑन बैट ! अब मैं शर्त जीत गया हूँ और आज तक जिन्दगी में मैंने कभी शर्त नहीं हारी ।" यह कह कर वह तेज़ी से राव की ओर मुड़ा और उसके हाथों को दबाकर पूछने लगा, "हाऊ डू यू डू ? हाऊ डू यू डू ?"

डिनर की एकत्रित महफिल में मिसेज़ मनचन्दा, राना और मिसेज़ राना और ठुकराल भी थे । नीना तब तक ड्राइंग-रूम में दिखाई नहीं दी थी । मिसेज़ मनचन्दा अशोक के पास आकर बोली, "क्या गाँव में जी लग गया था ?" स्पष्ट ही उसे छेड़ने के इरादे से ही उसने यह कहा था ।

"वहाँ नींद बहुत आती थी !" अशोक ने वेपर की उड़ाई और हँसने लगा ।

वे दोनों किसी एकांत कोने में जाने के निमित्त अपने-आप ही चलने लगे । मिसेज़ मनचन्दा ने पूछ लिया, "उषा के गाँव गए थे ?"

"हाँ, गया था ।"

उषा ठीक तरह बोली थी या लड़ती-झगड़ती ही रही ?"

अशोक ने माथे पर सलवट डाल ली । उत्तर दिया, "मैं स्वयं ही उससे ज्यादा बात करने को तैयार नहीं था । अगर वह उपेक्षा दिखा सकती है तो मेरे में भी कम स्वाभिमान नहीं !"

मिसेज़ मनचन्दा कुछ क्षण विस्मित-सी उसे देखती रही । "लेकिन," वह बोली, "तुम उसकी उपेक्षा से झींकते रहोगे और वह तुम्हारे स्वाभिमान से चिढ़ती रहेगी और इस तरह तो तुम शायद ही एक-दूसरे के निकट आ सको ।"

"लेकिन आँटी," अशोक कुछ परेशान-सा हो गया, "हमारे विचारों में काफी अन्तर आ गया है ।"

"मैं तो नहीं समझती कि विचारों का अन्तर स्त्री और पुरुष के आपसी सम्बन्ध में कोई रुकावट बन सकता है । हाँ, तुम्हारी यह बात मैं समझ सकती हूँ कि उषा उपेक्षा से खिंची हुई है और तुम स्वाभिमान से जकड़े हुए हो । तुम दोनों ही अहंवादी हो !"

कुछ खिसियाना-सा पड़कर अशोक हँसने लगा, "सरोज आँटी, आप कब से मनोवैज्ञानिक हो गईं ?"

"स्त्री पुरुष का मनोविज्ञान तो समझ सकती है भले ही वह अपनी ही स्त्री-जाति को उतनी अच्छी तरह न समझ सके ।" फिर कुछ क्षण हँसते रहने के बाद उसने कहा, "तुम्हारा मनोविज्ञान यह कहता है कि तुम अपने स्वाभिमान के बावजूद उषा से प्रेम करते हो···और इसी तरह मेरा ख़याल है उषा की उपेक्षा में भी कोई दम नहीं ।"

अशोक ने ऐसे स्वर में उत्तर दिया जैसे अपने भीतर छटपटा रहा हो, "आँटी, तुम्हारा यह मनोविज्ञान कुनीन की गोली की तरह कड़वा है जिसे अगर मैं लाइम-जूस के साथ भी निगलना चाहूँ तो भी मुँह का स्वाद खराब हो जाए ।"

मिसेज़ मनचन्दा ने तुरन्त उतर दिया, "तुम टोमाटो जूस के साथ निगल लेना जो नीना ने आज के डिनर के लिए बहुत ही परिश्रम से बनाया है ।"

उसके होंठों से ये शब्द निकले ही थे कि तभी नीना ड्राइंग-रूम की देहलीज़

पर दिखाई दी। अशोक ठिठकती-सी नज़र से उसकी ओर देखने लगा···नहीं! देखने के लिए विवश-सा हो गया। उसकी रूप-सज्जा देखते ही बनती थी। अपने में वह कलाकृति-सी सुन्दर लगती थी जिसे अपने ही परिश्रम और रुचि से सजाया-सँवारा था। छोटे-छोटे कदम लेती हुई वह अशोक के निकट आ गई और नजरों में शिकायत का-सा भाव और स्वर में मिठास घोलते हुए उसने पूछ लिया, "बहुत दिनों के बाद दिखाई दिए ?"

अशोक जैसे मुस्करा पड़ने के लिए विवश हो। उसने भी पूछ लिया, "तुम्हारा क्या हाल है ?"

"बस जीने का स्वाँग कर रही हूँ तुम्हारी दुआ से !"

मिसेज़ मनचन्दा यह सुनते ही खूब मचलकर हँसने लगी, "अरी नन्ही ! तुम तो फिल्मी हीरोइन की तरह बोलने लगी हो !"

नीना बोली, "इस अवसर पर मुझे एक शेर भी कहना चाहिए-—

वो आएँ हैं हमारे घर खुदा की कुदरत है।
कभी हम उनको कभी अपने घर को देखते हैं ।।"

"ओ नन्ही !" मिसेज़ मनचन्दा सचमुच ही उन्मेष में आकर कहने लगीं, "दिस इज रीयली वँडरफुल !"

अशोक ने किसी तरह का प्रतिवाद नहीं किया। उसका अन्तर इस परिवर्तन को समझ रहा था। उषा के साथ बिताए हुए क्षण कितने नीरस और थका देने वाले होते थे। अकस्मात् कुछ सोचकर उसने कह दिया, "नीना तुम्हारी ममी का क्या हाल है ? मुझे उनके पास ले चलो। मैं उनकी कुशल पूछना चाहूँगा !"

सुनते ही एकाएक नीना की मुद्रा ऐसी हो गई जिसे काटो तो खून ही न हो। बिल्कुल विवश-सी पड़कर उसने मिसेज मनचन्दा की ओर देखा।

मिसेज़ मनचन्दा उसका आशय भाँपकर अशोक से बोली, "अशोक, वे तो सो रही हैं।···आज उन्हें क्लोरोफार्म दिया गया है।"

"क्या वह इस कद्र बीमार हैं ?" अशोक का स्वर संवेदना से डोलने-सा लगा, "नीना, मुझे तुम्हारे साथ पूरी हमदर्दी है। मेरे साथ आओ। मुझे बस एक निमिष देख लेने दो !"

"नहीं अशोक !" यह कह कर मिसेज़ मनचन्दा ने उसे बाँह से पकड़ लिया और उस ओर ले जाने लगी जहाँ राना-दम्पती के साथ ठुकराल खड़ा था। बहुत ही धीमे मिसेज़ मनचन्दा ने अशोक के कान में कहा, "मिसेज़ बजाज मौत के किनारे आ पहुँची हैं !"

"सच ?" बिल्कुल स्तंभित-सा होकर अशोक ने मिसेज मनचन्दा की ओर देख लिया। फिर उसे ऐसा महसूस हुआ कि उस राजसी ठाटबाट वाले ड्राइंग-रूम में जहाँ मनोरंजन और दिलबहलाव के लिए लोग उन्मत्त-से दिख रहे थे मृत्यु की काली बीभत्स-सी छाया मंडराने लगी हो। दूसरी ओर राना और मिसेज राना जोर-जोर से कहकहे लगाने लगे थे। अशोक के निकट आने पर मिसेज राना ने उससे कहा "अशोक, तुम्हें शायद पता नहीं मेरे पति ने ठुकराल साहब से कितना बढ़िया मजाक किया है कि काँग्रेस में अब ज्यादातर बूढ़े लोग ही रह गए हैं। अशोक, तुम भी कुछ कहो। कोई ऐसी ही रसीली मजाक की बात तुम भी सुनाओ !"

अशोक ने उत्तर दिया, "जितना मजाक राना साहब को आता है उतना मुझे नहीं आता।"

"मिस्टर अशोक," ठुकराल ने उससे कहा, "सुना है तुमने फार्मिंग शुरू कर दी है ?"

"आपने ठीक ही सुना है !"

मिसेज़ राना जिसके होंठों के कोनों में हँसी दुबकी हुई थी इसे मज़ाक की बात समझ कर ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगी।

ठुकराल बोला, "मिस्टर अशोक, तुम पीछे जाने की कोशिश में हो !"

"कुछ लोग पीछे ही रहेंगे ताकि आगे जाने वालों को यह महसूस हो सके कि वे आगे हैं !"

एक ऊँचा-सा कहकहा सारे कमरे में गूंज गया। तभी जयचन्द राना और ठुकराल के निकट आकर बोला, "चलिए ! मेज़ पर तशरीफ रखिए ! जान-हेग आपका इन्तज़ार कर रही है !" फिर वह पलटकर अशोक से कहने लगा, "अशोक तुम नीना के पास बैठो !"

"जान हेग !" राना खुशी से चिल्लाया, "क्या ठाट हैं आपके ? हर बार बढ़िया-से-बढ़िया स्काच आपकी टेबल पर देखता हूँ !"

जयचन्द ने उत्तर दिया, "आपको पता होना चाहिए कि जयचन्द बजाज मँजे हुए टेस्ट का आदमी है !"

अशोक वहाँ से हटकर अपने पिता के पास चला गया और अनुनय के स्वर में उनसे कहने लगा, "डैडी, आप बिल्कुल ड्रिंक नहीं करेंगे !"

अपनी मुद्रा को किंचित् कसते हुए राव ने उसकी ओर देख लिया। फिर कुछ क्षण सोचते रहने के बाद उसने उत्तर दिया, ओ० के० माई सन ! मैं एपलजूस ही पी लूँगा !"

अशोक को एकाध सिग्रेट फूँक लेने की तीव्र उत्कण्ठा हो रही थी और वह सिर्फ़ पिता की उपस्थिति के कारण ही ऐसा नहीं कर सका था। वह बाहर लॉन की ओर चला आया और आसमान से बरसती हुई चाँदनी में खड़े हो सिग्रेट पीने लगा। फिर कुछ क्षण बाद उसने नीना को अपनी ओर आते हुए देखा। नीना पहले तो मुस्कराती हुई उसे देखती रही। फिर उसने कहा, "तुम इस तरह चाँदनी में खड़े सिग्रेट पीते हुए मुझे बहुत अच्छे लगते हो !"

"मैं डैडी के सामने यह गुस्ताखी नहीं कर सकता था इसलिए यहाँ चला आया !"

"तुम्हारी आदतें बिल्कुल एक बच्चे जैसी हैं !"

"सचमुच ?"

"बहुत जिद्दी हो न !" नीना मुस्कराई, "लेकिन मुझे बहुत अच्छे लगते हो !"

प्रत्युत्तर में अशोक ने उसकी ओर देखा। उसे लगा कि नीना का महकता हुआ सौन्दर्य इस समय उससे कोई चुभती-सी बात सुनने की अपेक्षा नहीं रखता। और सचमुच अशोक को यह भी अनुभव हुआ कि नीना की आँखें जैसे उससे पूछ रही हों—क्या मैं खूबसूरत नहीं ? तुम्हारा उपेक्षा-भाव ऐसे सौन्दर्य के समक्ष क्या निरर्थक-सा नहीं लगता ?

"मैंने सुना है तुम गाँव चले गए थे···क्यों ?"

"मानसिक शान्ति के लिए !"

"अपने गाँव से उषा के गाँव भी गए थे ?"

"हाँ !"

"मेरा खयाल है तब तुम्हें मानसिक शान्ति जरूर मिल गई होगी ?" नीना के स्वर में स्पष्ट ही व्यंग्य की ध्वनि थी।

अशोक के मन में हुआ कि वह यह उत्तर दे···उषा दे सकती थी, लेकिन वह खुद भटकी हुई है। लेकिन उसने वह न कहकर यह कहा, "नीना, तुम तो बहुत ही सुन्दर लगने लगी हो···मैं नहीं जानता था !" यह कहते वक्त उसे अपने भीतर धीमी आँच-सी सुलगती हुई महसूस हुई।

नीना हँसते हुए बोली, "शुक्र है तुम यह समझ लेने में योग्य तो हुए कि सुन्दर होना क्या होता है !"

वह उसके और भी निकट चली आई और किसी विचित्र-से सैंट की महक अशोक की साँसों में लहराने लगी। "नीना !" उसने कह दिया, "इस लॉन में आकर भी मुझे यही खयाल आया था कि तुम्हारी ममी कितने कष्ट में है !"

"वह इस वक्त सो रही हैं !" फिर नीना को जाने क्या हुआ कि उसने अपना हाथ उसके होंठों पर रख दिया, "तुमसे ऐसी बातें सुनती हूँ तो मुझे सचमुच हौल-सा आने लगता है। अशोक, तुम नहीं जानते कि मैं उसे कितना प्यार करती हूँ !" यह कहते वक्त उसकी आँखें भर गई थीं।

अशोक ने उसका हाथ होंठों से हटाकर अपने हाथ में ले लिया। "मुझे खेद है !" उसने उत्तर दिया। नीना के हाथ का स्पर्श उसके खून में घुलने लगा। फिर उसने आँखें बन्द कर लीं और उसकी मनःस्थिति में अजीत के शब्द गूँजने लगे जो सुबह अजीत ने उससे कहे थे।

कई मिनट तक उन दोनों में से कोई नहीं बोला। इतने में सुरेश वहाँ आया। लगता था अन्दर जाने के लिए वह बहुत तेज़ी में हो। अशोक और नीना को एकान्त में साथ-साथ खड़े देख वह ठिठक कर खड़ा हो गया और हँसता हुआ बोला, "आहा ! कोर्टशिप हो रही है ! क्या कहने !"

अशोक सचमुच ही परेशान-सा दिखने लगा। उसने कहा, "गुड ईवनिंग

सुरेश !"

"मैं सविता के प्यार में जल रहा हूँ," सुरेश कहने लगा, "लेकिन मेरे डैडी मेरी शादी उस जगह करेंगे जहाँ से उन्हें पचास हज़ार का ड्राफ्ट बड़े आराम से मिल सके।···नन्हीं ! सुना है अन्दर स्कॉच उड़ रही है, लेकिन मुझे तो किसी ने बुलाया ही नहीं !" वह तेज़ी से पोर्च में जाते ही अदृश्य हो गया।

नीना अव्यवस्थित-सी होकर बोली, "वह जरूर कोई उपद्रव करेगा ! आओ चलें !"

"सुरेश !" ड्राइंग-रूम की देहलीज़ पर आकर उसने सुरेश को आवाज़ दी जो उससे कुछ कदम आगे था।

ड्राइंग-रूम की रोशनी में दिखाई दिया कि सुरेश के बाल बुरी तरह उलझे हुए हैं और अपने पहरावे में वह काफी उच्छृँखल भी लग रहा है। वह ठिठककर नीना की ओर मुड़ा और फिर पागलों की तरह हँसने लगा।

नीना ने कहा, "सुरेश, तुम एपल-जूस पियो !"

सुरेश ने बहुत ही भोंडा-सा मुँह बनाया और वह तेज़-तेज़ उस टेबल की ओर चला गया जहाँ पर उसके डैडी अपने दोस्तों के साथ ह्विस्की पी रहे थे।

अशोक कौतूहल से भर यह सब देख रहा था जैसे प्रतीक्षा में हो कि सुरेश कौनसी उच्छृँखलतापूर्ण हरकत करता है।

"आहा ! ह्विस्की पी जा रही है !" सुरेश जयचन्द से बोला। वह तब भी हँसे जा रहा था।

"सुरेश ! तुम नन्हीं के पास जाकर बैठो !"

"कौन कमबख्त यहाँ बैठने आया है ! हम तो थोड़ी-सी पीकर यहाँ से इसी वक्त चले जाएँगे !" कहकर सुरेश ने गिलास उठाया और उसे आधे से ज्यादा भर लिया। "यूअर हैल्थ जैंटलमन !" उसने गिलास मुँह को लगा लिया और गटागट पीने लगा।

इस पर बेचारा जयचन्द उसे कहता ही रह गया, "तुम बिल्कुल नीट पी गए हो। क्या अपने को मार डालना चाहते हो ?"

सुरेश बोला, "कौन कमबख्त जीना चाहता है ? सविता की बड़ी-बड़ी

आँखों की कसम ! हम में से कोई भी नहीं जी रहा। सभी जीने का स्वाँग कर रहे हैं !"

राव उसे क्रुद्ध-सी दृष्टि से घूरने लगा था। स्थिति को बिगड़ते हुए देखकर अशोक सुरेश के पास चला गया और उसके कन्धे पर हाथ रखकर उस दरवाज़े की ओर जाने लगा जिसके बाहर लॉन था। सुरेश ने विरोध नहीं किया। कदाचित् वह अशोक का आदर करता था। उसी क्षण जयचन्द अपने दोस्तों से कहने लगा था, "जैंटलमैन ! मुझे माफ कर दिया जाए। मेरे लड़के ने गुस्ताखी की है। फार्गेट इट ! उसका दिमाग खराब है। अपने-आप खराब नहीं, बस कर लिया है। मुझे मजबूर होकर कोई-न-कोई सख्त कदम उठाना ही पड़ेगा। जरूरी है ब्रदर्स ! नहीं तो हम जो अपने को नौजवान बेटों के बाप समझते हैं एकदम तबाह हो जाएँगे !"

वह रात्रि-भोज रात के ग्यारह बजे खत्म हुआ। घर की ओर लौटते हुए राव ने अशोक से कहा, "सुरेश की करतूत देखी ? मेरा लड़का ऐसी गुस्ताखी करने लगे तो मैं सचमुच उसे गोली मार दूँ।"

अशोक स्वयं भी सुरेश के व्यवहार से दुखी हुआ था। पिता के शब्दों को सुनकर उसके बस इतनी ही प्रतिक्रिया हुई कि उसने कार की थोड़ी-सी स्पीड तेज़ कर दी। कुछ क्षण बाद राव ने जैसे पहले कहे गए शब्दों की भीतरी कटुता को उमेठते हुए कहा, "लेकिन मैं जानता हूँ तुम उस तरह की गुस्ताखी करने की सोच भी नहीं सकते। तुम एक शरीफ खानदान के लड़के हो !"

तत्क्षण अशोक के मन-पटल पर नीना का चेहरा झूलने लगा था···महकते हुए सौन्दर्य से खिला हुआ और भावपूर्ण और वह जैसे उससे प्रेम की भीख माँग रहा हो और पूछ रहा हो—क्या मैं खूबसूरत नहीं ? क्या तुम्हारा उपेक्षा-भाव इस सौन्दर्य के समक्ष निरर्थक-सा नहीं लगता ? उसने उस स्पर्श को भी याद किया जो उसने उसके हाथ को अपने हाथ में लेकर महसूस किया था और उस स्पर्श से एक धीमी आँच-सी उसके खून में सुलगने लगी।···फिर उसे उषा का खयाल आया जो उसके समीप होते हुए भी उसकी पहुँच से उतनी ही दूर थी जितना आकाश में चमकता हुआ कोई तारा···सिर्फ दूर ही नहीं, अजीत की

किसी एब्स्ट्रैक्ट पेंटिंग की तरह जटिल भी। वह चिन्तन में उलझी हुई एक समस्या-भर ही है···उसे लगा कि उसने बहुत पहले बिल्कुल ठीक ही थोड़े से शब्दों में उसके व्यक्तित्व का सार उसके सामने उगल दिया था।

राव ने एकाएक पूछ लिया, "अशोक, क्या सोच रहे हो ?"

"कुछ नहीं !"

"मैं बिल्कुल ठीक कहता हूँ," राव कहने लगा, "कि तुम शरीफ खानदान के लड़के हो। लेकिन जयचन्द जैसे लोगों में चरित्र नाम की चीज है ही नहीं चाहे ऊपर-ऊपर से ये लोग बहुत ही सभ्य दिखाई देते हों। तुम यह मेरी बद-किस्मती समझ लो कि मैं इन लोगों के चँगुल में बुरी तरह फँस गया हूँ।" वह कुछ क्षण अपनी आँखों को झपकता रहा, क्योंकि सामने से आ रही किसी कार की रौशनी सीधी उसकी आँखों पर गिरी थी। उसने कहा, "सिर्फ सुरेश ही बिगड़ा हुआ लड़का नहीं। उसका बाप भी महा चंट आदमी है। कई बार तो मुझे खयाल आता है कि मैंने फिजूल ही उसकी लड़की के लिए तुम्हारे रिश्ते की हामी भर दी। मुझे अब इसके बारे में नए सिरे से विचार करना होगा !"

अशोक बिल्कुल भौंचक्का-सा रहकर उसके शब्दों को सुनता रहा था, लेकिन अन्त में उसे सचमुच झटका-सा लगा जैसे परिस्थिति ने उसके प्रति विचित्र-सा खिलवाड़ किया हो। क्या यह सच नहीं कि सिर्फ कुछ क्षण पहले ही नीना के बारे में सोचते वक्त उसने अपने भीतर अत्यन्त स्वाभाविक सुखद-सी अनुभूतियों को फूटते हुए महसूस किया था।

☐ दस

नीना हफ़्ते में दो बार मादाम लोपियर के सेलून में बाल-डाँस का अध्ययन

करने लगी थी। वह अपने पिता के साथ कनाट प्लेस आई थी। मेरीना होटल के निकट वह कार से उतर गई। जयचन्द ने उससे कहा, "नन्हीं! लौटने के लिए तुम टैक्सी ले लेना और कार के लिए फोन मत करना। आज मुझे बीसों जगह काम है!"

जयचन्द पहले लॉयन क्लब के दफ्तर में गया। इस क्लब की सदस्यता ऊँचे तबके के व्यापारियों तक सीमित थी। क्लब के वार्षिक चुनाव होने वाले थे और उप प्रधान-पद के लिए उसने अपना आवेदन-पत्र देना था। इस काम से निवट कर वह चैम्बर आफ कामर्स के दफ्तर में गया। सरकार की आथक नीति के सम्बन्ध में जो गति-विधि होती रहती थी इसकी सूचना बराबर उसे इस दफ्तर से मिलती रहती थी। वह इस चैंबर का भी महत्त्वपूर्ण सदस्य है।

वह दफ्तर के एक उच्च कर्मचारी मिस्टर सन्थानम के पास गया और इस कर्मचारी के साथ उसके सम्बन्ध मित्रता की सीमा तक खुले हुए हैं। संथानम ने उससे कोल्ड कॉफी पी लेने का प्रस्ताव किया और यह जयचन्द ने 'थैंक यू' कहकर स्वीकार कर लिया। बात-बात में उसने कह दिया कि उसकी नई फीनाँस लिमिटिड स्कीम का पब्लिक ने बहुत ही स्वागत किया है और कुछ महीनों में उसके पास कई लाख का बिजनिस आ गया है। सन्थानम ने खिल-खिल हँसते हुए यह फबती कसी, "आपकी स्थिति बैंकों से बेहतर है और यह सचमुच खेद की बात है!"

"खेद की बात क्यों?" जयचन्द ने फटी-फटी नज़रों से उसकी ओर देखा, "आपको तो ऐसे ही मेरी टाँग खींचने की आदत है।"

"अजीब बात है," सन्थानम बोला, "कि सरकार बैंकों का तो राष्ट्रीय-करण कर लेने की सोच रही है, लेकिन पब्लिक फीनानसिंग को बिना लगाम छोड़ दिया है।"

जयचन्द ने अपनी बाईं आँख को थोड़ा कुंचित करके उसकी ओर देखा। "डियर सन्थानम भाई," वह कहने लगा, "सोशलिज्म बड़ी दूर की चीज़ है और हम लोगों की बस चाँदी-ही-चाँदी है!"

मिस्टर सन्थानम किसी निश्चित दृष्टिकोण को लेकर बहस नहीं करना

चाहता था। वह कोई-न-कोई शोशा छेड़ देता ताकि उसकी प्रतिक्रिया देख सके। जयचन्द के हास्यास्पद-से व्यक्तित्व-से वह भली-भाँति परिचित है और जब उसने उसकी पब्लिक फीनांस योजना को लोगों की लूट-खसूट का एक सभ्य साधन कहा तो जयचन्द ने अपने होंठों को इस तरह बिचका लिया जैसे वह रूठा हुआ बच्चा हो।

फिर एकाएक किसी विचार के आने पर उसकी आँखें चमकने लगीं। उसने कहा, "मिस्टर सन्थानम, आप इकनॉमिक्स में अच्छी तरह माहिर हैं। अगर आप ने यह बात मजाक में की है तब ठीक है, लेकिन इस बात में मुझसे सहमत ही होंगे कि पूँजी जो बिखरी पड़ी है उसे एक जगह इकट्ठा करने में हमारी जैसी स्कीमें कितनी इम्पोर्टेन्ट हो सकती हैं। इस एकत्रित पूँजी से जिसने ट्रक लेना है वह ट्रक ले सकता है और जिसने कारखाना लगाना है वह कारखाना भी लगा सकता है। मैं कहता हूँ अगर देश में औद्योगिक क्रांति आएगी तो हमारी जैसी स्कीमों से ही आएगी।" यह कहकर वह कुर्सी से उठने लगा।

"इतनी जल्दी क्यों?" मिस्टर सन्थानम उसे रोक लेने की नीयत से बोला, "आप बस आए और चल दिए!"

"मुझे मिनिस्ट्री में कुछ काम है!"

"क्या?"

"किसी काम के लिए एक अफसर से तिकड़म भिड़ा रहा हूँ।"

"विश यू दा बैस्ट ऑफ लक!"

"थैंक यू!"

मिनिस्ट्रीवाला काम निबटाकर जयचन्द अपने दफ्तर आ गया। सीढ़ियों की ओर बढ़ते ही उसकी नजर रूपलाल और मिसेज मनचन्दा की ओर चली गई जो कारीडार में उसे अपनी ओर आते दिखाई दिए। वह एक कदम पहली सीढ़ी पर रखकर उनकी प्रतीक्षा करने लगा।

रूपलाल वही सौभाग्यशाली व्यक्ति था जिससे शादी करके मिसेज मनचन्दा ने सोचा था कि वह अपने असामयिक वैधव्य के एकाकीपन से मुक्त हो सकती है, लेकिन इस विचार को एक निहायत ही बेहूदा-सा विचार समझ कर उसने

अपने दिल से भी उतार लिया था। रूपलाल के व्यक्तित्व में ऐसी कोई बात नहीं थी जो मिसेज मनचन्दा-जैसी संभ्रांत महिला को प्रभावित कर सके। सिर्फ़ इतना ही कि बड़ी उम्र का हो जाने पर भी कुँवारा है और रुपया कमा सकने की उसके अन्दर पर्याप्त योग्यता भी है।

वैसे अपने विचारों में वह कांग्रेसी है। अगर सत्ता कांग्रेस के हाथ में न होकर किसी और पार्टी के हाथ में होती तो वह उसी पार्टी का ही सदस्य होता। लेकिन वह यह मानने को कभी तैयार नहीं था कि उसमें अवसरवादिता है। वह दिल्ली कार्पोरेशन का मेम्बर भी रह चुका है। उसकी आयु पैंतीस से अधिक नहीं। दरमियाना कद, लेकिन नाक-नक्शा काफी अच्छा है।

"बजाज साहब," उसने जयचन्द से मिलते ही कहा, हमारी आदरणीया मिसेज़ मनचन्दा आपकी स्कीम में एक लाख की पूँजी लगाकर डायरेक्टर बन जाने को तैयार हैं।"

विस्मय का झटका-सा खाकर जयचन्द ने अपनी पीठ दीवार के साथ सटा ली जैसे अपने को गिरने से रोक लेना चाहा हो। "सच ?"

"बिल्कुल सच !" रूपलाल उसकी नाटकीय-सी मुद्रा पर खुलकर हँसते हुए बोला।

"थैंक यू ! थैंक यू !" जयचन्द ने उसके हाथ को गरमजोशी में दबाया और फिर वह मिसेज मनचन्दा से संबोधित हुआ, "डियर सरोज, यह साल कल खत्म हो जाएगा, लेकिन तुम्हारा हमारी स्कीम का डायरेक्टर बन जाना गुजरने वाले साल की सबसे बड़ी खबर समझी जानी चाहिए !"

मिसेज मनचन्दा पहले तो संकोचवश कुछ बोली नहीं। फिर उसने कहा, "मेरे पास कुल पूँजी लाख-सवा लाख ही है। मेरा खयाल है मुझे आप लोगों की तरफ से इसका अच्छा रिटर्न मिलता रहेगा !"

"समझ लो एक हजार महीना घर बैठे-बिठाए तुम्हें मिल जाया करेगा। डियर सरोज···।" जयचन्द की आवाज थोड़ा और मुलायम हो गई, "तुम्हें अपनी पूँजी के बारे में बिल्कुल फिक्र नहीं होनी चाहिए। जयचन्द का अपना रुपया डूब सकता है, लेकिन उसकी असामियों के रुपये को कभी आँच नहीं आ

सकती। आओ।...आओ! मेरे दफतर में चलो!"

यह सच है पिछले कुछ महीनों से मिसेज मनचन्दा पर इस काम के लिए उस के परिचितों के जरिए जोर डाला जाता रहा था, लेकिन वह टाल-मटोल करती रही। इतनी बड़ी पूँजी साधारणतया सुरक्षित समझे जाने वाले बैंक से निकलवाकर प्राइवेट संस्था में झोंक देने का उसके अन्दर साहस नहीं था। लेकिन दिनों-दिन बढ़ती जा रही न्यू इंडिया फीनांस लिमिटिड की प्रसिद्धि और डायरेक्टरों की सूची में कांग्रेस तथा प्रशासन से संबंधित बड़े-बड़े नामों का आ जाना उसके अनिश्चय को एक सीमा तक प्रभावित करते रहे थे। रूपलाल ऐसे ही क्षण की प्रतीक्षा में था। जयचन्द को कृतज्ञता में लपेट कर वह एक गहरी चाल खेलने जा रहा था।

ऊपर आकर उसने जयचन्द से कहा, "मैं सुरेश के पास बैठूंगा। आप मिसेज़ मनचन्दा के साथ कागजी कार्रवाई कर लीजिए।" यह कह कर कह आगे बढ़ गया जिस ओर सुरेश का निजी दफ्तर था।

उसके आने पर सुरेश अपने में बौखलाया-सा सिग्रेट फूंक रहा था। रूपलाल ने आते ही कहा, "मुझे धन्यवाद दो सुरेश, मैं आप लोगों की स्कीम के लिए एक बहुत बड़ी मुरगी फाँस लाया हूँ!"

"किसे?"

"मिसेज सरोज मनचन्दा को।"

"मेरा खयाल है," सुरेश जरा भी उल्लसित हुए बिना बोला, "इस काम के लिए तुम्हें धन्यवाद मेरे डैडी से ही लेना चाहिए।"

"क्यों भई?"

"उनके बिजनिस में अब मेरी कोई रुचि नहीं रही। वे मेरी भावनाओं को कुचलने पर तुल गए हैं!" सुरेश ने यह गहरी व्यथा के स्वर में कहा।

रूपलाल उसके निजी मामले से वेखबर नहीं था जिसका सम्बन्ध उनके दफतर में करने वाली सविता नाम की युवती से था। उसने कहा, "इस तरह निराश होने की जरूरत नहीं। मुझसे जहाँ तक बन सकेगा मैं बजाज साहब को तुम्हारा दृष्टिकोण समझाने की पूरी कोशिश करूँगा!"

"लेकिन उन्होंने सविता को तो इस दफ्तर से चलता कर लिया !"

"क्या डिसमिस···?"

"नहीं, उसे लम्बी छुट्टी दे दी है। आज पूरे सात दिन हो गए। जरा सोचो तो···सात दिन ! मैं सचमुच पागल हो जाऊँगा !"

रूपलाल सप्रयत्न ही अपनी हंसी रोक लेने में समर्थ हो सका। जिस मन्तव्य को लेकर वह उसके पास आया था उसके लिए उसे उपयुक्त भूमिका मिलती दिखाई नहीं देती थी।···कमबख्त ! यह तो अपना ही दुखड़ा ले बैठा ! उसने मन-ही-मन सोचा। वह कुछ क्षण उसके हाथ को सहलाता रहा। फिर अपने स्वर को···समूची मुद्रा को भाव-विह्वल-सी बनाते हुए उसने कहा, "सुरेश, कुछ मेरी भी तो सुनो···।"

"क्या ?"

"तुम्हें अपना वायदा याद है जो एक शाम क्लब में तुमने मुझसे किया था ?"

सुरेश जड़-सी मुद्रा में उसकी ओर देखने लगा और उसकी आँखें बिल्लौर के मनकों की तरह निर्जीव-सी लगने लगीं।

रूपलाल ने व्यंग्य किया, "तुम्हें क्योंकर याद रहता ? तुम्हारे भेजे में तो हर वक्त वही स्टैनो घुसी रहती है।"

"उसे स्टैनो नहीं, मेरे दिल की रानी कहो। हमारी आपसी ऊँच-नीच की दूरियाँ उसी दिन खत्म हो गई थीं जिस दिन हम एक-दूसरे को चाहने लगे थे !"

रूपलाल मन-ही-मन खीझने लगा और उसे हँसी भी आने लगी। अपने छोटी उम्र के मित्र की अत्यन्त उच्छृंखल और भावुकतापूर्ण हरकतों को वह एक मुद्दत से जानता था और यह भी जानता था कि सुरेश जिस सीधी और भोली तबियत का है नीना से शादी करने के निमित्त उसके पास उससे बेहतर और कोई शस्त्र नहीं। उसने कहा, "तुमने वायदा नहीं किया था कि अपने डैडी से मेरे साथ नीना के रिश्ता की बात करोगे ?"

"लेकिन···!" सुरेश कुछ क्षण उपयुक्त-सा उत्तर सोच लेने के लिए रुका

रहा और अपना दाढ़ी वाला हिस्सा भी खुरचता रहा। फिर उसने कहा, "लेकिन नीना अशोक को चाहती है...वह उसे प्यार करती है!"

रूपलाल किसी तरह भी हँस पड़ने से अपने को रोक न सका। उसके चेहरे की भंगिमा एक कटु से तथ्य को उँडेल देने की चेष्टा में कुछ विकृत-सी हो गई। बोला, "आज वह अशोक को चाहती है और उसे प्यार करती है लेकिन एक समय उसने मेरे आवारा-से भाई अजय को चाहा था और उसे प्यार किया था। मेरा खयाल है कि यह घटना तुम्हें और तुम्हारे घरवालों को भूली नहीं होगी?"

यह सुनते ही सुरेश इस भाँति अस्थिर-सा हो गया जैसे कहीं निकट ही बहुत बड़ा धमाका-सा हुआ हो।" माई डियर रूपलाल...!" बहुत ही धीमे से उसके होंठों से ये शब्द निकले।

"क्यों?" रूपलाल जैसे भाग्य की चुनौती की तरह उससे पूछ रहा था।

सुरेश ने अपने को झटका-सा दिया जैसे वह वस्तु-स्थिति को समझ लेने की कोशिश में हो। टूटते-से स्वर में उसने कहा, "उस बात को दो साल हो गए।"

"अभी कोई ज्यादा अर्सा नहीं हुआ," रूपलाल ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया "अगर अशोक या उसके डैडी को इस सच्चाई का पता लग जाए कि नीना पहले किसी और आदमी को चाहती रही है तो जो रिश्ता तुम लोगों ने सोच रखा है वह गोल हुआ समझो! लेकिन सुरेश, तुम्हारे इस दोस्त के दिल में इतनी उदारता तो है कि वह नीना का पिछला अपराध माफ कर दे!"

"यह तो ठीक है," सुरेश ने दबे-से स्वर में कहा, "अशोक और उसके डैडी बहुत ही संकीर्ण विचारों के लोग हैं!"

अपने प्रभाव को उस पर जमते हुए देखकर रूपलाल ने अपनी ओर से यह जोड़ दिया, "एक बात यह भी सोचने की है सुरेश, कि वे लोग हमारी सोसाइटी के नहीं। कल तक राव ज़मींदारी करता था और आज वह अपने को ब्रिज़निसमैन कहने लगा। उसे अपने माहौल में बैठे हुए देखकर मुझे उस कौवे की कहानी याद आ जाती है जिसने मोर-पंख लगा लिए और अपने को मोर

समझने लगा !" यह कहकर वह हँसने लगा।

सुरेश की आँखों में कुछ चमक-सी आ गई। "हाँ-हाँ, ऐसी ही वात है।" उसने हामी भरी और उसकी देखा-देखी वह भी हँसने लगा।

जब उन दोनों में ये बातें हो रही थीं, बिल्कुल निकट ही जयचन्द अपने दफ्तर में बैठा हुआ मिसेज मनचन्दा से कह रहा था, "सरोज, तुम बहुत समझदार-सी औरत हो। शादी एक शानदार चीज है, लेकिन उसका एक कायदा है ···एक उसूल है और इस कायदे और उसूल के बाहर जो भी शादियाँ होती हैं वे बर्बादी के सिवा और कुछ नहीं। वह स्टैनो पश्चिमी पंजाब से आई एक शरणार्थी लड़की है और उसकी माँ भी नौकरी करती है···!"

"लेकिन बजाज साहब," मिसेज मनचन्दा ने उसे टोक दिया, "वह काफी पढ़ी-लिखी और सुन्दर है !"

जयचन्द ने इन्कार के भाव से अपने सिर को झटका-सा दिया। बोला, "पढ़ाई-लिखाई के लिए हर जगह स्कूल और कालेज हैं और सुन्दर होना सिर्फ एक चांस की बात है। इन दोनों बातों से यह उलझन साफ नहीं होती कि वह एक गरीब-सी लड़की है यानी उसकी खानदानी हैसियत सिफर के बराबर है। सुरेश बिल्कुल बेवकूफ है। वह उसके साथ थोड़ा-बहुत रोमाँस कर लेता, लेकिन शादी कर लेने का खयाल उसे हरगिज-हरगिज अपने दिमाग़ में नहीं लाना चाहिए था।" फिर एकाएक कुछ सोच लेने पर उसकी आँखें चमकने लगीं। कहने लगा, "सरोज, मैंने एक और स्कीम सोची है। उस स्टैनो की जगह मै कोई नई स्टैनो रख लूँगा। उतनी ही ब्यूटीफुल और शानदार। फिर तुम देख लेना सुरेश पहली स्टैनो को भूल कर उसके लिए पागल हो जाएगा।"

मिसेज मनचन्दा हँसते हुए वोली, "आप अपने वेटे का मनोविज्ञान वेहतर समझते हैं !"

"आखिर बाप जो ठहरा। मुझे अपने बच्चों का मनोविज्ञान समझ नहीं आएगा तो और किसे आएगा।"

मिसेज मनचन्दा कुरसी से उठते हुए बोली, "अब मुझे नीना से मिलना है। मादाम लोपियर का बैले सेलून !···आपने यही जगह बताई थी न ?"

"हाँ-हाँ ! मेरीना होटल के बिल्कुल पास ही !" जयचन्द भी कुरसी से उठ बैठा और मिसेज मनचन्दा को ज़ीने तक छोड़ आने के लिए उसके साथ-साथ चलने लगा ।

मिसेज मनचन्दा मादाम लोपियर के बैले सेलून के निकट पहुँची ही थी कि उसने नीना को कारीडार के स्तून के पास खड़े देखा । कुछ क्षण पहले ही नीना सेलून से बाहर आई थी और किसी गुजरती हुई टैक्सी को रोक लेने की नीयत से वहाँ आकर खड़ी हो गई थी । मिसेज मनचन्दा से मिलते ही उसने कहा, "अच्छा हुआ आप मिल गईं । अगर मैं टैक्सी में बैठ गई होती तो आपको निराशा होती !"

"नन्हीं !" मिसेज मनचन्दा ने उससे कहा, "मैं तुम्हारे डैडी के आफिस से ही चली आ रही हूँ । आखिर मैंने उनकी नई स्कीम में एक लाख की पूँजी लगा देने का फैसला कर ही लिया ।"

खुश होने की बजाए नीना ने बोझिल-सी नजर से उसकी ओर देखा । मिसेज मनचन्दा ने पूछ लिया, "क्या सोच रही हो ?"

"यही सोच रही थी कि बिज़निस माथापच्ची होता है और इस तरह के काम औरतों के लिए नहीं हैं !"

मिसेज मनचन्दा ने हँसते हुए उत्तर दिया, "मैं बिजनिस नहीं करूँगी, मेरा रुपया करेगा । अगर हर महीने घर में बैठे-बिठाए मुझे एक हजार या कुछ और अधिक मिलता रहे तो मुझे और क्या चाहिए ?"

"लेकिन आँटी," नीना ने पहली की-सी सोच-मुद्रा में कहा, "बिजनिस में हमेशा फायदा तो नहीं होता । कई बार घाटा भी पड़ता है···दीवाला भी पिट जाता है !"

जयचन्द बजाज जैसे बिजनिसमैन की लड़की ही जब यह कह रही थी तो मिसेज मनचन्दा मन-ही-मन कुछ बेचैन हुए बिना न रह सकीं । जयचन्द के दफ्तर में जाकर उसने सिर्फ कुछ छपे हुए कागजों पर ही दस्तखत किए थे और रुपए को ट्राँसफर कर देने का काम बैंक की कुछ फार्मेलिटीज़ को पूरा किए बिना उसी समय न हो सकता था । उसने नीना से कहा, "नीना, मेरी कुल पूँजी सवा

लाख से अधिक नहीं । अगर कल को घाटा पड़ जाए फिर तो मैं बिल्कुल तबाह हो जाऊँगी ।''

''आँटी, आपको खूब अच्छी तरह सोच-समझ कर ही इस तरह का काम करना चाहिए ।''

''हाँ-हाँ !''

''आपने अभी रुपया तो नहीं दिया ?''

''नहीं !''

''कोई जरूरत नहीं !'' नीना ने गहरी सद्‌भावना के स्वर में कहा, ''मैं डैडी को समझा-बुझा दूँगी । वे आप पर जोर नहीं डालेंगे ।''

मिसेज मनचन्दा प्यार से उसके गाल को थपथपाते हुए बोली, ''यू आर ए नाइस गुड गर्ल । आओ कहीं बैठकर आइसक्रीम ही खा लें !''

वे दोनों वैंगर में चली आईं । कुछ मिनट बाद जैसे संयोगवश ही रूपलाल और सुरेश भी वहाँ चले आए । रूपलाल से रहा नहीं गया और नीना को स्तम्भित कर देने की नीयत से उसने कहा, ''नीना, सुरेश यह कहता है कि अगर सविता से उसकी सीधे ढंग से शादी न हो सकी तो वह कोर्ट में कर लेगा !''

नीना सचमुच क्षुब्ध-सी दृष्टि से अपने भाई की ओर देखने लगी । वह जानती थी कि वह ऐसा उच्छृंखल-सा काम कर सकने की क्षमता रखता है । वह स्वयं तो कुछ भी बोल नहीं सकी, लेकिन उसने मिसेज़ मनचन्दा की ओर इस भाव से देखा जैसे कहना चाह रही हो कि मेरी बजाए आप को ही कुछ कहना चाहिए । मिसेज़ मनचन्दा तो जैसे पहले ही तैयार बैठी थी, उसने कहा, ''सुरेश, क्या बिल्कुल बेवकूफ हो जाना चाहते हो ? तुम्हारी ममी का दिल टूट जाएगा । वह तो पहले ही आखिरी साँसें गिन रही हैं ।''

सुरेश किसी तरह भी अपने को यह कहने से न रोक सका, ''ममी ने पापा के साथ लव-मैरिज ही की थी !''

रूपलाल हँसने लगा । जब मिसेज मनचन्दा ने डाँटती-सी नजर से उसकी ओर देखा तो उसे उसी क्षण गम्भीर हो जाना पड़ा । मिसेज मनचन्दा सुरेश से

बोली, "सुरेश, इतनी जल्दीबाजी मचाने की कतई जरूरत नहीं। अगर तुम्हारा प्यार सचमुच ही सच्चा है तो प्यार करते चले जाओ। शादी के लिए इतना उतावला होने की क्या जरूरत है...?"

सुरेश ने ऐसी नजर से उसकी ओर देखा जैसे यह बात उसके मन को छू गई हो। मिसेज मनचन्दा ने आगे कहा, "जल्दबाजी की शादी अच्छी नहीं होती। प्यार इसीलिए किया जाता है कि एक-दूसरे को समझ लेने का मौका मिल सके। अगर प्यार सच्चा है तो अपने-आप ही कोई-न-कोई रास्ता मिल जाता है। मैं कहूँगी सब्र करो...सब्र ! तुम्हारी सभी मुश्किलें अपने-आप ही आसान हो जाएँगी।"

"आंटी ने बिल्कुल ठीक ही कहा है सुरेश !" नीना ने अपनी ओर से कहा। सुरेश विरोध में कुछ भी न कह सका। उसने जेब से सिग्रेट का पैकेट निकाला और सिग्रेट सुलगाकर कुछ सोचते हुए पीने लगा।

अकस्मात् नीना को अजय के साथ अपने प्रेम की याद आई और उसे अनुभव हुआ कि उस प्रेम में वह भी तो एक तरह से भटक-सी गई थी। वह अजय के अत्यन्त साहसी, उच्छृंखल और पुरुषत्व का आकर्षण लिए व्यक्तित्व से ऐसी अभिभूत-सी हुई थी कि उसमें अपनी स्थिति का लेशमात्र भी गर्व नहीं रहा था ...जैसे वह प्रेम शैरी से भी मादक कोई नशीला पेय हो जिसे पीकर व्यक्ति अपनी सुधबुध खो देता है। उसी प्रेम के उन्माद में उसने अजय को ढेर सारी चिट्ठियाँ लिख दी थीं और उन चिट्ठियों में उसने अपने अन्तर को कुरेद-कुरेद कर भर दिया था...अत्यन्त रोमानी-सी भावुकताभरी चिट्ठियाँ !...और ये आज भी अजय के ही पास थीं। नीना को विचार आया कि ये चिट्ठियाँ उसकी बर्बादी का कारण हो सकती हैं और उसके दिल में खौफ-सा भरने लगा।

उसे लगा रूपलाल की उपस्थिति के कारण ही उसे उस दो साल पुरानी घटना की याद आई। वह यह जानता है और इसी तरह मिसेज मनचन्दा भी जानती हैं, लेकिन मिसेज मनचन्दा ने आज तक कभी भूल से भी उस घटना की ओर संकेत नहीं किया था। लेकिन वह हमेशा-हमेशा के लिए तो छिपी नहीं रह सकती ! अगर अजय बम्बई से आ जाए तो...?

रूपलाल उसकी ओर अर्थपूर्ण-सी दृष्टि से देखने लगता था। नीना जितने समय अपनी सोच में डूबी रही उस समय वह उसे और भी आकर्षक लगी। उसके मन में हुआ कि वह उसे एक बहुत ही बढ़िया कौम्पलीमेंट दे कि नीना तुम सचमुच 'मिस दिल्ली' हो, लेकिन मिसेज मनचन्दा की या फिर सुरेश की उपस्थिति के कारण उसने अपने को रोक लिया और उस कौम्पलीमेंट को किसी और दिन के लिए स्थगित कर दिया जब उसे नीना से एकांत में मिलने का सुअवसर प्राप्त होगा। फिर एक मजेदार-सी योजना उसके जहन में उतरने लगी। "सरोज," वह मिसेज मनचन्दा से बोला, "कल न्यू ईयर ईव है। कल हम सब को एक जगह ही इसे सैलीब्रेट करना चाहिए !"

"खयाल बुरा नहीं," मिसेज मनचन्दा ने उत्तर दिया, "मेरा खयाल है इसी रेस्तराँ में ठीक रहेगा !"

"हमें रीगल में ही जाना चाहिए !" रूपलाल ने किसी विशेष कारण से अपना सुझाव दिया, "वहाँ कितना शानदार डान्सिग फ्लोर है। हमारी नीना जी को अपनी कला दिखाने का मौका भी मिलेगा।"

नीना को तत्क्षण अशोक का खयाल आया। न्यू ईयर ईव पर उसके लिए अशोक से बेहतर साथी और दूसरा कौन हो सकता था ? लेकिन उसे पता था वह डाँस नहीं जानता···और वह यह भी सहन नहीं कर सकेगा कि डाँस के लिए वह किसी और युवक को अपना पार्टनर बना कर नाचने लगे !···उसने देखा रूपलाल कुरसी से उठने लगा है।

"कहाँ चले ?" मिसेज मनचन्दा ने उससे पूछा।

"काउंटर पर जाकर फोन करूँगा।" रूपलाल ने उत्तर दिया, "मैंने सोचा है सीटों के लिए मुझे अभी से बुकिंग करवा लेनी चाहिए।"

मिसेज मनचन्दा ने संकेत द्वारा किसी बैरे को बुलाया जो उनके निकट ही खड़ा था और उससे बोली, "चार ट्रूटी-फरूटी आइसक्रीम।"

"मुझसे ट्रूटी-फरूटी खाई नहीं जाएगी," नीना विरोध करने लगी, "मेरे लिए वनीला ही ठीक है।"

मिसेज मनचन्दा समझ गई कि नीना डायटिंग करते रहने के कारण ही

ट्रूटी-फरूटी खाना नहीं चाहती। उसने बैरे को पहले दिए आदेश में थोड़ा-सा संशोधन करते हुए कहा, "बैरा, एक वनीला और तीन ट्रूटी-फरूटी।"

□ ग्यारह

अगली शाम न्यू ईयर'ज़ ईव के उत्सव पर रीगल में आर्केस्ट्रा जैसे किसी विशेष प्रयोजन के लिए ही बज रहा था। उसके संगीत में जैसे उस रात बारह बजे मर जाने वाले पुराने वर्ष के लिए दर्दनाक-सी विदाई का भाव हो और नए पैदा होने वाले वर्ष के लिए शुभागमन की मचलती हुई खुशी।...उसके स्वरों में सचमुच ही शोक और आह्लाद का विचित्र-सा मिलाप हो रहा था। सारा हॉल तमाशाइयों से भरा हुआ था। नृत्यमग्न लोग एक बड़े से वृत में चक्कर लगा रहे थे और उन पर रँग-रँग की रौशनियाँ फेंकी जा रही थीं। पता नहीं आर्केस्ट्रा की धुन में ऐसी कौनसी कशिश रहती है कि वे लोग जो नाचना जानते नहीं, धुन के स्वरों के साथ अपने पैरों की थाप देने लगते हैं और उनके रोम-रोम में उन्माद-सा भरने लगता है। नीना पर जैसे नाचते रहने का फितूर-सा समा गया था, क्योंकि जिस किसी अपरिचित-से युवक ने उससे पार्टनर बनने का अनुरोध किया उसने यह मुस्कराते हुए स्वीकार कर लिया। एक नाच के समाप्त होने के बाद वह कुछ मिनटों के लिए अपनी टेबल पर आ बैठती, शैरी के कुछ घूँट भरती और फिर आर्केस्टा के बजते ही फ्लोर पर चली जाती।

मिसेज मनचन्दा के आगे भी शैरी का गिलास था, लेकिन रूपलाल और सुरेश ह्विस्की पी रहे थे। रूपलाल अपनी आदत के मुताबिक मर्य्यादित-सी सीमा में रहकर ही पी रहा था, लेकिन सुरेश के लिए ऐसी कोई भी सीमा नहीं

थी और वह सचमुच ही नशे में गहरा डूब चुका था। उन दोनों के सिरों पर पतले कागज की रंगीन टोपियाँ थीं जो रैस्तराँ वालों ने नव-वर्ष का स्वागत करने वालों को अपनी ओर से दी थीं।

रूपलाल 'रम्भा-सम्भा' से अधिक नहीं जानता था, लेकिन तब तक आर्केस्ट्रा वालों ने वाल्ट्ज़ की ही विविध धुनें बजाई थीं और इस कारण वह मन-ही-मन काफी खीझ उठा था। मिसेज़ मनचन्दा ने उससे कहा, "नीना नाचते हुए कितनी अच्छी लग रही है।"

"वह वाल्ट्ज करते-करते अपने को थका लेगी!" उत्तर देकर फिर वह कुछ सोचता हुआ उठा और आर्केस्ट्रा के निकट जाकर उसने एक परची पर रम्भा धुन बजाए जाने की फरमायश की। वह परची कुछ क्षण में ही उस व्यक्ति के पास पहुँच गई जो निर्देशक था और ऊँचे मंच पर खड़े हो अपने दोनों हाथ ऊपर जोर-जोर से हिला रहा था। परची पर नज़र डालकर उस व्यक्ति ने रूपलाल की ओर देखा और फिर उसने सिर को हिलाया जैसे मौन भाव से स्वीकृति देनी चाही हो। रूपलाल खुशी से डोलता हुआ अपने टेबल की ओर चला आया।

"माई डियर रूप!" सुरेश की लड़खड़ाती-सी आवाज़ आई, "किट्टी ने दस बजे आने का कहा था। अब क्या वक्त है?"

"अभी नौ हुए हैं। एक घण्टा और इन्तजार करो!"

मिसेज मनचन्दा और रूपलाल ने अर्थपूर्ण भाव से मुस्कराते हुए एक-दूसरे की ओर देखा। किट्टी एक ऐंगलो-इंडियन युवती थी जो पहली स्टैनो सविता की जगह काम करने लगी थी। मिसेज मनचन्दा ने धीमे-से रूपलाल के कान में फुसफुसाते हुए कहा, "मेरा खयाल है इस के ज़हन से सविता का भूत जल्दी ही भाग जाएगा।"

रूपलाल ने उसके शब्दों को जाने किस रूप में लिया। वह इन्हें अपनी मनस्थली के अनुरूप ही अर्थ देते हुए बोला, "यह भूत भी खूब चीज है। किसी को पता नहीं लगता कि यह किस वक्त आ जाए!"

"क्यों, कुशल तो है?" मिसेज मनचन्दा ने उसे टोह लेने वाली नजरों से

देखकर पूछ लिया ।

यह सुनते ही रूपलाल की मुद्रा किसी मनोभाव से पिघलने-सी लगी और वह याचना के स्वर में गिड़गिड़ाता-सा कहने लगा, "मैं आप से एक प्रार्थना करना चाहता हूँ । आप के एहसान मेरे ऊपर इतने हैं कि मैं उन्हें गिन नहीं सकता । जब-जब भी मैंने आपसे रुपए की मदद माँगी आपने अपना हाथ पीछे नहीं किया । आज मैं जिस पोजीशन पर पहुँचा हूँ सिर्फ आपकी मेहरबानियों के कारण । मैं आप के कदमों के नीचे रहने वाली मिट्टी की भी बराबरी नहीं कर सकता । इस नाचीज पर थोड़ा-सा एहसान और कर दो···।"

"क्या ?"

रूपलाल ने अपने गिलास में अवशेष नशीले द्रव्य को गले में उंडेल लिया जैसे अपना मन्तव्य स्पष्ट करने के लिए उसे और अतिरिक्त साहस की आवश्यकता हो । उसने कहा, "मैं आपके पाँव पड़ता हूँ । नीना का रिश्ता मेरे साथ करवा दो ।" और वह सचमुच मिसेज मनचन्दा के पाँव छूने लगा ।

मिसेज मनचन्दा जैसे सकते में आकर उसे देखने लगी । बोली, "यह तुम क्या कह रहे हो ? तुम उसके साथ अपने रिश्ते की बात कैसे सोच सकते हो ?"

"क्यों ?"

"तुम उम्र में उससे कम-अज-कम पन्द्रह साल बड़े हो !"

"कोई ज्यादा फर्क नहीं । मुझमें बीसों और खूबियाँ हैं !"

"दूसरे, मेरा खयाल है," मिसेज मनचन्दा बोली, "कि वह अशोक को भी प्यार करती है ।"

रूपलाल यह किसी तरह भी बर्दाश्त न कर सका । "कब से प्यार करने लगी ? पहले तो वह अजय···।"

"हाँ-हाँ, मुझे पता है," मिसेज मनचन्दा का स्वर गंभीर था, "तब नीना बिल्कुल नासमझ थी । रूपलाल, इस मामले में गड़बड़ डालने की कोशिश मत करना ।"

"ऐसी बातें छिपी नहीं रहतीं । और अशोक ऐसा आदमी नहीं कि नीना को क्षमा कर सके । अजय के लौट आने से पहले में चाहता हूँ कि नीना के साथ

मेरा रिश्ता पक्का हो जाए !"

"नहीं ! नहीं !" मिसेज मनचन्दा ने कठिन होकर उत्तर दिया "मैं इस मामले में तुम्हारी मदद नहीं कर सकूँगी !"

कुछ मिनट बाद रूपलाल नीना के साथ फ्लोर पर चला आया था और आर्केस्ट्रा पर उस समय रम्भा नाच की ही धुन बज रही थी। अभी एक वृत्त भी पूरा नहीं हुआ था कि नीना रूपलाल की गरम साँस अपने दाएँ कान के समीप ही महसूस कर रही थी और उसकी कमर में पड़े हुए रूपलाल के हाथ का दबाव भी उसे काफी भारी-सा लग रहा था। वह सचमुच कुछ परेशान-सी दिखाई देने लगी।

रूपलाल ने खामोशी-सी खींच रखी थी, लेकिन वह सुलग रहा था। उधर आर्केस्ट्रा वाले मंच से जब क्लैरीनेट वाद्य कुछ क्षण चीख-चीख कर शांत हो गया तो रूपलाल किसी तरह भी अपने को यह कहने से न रोक सका, "नीना, आई लव यू ! ईश्वर के लिए मुझे गलत मत समझ लेना। मैं तुम्हें सच्चे दिल से चाहता हूँ···ओफ ! मेरे पास शब्द ही नहीं···!"

नीना सिकुड़ने लगी और उसने ऐसी नजर से रूपलाल की ओर देखा जिस में गहरा आतंक समा गया हो।

"क्या बात है नीना ?" रूपलाल ने पूछ लिया।

"कुछ नहीं !" नीना का स्वर उत्कट खीझ से खिचा हुआ था, "कमबख्त ये आर्केस्ट्रा वाले कब तक रम्भा ही बजाते रहेंगे ? बिल्कुल फूहड़-सा नाच है !"

रूपलाल अपनी ही धुन में कहने लगा, "थोड़ी देर बाद नया साल आ जाएगा। मेरे लिए उसका अच्छा या बुरा होना सब तुम्हारे ऊपर ही है नीना ! इससे पहले कि हम एक-दूसरे को नए साल की बधाई देने लगें···मुझे बस हाँ कर दो। मैं सच कहता हूँ कि मैं दुनिया की सारी खुशियाँ तुम्हारे कदमों पर डाल दूंगा।"

"इतना भावुक होने की जरूरत नहीं !"

नीना ने यह कहा और उसके हाथ में जाल में उलझी हुई मच्छली की तरह छटपटाने लगी। अभी एक मिनट भी नहीं गुजरा था कि आर्केस्ट्रा पर बज

रही रम्भा की धुन बंद हो गई। नीना ने संतोष का गहरा साँस-सा लिया और अपनी मेज की ओर बढ़ गई। कुछ क्षणों तक रूपलाल आत्म-ग्लानि की कुण्ठा से बुझ गयी-सी नजरों से आसपास देखने लगा और अपने स्थान से हिल न सका।

इतने में माइक पर घोषणा हुई, "मिस नीना बजाज! प्लीज एटैंण्ड टु युअर फोन!"

शैरी का एक घूंट भर कर जब नीना मंच की ओर जाने लगी वह अधिक-से-अधिक यही सोच सकी कि यह फोन डैडी ने ममी के बारे में ही किया होगा कि अब वह आराम से सो चुकी है और परेशान होने की जरूरत नहीं। उसका नाम सारे हॉल में गूंज गया था और यह अनुभूति कितनी मजेदार और गुदगुदाहट भरी थी। उसे लगा कि बहुत-सी आँखें उसकी ओर कौतूहल से देख रही हैं ···उसकी आकर्षक-सी सज्जा और मेक-अप से महक रहे सुन्दर चेहरे को निहारते वक्त अवश्य ही उन नजरों में प्रशंसा का भाव खिल उठा होगा। उसने अपनी गरदन को हल्का झटका-सा दिया और उसके बॉब किए हुए बालों का चंदोवा हिल उठा। वह बिल्कुल धीमे, नपे-तुले कदम लेकर चलने लगी।

चोंगे को कान पर रखते ही उसे अपने डैडी की आवाज सुनाई दी, "नीना, सुरेश को लेकर फौरन घर चली आओ! तुम्हारी ममी की तबीयत बेहद खराब है और उसकी साँस उखड़ चुकी है!"

कुछ मिनट बाद वे चारों जो नए वर्ष के जन्मोत्सव पर मनोरंजन-रत्त भीड़ में भूले-से बैठे थे, शोक से बोझिल हो रही मुद्राएँ लेकर मेज से उठने लगे।

उनके घर पहुँचने से पहले पुराने वर्ष की उखड़ती-सी सांसों के साथ रमो भी अपने अस्थायी मायावी-से शरीर को छोड़ चुकी थी।

उस दु:खांत घटना के तीसरे रोज अशोक नीना के प्रति व्यक्तिगत रूप से शोक प्रकट करने के लिए आया। वह कई मिनट तक बाहर वाले बरामदे में निश्चेष्ट-सा खड़ा रहा···कदाचित् यह सोचने लगा हो कि उसे इस अवसर पर नीना से क्या कहना चाहिए। कुछ देर बाद उसने नीना के पिता को किसी और व्यक्ति के साथ कारीडार में आते हुए देखा। वह रूपलाल था। उसके

निकट आने पर ही वह उसे पहचान सका।

जयचन्द रूपलाल के साथ बातें करता हुआ आ रहा था और उसके लहजे से ऐसा प्रकट नहीं होता था कि उस घर में कितने बड़े मानवीय सम्बन्ध की क्षति हुई है।

रूपलाल ने अशोक को देखा तो उसके होंठ व्यंग्य से फैलने को हुए। अशोक जयचन्द के पास चला गया। "मुझे बेहद अफसोस है!" उसने विह्वल कंठ से कहा।

"उसे एक-न-एक दिन तो जाना ही था," जयचन्द ने उत्तर दिया, "बेचारी कई महीनों मे पलंग को पकड़े बैठी थी।...नीना अपने कमरे में ही है!"

"मेरा तो खयाल है वह सो रही है।" रूपलाल ने कहा। उसने झूठ बोला था। वह नहीं चाहता था कि अशोक नीना के पास जाए।

अशोक ने बिल्कुल सहज होकर कहा, "मैं किसी वक्त फिर आ जाऊँगा।"

"मेरा खयाल है वह जाग चुकी है," जयचन्द ने कहा, "बेचारी के लिए बस यही रह गया है रोना, सोचते रहना। तीन दिनों से उसने ठीक ढंग से कुछ खाया-पीया नहीं। कितना प्यार था उसे अपनी ममी के साथ! रूपलाल, न्यू ईयर ईव वाले दिन जब तुम उसे अपने साथ रीगल ले गए थे, वह कितनी मुश्किल से वहाँ जाने के लिए तैयार हुई थी। अशोक, तुम उसके पास जाओ! हमदर्दी के दो-चार शब्द...।"

"हाँ, हाँ!" अशोक ने अपने चेहरे को झुका लिया और कॉरीडार की ओर जाने लगा।

नीना का कमरा दूसरी मंजिल पर था। नीना अपने कमरे के बाहर आराम-कुर्सी में अपने जिस्म को लापरवाही से डाले हुए आँखें बन्द किए लेटी थी। साथ के कमरे से रेडियोग्राम पर किसी शोकपूर्ण संगीत का रिकार्ड बज रहा था। अशोक चुपके-से ज़ीने की अंतिम सीढ़ी पर आकर कुछ देर मूर्तिवत-सा खड़ा रहा और यही सोचता रहा कि उसे नीना की एकांत समाधि में बाधा डालनी चाहिए या नहीं। जब रिकार्ड बजकर चुप हो गया तो नीना ने हड़बड़ा कर आँखें खोलीं और फिर उन्हें यह एहसास हुआ कि ज़ीने के दरवाज़े में कोई खड़ा है।

"ओह आप ?" अशोक को पहचान कर वह कुछ अव्यवस्थित-सी हो गई।

"आई एम सो सॉरी !" सहज ही अशोक के होंठों से ये शब्द निकले··· शोक की दुरूहता को स्पष्ट कर देने के लिए उसे अंग्रेजी के सहारे की आवश्यकता थी।

"बहुत दिनों बाद दिखाई दिए ?"

"मैं गाँव चला गया था। आज ही ममी की चिट्ठी मिली। किसे पता था कि यह बात भी हो सकती है।"

उसका चेहरा और दिनों की अपेक्षा भद्दा लग रहा था। दो-तीन दिनों की दाढ़ी उग आई थी और गाँव से लौट कर उसने शेव कर लेने की आवश्यकता अनुभव नहीं की थी।

नीना ने भाव-विह्वल-से स्वर में कहा, "मुझे स्वयं पता नहीं था। उस शाम मैं रीगल चली गई···।"

"हाँ, मैंने तुम्हें देखा था।"

"कहाँ ?"

"वहीं। मैं बस थोड़ी देर के लिए आया था। अगली सुबह मैं गाँव के लिए चल पड़ा। मुझे नहीं पता था कि उसी रात तुम लोगों के साथ इतनी बड़ी ट्रेजेडी हो जाएगी।"

अशोक को यह समझने में देर नहीं लगी कि नीना की भाव-मुद्रा किस कारण इतनी अस्थिर-सी हो गई है। उसने उसे किसी अपरिचित-से युवक के साथ नृत्य करते हुए देखा था। लेकिन अशोक नहीं जानता था कि उसके शब्दों में उस कटु से यथार्थ का संकेत आ जाएगा जो नीना समझे बैठी थी कि अशोक को मालूम नहीं। यह सच है वह उस दृश्य को सहन नहीं कर सका था। उसकी आँखें ऐसे जल उठी थीं जैसे उनमें काँच के टुकड़े आ गिरे हों। टूटते-से स्वर में उसने अजीत से कहा था···किसी और जगह चलते हैं। यहाँ के आर्केस्ट्रा का शोर मुझसे बर्दाश्त नहीं होता··।

लेकिन इन सभी विचारों से उसने अपने को मुक्त कर लेना चाहा। वह नीना के प्रति शोक प्रकट करने आया था, उसे पीड़ा देने या अपमानित करने

नहीं।

दूसरी ओर नीना के भीतर कुछ क्षण पहले जो फुसफुसाती-सी अपराध-चेतना हुई थी वह अब नहीं थी।...मैंने कोई अपराध नहीं किया, वह सोचने लगी। अगर उस रात वह दुःखपूर्ण घटना न हुई होती तो सचमुच ही वह रात मेरी जिन्दगी की सबसे अधिक खुशी और उन्माद वाली रात होती। संभवतः अशोक से वह सब बर्दाश्त नहीं हुआ होगा, लेकिन इसमें मेरा अपना अपराध क्या है! अगर वह मूलतयः संकीर्ण हृदय व्यक्ति है तो इसमें कोई क्या कर सकता है। गाँव में खेती शुरू कर देने के बाद से उसका व्यक्तित्व तो और भी बेढंगा-सा हो गया है...।

अशोक एक बुजुर्ग आदमी की-सी भाव-मुद्रा में कहने लगा, "मौत पर किसी का बस नहीं चलता।" हमेशा से लोग यही कहते आए हैं, उसने सोचा। कितना दकियानूसी-सा विचार है।

नीना ने मौन बनाए रखा। शब्दों से अधिक वह उससे कुछ और भी चाहती थी...अपने शरीर पर उसके हाथ का स्नेहिल-सा स्पर्श। उसके मनोव्यथा से अलस हुए स्नातुयों का तोष शब्दों की सर्द-सी सांत्वना से न हो सकता था।

लेकिन अशोक उससे कुछ फासले पर अपनी दार्शनिक-सी लग रही मुद्रा का कठिन बोझिल-सा कवच पहने हुए खड़ा रहा। कुछ और कह देने के लिए वह उपयुक्त शब्दों के लिए रुका हुआ था।

नीना कुरसी से उठकर अपने कमरे में चली गई। रेडियोग्राम पर उसने किसी और अवसाद-भरे संगीत का रेकार्ड लगा दिया। बाहर आकर उसने कहा, "संगीत को सुनते हुए मुझे बहुत ढारस मिलती है।"

"यह ठीक है। तुम्हें ज्यादा महसूस नहीं करना चाहिए। जो होना था सो हो चुका। अब मैं चलूँगा।"

"इतनी जल्दी?"

"मैं फिर आऊँगा। मैं नहीं चाहता कि मेरे यहाँ रुके रहने से तुम्हारा दुख और बढ़ जाए। यह स्वाभाविक ही है। लेकिन एकांत में तुम अपने को संभाल सकती हो।" यह कहकर अशोक नीचे जा रहे ज़ीने की ओर बढ़ गया।

नीना उसे जाते हुए देखती रही। उसकी भीतरी घुटन को आक्रोश में वदलते देर नहीं लगी। कितना कठोर और दम्भी-सा आदमी है !···उसने सोचा। उसे यह पता ही नहीं कि दुख में पड़ी स्त्री के साथ किस तरह का व्यवहार करना अपेक्षित है। यदि व्यवहार में खुल न सकना ही भद्रता का लक्षण है तो ऐसी भद्रता और हृदयहीनता में कोई अन्तर नहीं रह जाता।···नीना को इस तरह के विचार आते रहे और सोच-सोचकर उसकी आँखों में आँसू भी भरते रहे।

अभी कुछ दिन नहीं बीते थे। सुबह के आठ हुए थे और नीना कुछ मिनट पहले ही सोकर उठी थी। सुरेश अपने बिस्तर से निकल कर उसके पास आया। उसकी आँखों के सूजे हुए पेवटे साफ बता रहे थे कि बहुत रात गए ही वह क्लब से लौटने का आदी है। क्लब में वह ताश खेलता था और खूब पीता भी था।

"नीना, एक बात है," वह अपनी बहन से मिलते ही कहने लगा, "कल रात मैंने अजय को क्लब में देखा था।···अरे ! तुम्हारा रंग क्यों पीला पड़ गया ? तुम डर क्यों रही हो ?"

नीना सचमुच ही डर गई थी और उसका रंग भी पीला पड़ गया था। "वह क्यों आएगा ? हमारा सम्बन्ध तो टूट चुका है !" एक क्षरण भी रुके बिना वह यह कह गई।

सुरेश बोला, "मेरे मुंह का स्वाद खराब हो रहा है। पहले एक सिग्रेट लगा लूँ !" उसने अपने नाइट-गाउन की जेब से सिग्रेट और माचिस निकाली। दो-एक कश लेकर उसने कहा, "पहले वह मेरी मेज पर खेलता रहा। डेढ़-दो घण्टों की खेल में एक वार भी उसे पत्ते नहीं पड़े और मेरा खयाल है वह सौ रुपयों से ऊपर ही हार गया था। फिर वह मेरे साथ वार के काउंटर पर पीने के लिए चला आया। कहता था वह बम्बई में दो सालों तक बिल्कुल झक ही मारता रहा और जो दस-पन्द्रह हज़ार की पूंजी उसके पास थी वह भी उसने वर्बाद कर दी। फिर कुछ स्मरण आ जाने पर उसे हँसी आ गई। बोला, "वह खस्ताहाली की वहुत ही भोंडी-सी तस्वीर लग रहा था और हम लोगों के खिलाफ···मेरा मतलव है अमीरों के खिलाफ उसके दिल में पहले से भी ज्यादा

ज़हर था !"

"मेरे बारे में कुछ पूछा ?" नीना ने यह पूछा और साथ ही उसका स्पंदन भी ज़ोर-ज़ोर से चलने लगा।

"हाँ !" सुरेश ने उत्तर दिया, "कहता था कि वह आज तुम्हें किसी वक्त फोन करेगा।"

"फोन किस लिए ?"

"यह नहीं बताया। लेकिन उसे पता लग गया है कि तुम्हारी शादी अशोक से होगी।"

नीना कुछ सोचकर हल्के-से मुस्करा दी, लेकिन यह मुस्कराहट पीड़ा के समानांतर ही थी।

दस-सवा दस बजे उसे अजय का फोन मिला। अजय ने उसे कहा कि उसके जितने भी प्रेम-पत्र उसके पास हैं वह उन्हें उससे आकर ले सकती है। उसने यह भी कहा कि उन पत्रों का उसके पास रहना नीना के हितों को ध्यान में रखते हुए किसी तरह भी ठीक नहीं। वह उन पत्रों को खुद आकर उससे ले ले। अगर वह उसके होटल में न आना चाहे तब वे दोनों शाम के चार बजे क़नाट प्लेस के पार्क में मिल सकते हैं।

"चार बजे नहीं छह बजे !" नीना ने अपनी ओर से यह कहा। वह उसे दिन ढलने पर ही मिल सकती थी ताकि उनकी वह भेंट किसी को मालूम न हो सके।

नीना सारा दिन इसी उधेड़बुन में उलझी रही कि अजय के पास जाय या नहीं। लेकिन उस व्यक्ति के आदेश को···जो पहला प्यार बनकर उसके जीवन में आया था···टाल देना सहज नहीं था। अभी चार भी नहीं हुए थे कि वह अपनी रूप-सज्जा में जुट गई। कोई अदृश्य-सी शक्ति थी जो उसे यह सब कर लेने के लिए उकसा रही थी।···लेकिन कनाटप्लेस की परिधि में दाखिल होते ही उसने कुछ मिनट बाद आने वाली परिस्थिति के लिए अपने को काफी सुदृढ़ कर लिया। उसे विचार आया कि उसे किसी तरह भी कमज़ोर-सी औरत नहीं बने रहना चाहिए। शाम के धुंधलके में राजधानी की वह सबसे सुन्दर बस्ती

नई समृद्धि और ऐश्वर्य से जैसे लश-लश कर रही थी। एक-से-एक बढ़-चढ़कर कीमती सामान से भरी हुई दुकानें और उनके चमचमाते से काउंटरों पर लोगों की उन्मत्त-सी भीड़। नीना को अनुभव हुआ कि यहाँ ऐसी कोई भी चीज़ नहीं जिसे वह खरीद सकने की सामर्थ्य न रखती हो। रुपया अपने में कितनी बड़ी शक्ति है और जिसके पास यह है उसे किसी तरह भी अपने को कमज़ोर समझ लेना नहीं चाहिए।

उसने अपनी कार पार्क के किनारे पर खड़ी कर दी। फिर वह पार्क में चली आई। वहाँ बहुत ही थोड़े लोग थे। अजय उसे पार्क के एक लॉन पर टहलता हुआ दिखाई दिया। सिग्रेट उसके होंठों में दुबकी हुई थी और वह सिर झुकाए अपनी सोच में डूबा-सा लगता था।

नीना के निकट आने पर उसने कहा, "तुम आ गईं? क्या हाल है नीना?"

"बस ठीक हूँ!" नीना के होंठों में हल्की-सी कँप-कँपाहट हुई और उसकी आँखों में कौतूहल और क्षोभ का मिला-जुला भाव फैल गया।

अजय पहले जितना आकर्षक नहीं लग रहा था। उसका चेहरा बीमार आदमियों का-सा कमज़ोर था और वहाँ उसे ऐसा कोई विशृंखल-सा भाव दिखाई नहीं दिया जो उसके पुंस्त्व के आकर्षण को और भी उभार दिया करता था। लेकिन उसका कद-काठ वही था। खूब ऊँचा, चौड़ी-सी छाती और भारी हाथों वाले लम्बे-लम्बे बाजू। दूसरी ओर उसने अजय को भी अपनी ओर वैसी ही टटोलती-सी दृष्टि से परीक्षण करते हुए पाया। वह सकपका गई। अजय ने कहा, "सचमुच! दो सालों में तुम्हारी तो काया-पलट सी हो गई है। कान्ग्रेचूलेशन्ज नीना! लेकिन वह सम्भल गया। उसने सोचा कि यह सब कह देने से पहले उसे नीना की माँ की मृत्यु पर अपना शोक प्रकट करना चाहिए। वह कहने लगा, "इस उम्र में तुम्हें कितना बड़ा सदमा पहुँचा है। लेकिन समझ नहीं आता मुझे क्या कहकर तुम्हारे दुख को हल्का करना चाहिए!"

इन शब्दों में एक तरह की विवशता थी जिसे नीना को समझ लेने में गलतफहमी नहीं हो सकती थी। इनमें उस ऊँचे चिन्तन का दुरूहपन नहीं था

जो इसी अवसर के लिए अशोक के शब्दों में आ गया था। "अब उतना दुख नहीं करती," नीना ने उत्तर दिया," समय बीतता जाता है और हमारे दुख भरते जाते हैं···।"

"कुछ दुख ऐसे भी होते हैं," अपनी इस बात को और भी प्रभावपूर्ण बनाने के लिए अजय ने अपनी मुद्रा को मनो-व्यथा से खींच लिया, "कि समय बीतता जाता है और वे भरने की बजाए और भी रिसते रहते हैं!" यह कहकर वह सीधी-सी दृष्टि से नीना की ओर देखने लगा।

नीना फुसफुसाते-से स्वर में पूछ बैठी, "क्या ?"

"ज़रा समझो!" अजय कहने लगा, "इन दो सालों में मैंने कितना 'सफर' किया है और यह सब तुम्हारे कारण ही नीना! सिर्फ तुम्हारे कारण! मेरा अपराध सिर्फ़ इतना था कि मैंने एक बहुत ही स्वाभिमानी और डरपोक-सी लड़की को प्यार किया···!"

नीना को लगा कि अजय के शब्दों में हमेशा ही इसी तरह का सम्मोहन रहा करता था। अन्तर सिर्फ इतना है कि पहले वह पीड़ा के भाव में ढलकर नहीं आता था। वह उस सम्मोहन में बहके जाकर अपनी सुध-बुध खो देती थी। लेकिन इस क्षण उसकी मानसिक स्थिति और भी डाँवाडोल-सी थी। विगलित करुणा का आवेग उसके अन्तर को पसीजने लगा था। "नहीं!" वह उत्तर में बोली, "जो तुम कह रहे हो वह बिलकुल सच नहीं है···।"

अजय ने उसे टोक दिया, "तो फिर सच क्या है ?"

नीना कुछ क्षण सोचती रही। फिर उसने कहा, "कोई फायदा नहीं बीती बातों को याद करने का।"

"तुम्हारे लिए वह घटना बीती हुई हो सकती है," अजय ने उत्तर दिया, "लेकिन मैं तो तुम्हें एक क्षण के लिए भी नहीं भूला। क्या यह सच है औरतें वर्तमान में ही रहना पसन्द करती हैं ?"

"मैं समझी नहीं!"

अजय के मोटे से होंठ व्यंग्य की मुस्कराहट से और भी फैल गए। बोला, "मैंने कल क्लब में सुरेश से कहा था कि मेरी ओर से अपनी बहन को बधाई

दे देना। मैं सुन चुका हूँ कि अशोक बहुत ही भला-सा नौजवान है···और बहुत पैसे वाला भी है। ऐसे शानदार से वर्तमान के सामने भला किसी औरत को अपना भद्दा-सा अतीत कैसे अच्छा लग सकता है!"

यह सब नीना के लिए पचा लेना सहज नहीं था। वह भीतर क्रोध से घुटने लगी। बोली, "मेरे पत्र मुझे लौटा दो···बस!"

"बस?"

"हाँ!"

अजय का पहला सिग्रेट समाप्त होने को था। वह उसने हवा में उछाल दिया और फिर एक और सुलगा लिया। "नीना!" वह भारी से स्वर में धीरे-धीरे कहने लगा, "मैंने पहले सोचा था कि पत्र तुम्हें लौटा दूँ, लेकिन अब मैंने अपना निश्चय बदल लिया है।"

"क्यों?"

"अतीत की एक निशानी के तौर पर अगर वे पत्र मेरे पास ही रहें तो क्या बुरा है!"

"नहीं!"

अजय कहता गया, "तुम्हारे लिए वह अतीत ग्लानि का कारण हो सकता है, लेकिन मेरे लिए तो नहीं। हाँ, इतना मुझे तुम्हें अवश्य बता देना चाहिए कि मुझे तुम्हारे हितों का पूरी तरह खयाल है। उन पत्रों के बारे में मैं किसी से भी बात नहीं करूँगा और तुम बिल्कुल निश्चिन्त होकर अपने सुखमय भविष्य के सपने सँजो सकती हो!"

नीना को तत्क्षण एक युक्ति सूझ गई। बोली, "वे पत्र मुझे लौटा दो। मैं तुम्हें दो-ढाई हज़ार रुपए दे दूंगी। मेरे निजी एकाउंट में इतने ही पैसे हैं!"

अजय हँसने लगा। "मुझसे सौदेबाजी करना चाहती हो?" उसने कहा, "बिज़निसमैन की बेटी जो ठहरी! वैसे नीना, मेरी माली हालत बिल्कुल खस्ता हो चुकी है।"

नीना ने मन-ही-मन उसे गाली दी···कितना पाजी है! फिर उसकी ओर तीखी-सा दृष्टि से देखकर उसने कहा, "मैं पाँच हज़ार भी दे दूंगी!"

"आप पाँच हज़ार क्या···पचास हज़ार भी दे सकती हैं डियर नीना," अजय ने हँसते हुए उत्तर दिया, "लेकिन मैं किसी भी कीमत पर इन पत्रों को लौटाना नहीं चाहता।···आओ, किसी कैफे में चलें। हम पूरे दो सालों के वाद मिल रहे हैं!"

"नौ थैंक्स!" और नीना ने सोचा कि उसे फौरन वहाँ से चली जाना चाहिए। उसने उत्कट क्रोध की नज़र से उसकी ओर देखा और पीठ फेरकर चलने लगी।

अजय उसकी पीठ पीछे मुस्कराने लगा। उसने पूछा, "तुम जा रही हो?"

"हाँ!"

"फिर कब भेंट होगी?"

"क्या जरूरत है!"

अजय दो-चार लम्बे से डग भर कर उसके पास चला आया। कहने लगा, "तुम्हारी जानकारी के लिए यह कहूँगा कि मैं अपने भाई रूपलाल के पास नहीं, नरूला होटल में ठहरा हूँ। मैं शाम के पाँच बजे से लेकर सात बजे तक अपने कमरे में ही होता हूँ। और नीना, अगर मेरी किस्मत ने इस वार भी साथ न दिया तब आत्म-हत्या कर लेने के सिवा मेरे पास और कोई रास्ता नहीं रह जाएगा।" यह सब सुना चुकने के बाद वह ठिठक कर खड़ा हो गया। नीना अपनी मुद्रा को कसे हुए अपनी विशिष्ट चाल से चलती रही।

□ बारह

अशोक अपने कमरे में लेटा था जब अजीत वहाँ आया। दरवाज़ा भिड़ा

हुआ था। उसके पास उषा का पोर्ट्रेट था जो उसने रंगों में बनाया था। वह पोर्ट्रेट उसने दरवाजे के बाहर रख दिया ताकि कुछ देर बाद ही वह अशोक को दिखाकर उसे चमत्कृत-सा कर दे। फिर अन्दर आकर उसने कहा, "मुझे पता लग गया था कि तुम आज अपने गाँव से लौट आओगे !"

अशोक का चेहरा उसे वहाँ देखकर कुछ खिल-सा गया। वह बोला, "अच्छा हुआ तुम आ गए ! मैं तुमसे मिलने के लिए बस जाने ही वाला था !"

अजीत ने परिहास किया, "मेरा खयाल है पहले तुम उषा के पास ही गए होते !"

"उसे भी मिलूंगा," अशोक खीझता हुआ बोला, "जितना मज़ा उसे मेरे साथ उलझते रहने में आता है उतना ही मुझे भी···।"

"लेकिन क्यों?"

"मेरा खयाल है हम दोनों अपने-अपने बचपन से ही एक-दूसरे के इतने निकट रहे हैं कि अब हमारे लिए एक-दूसरे के व्यक्तित्व की सारी नवीनता खत्म हो चुकी है।"

अजीत कुछ क्षण उसके उत्तर पर विमर्श करता रहा। फिर उसने कहा, "मेरा खयाल है उषा की ईर्ष्या को भड़काने के लिए तुम्हें किसी और लड़की से प्यार करना चाहिए !"

"नहीं कर सकता !" अशोक बोला, "एक दिन पार्टी के अवसर पर मैं नीना के समीप आकर भटकने लगा था। वह उस समय कितनी आकर्षक-सी लगी थी ! लेकिन मैं सम्भल गया। इसके लिए मुझे किसी तरह का प्रयत्न नहीं करना पड़ा। बस अपने-आप ही वह जो आकर्षण का नशा था उतरता चला गया···।"

अजीत हँसने लगा, "तुम बिल्कुल जड़ हो !" उसने कहा, "तुम्हारे दिल पर रोमाँस दस्तक देता है, लेकिन तुम दरवाजा खोलने के लिए तैयार नहीं !"

अशोक ने उत्तर दिया, "इस दिल को वश में करना सीखना होगा आर्टिस्ट ! आखिर ऐसा क्यों है कि हम किसी भी स्त्री के साथ वासना का सम्बन्ध ही बना लेने की सोचने लगें !"

"स्त्री भी तो यही सोचती है !"

"दोनों ही भटक गए से लगते हैं और आज की सभ्यता ने तो उन्हें और भी जानवर बना दिया है !"

उस क्षण अजीत बहस के मूड में नहीं था। बोला, "तुम्हें इसी वक्त उषा के घर जाना होगा। मैंने उसका पोर्ट्रेट बना लिया है !"

"पोर्ट्रेट ?"

"हाँ-हाँ।"

"क्या कल्पना से ?"

"तुम्हें याद नहीं गाँव में मैंने उसकी स्कैचिंग कर ली थी ?"

"कहाँ है वह पोर्ट्रेट ?"

"तुम्हारे कमरे के बाहर रखा है !"

"अच्छा, दिखाओ तो ?"

"अजीत पेंटिंग लेने के लिए बाहर गया। लेकिन पेंटिंग अब वहाँ नहीं थी। "पेंटिंग गायब है !" दरवाजे पर खड़े-खड़े उसने आश्चर्य के स्वर में कहा।

अशोक समझ गया कि अवश्य ही प्रीती और दीपी की शरारत है। उन्होंने अजीत को उस तस्वीर के साथ घर में प्रविष्ट होते देखा होगा। फिर वे जिज्ञासा-वश उसके पीछे-पीछे चली आई होंगी और तस्वीर को बाहर पड़े देख कर इसे चुपके-से ले भागी होंगी। वह अजीत से मुस्कराते हुए पूछने लगा, "जब तुम अन्दर आए थे तुमने प्रीती और दीपी को देखा था ?"

"हाँ, वे दोनों ज़ीने के पास खड़ी थीं।"

"अच्छा, आओ मेरे साथ !"

जब वे ज़ीना से होकर नीचे आए तो कारीडार के अन्तिम सिरे पर उन्हें प्रीती और दीपी झाँक रही थीं। अशोक दूर से चिल्लाया, "अब भागने की कोशिश मत करना। मैंने तुम्हें देख लिया !" फिर वह अजीत से बोला, "तुम उधर लॉन पर जाकर उनका रास्ता रोको। मैं इधर से जाता हूँ !"

अशोक को अपनी ओर आता हुआ देखकर प्रीती और दीपी माँ के कमरे में दौड़ गईं।

"माँ !" अशोक तेज़-तेज कदमों से चलता हुआ अन्दर आकर बोला, "मैं इन लड़कियों के कान खींचूंगा। देखो न···।" सहसा उसकी नज़र पलंग के पाए के साथ रखे हुए उषा के पोर्ट्रेट पर पड़ी और वह खामोश होकर भौंचक्का-सा उसे देखने लगा।

उस पेंटिंग में उषा की एक अस्पष्ट और धूँधली-सी आकृति भर से अधिक नहीं था। लेकिन रंग इतने शोख थे जैसे बोलते हुए से लग रहे हों।

पारवती प्रीती और दीपी को डाँट रही थी, "तुम बहुत ही शैतान होती जा रही हो। कहूँ अशोक से कि तुम्हारे कान खींचे ?" फिर वह अशोक से कहने लगी, "अशोक, मैंने इन लड़कियों को बहुत कहा कि जहाँ से यह तस्वीर लाई हो वहीं रख दो। ये बस बेवकूफों की तरह खीं-खीं करके हँसती रहीं !"

"ममी, यह उषा दीदी की तस्वीर है !" प्रीती ने ऐसे स्वर में कहा जैसे शिकायत कर रही हो।

"उषा की तस्वीर ?" पारवती अत्यधिक आश्चर्य में उस तस्वीर को घूरने लगी, "इसमें तो मुझे कोई और ही लड़की दिखाई देती है। नहीं, लड़की भी दिखाई नहीं देती, कुछ और ही दिखाई देता है !"

अशोक बोला, "ऐसा न कहो माँ ! अगर अजीत ने सुन लिया तो बस लड़ना शुरू कर देगा !"

"तो यह सचमुच उषा की तस्वीर है ?" जैसे पारवती के लिए विश्वास कर लेना बहुत ही कठिन हो।

"हाँ, एक माडर्न आर्टिस्ट की नज़र से वह ऐसे ही लगती है माँ ! मैं अभी उसे बुलाता हूँ। आप खुद उससे पूछ सकती हैं !"

दरवाजे पर आकर अशोक ने बाहर देखा। अजीत उस समय लॉन पर ही खड़ा था और उसकी मुद्रा से ऐसा लक्षित हो रहा था कि किसी भी क्षण प्रीती और दीपी के दिखाई देने पर वह उन्हें दौड़कर पकड़ लेगा।

पारवती ने पूछ लिया, "अशोक, यह तस्वीर अजीत ने किस मतलब के लिए बनाई है ?"

"उषा की खुशी के लिए !"

"वह उषा को जानता है ?"

"मेरे साथ वह उसके गाँव गया था।"

प्रीती बीच में बोली, "नहीं ममी, यह तस्वीर भैया अपने कमरे में लगाएँगे !"

"हिश !" अशोक ने घूर कर उसे देखा।

पारवती ने कहा, "अगर तस्वीर लगानी ही है तो और अच्छी-सी तस्वीर नहीं मिल सकती ? इसमें तो उस भली लड़की का मुँह है न माथा। यह वापस कर दो।"

अशोक बोला, "माँ, उषा, की तस्वीर से मुझे कोई मतलब नहीं। यह तस्वीर उषा के अपने कमरे के मैंटलपीस के लिए है !" यह कहकर उसने पेंटिंग उठा ली और फिर वह लॉन की ओर चला आया।

"मेरे आर्टिस्ट दोस्त, मुझे तुम्हारी इस पेंटिंग से बिल्कुल निराशा हुई है !" अजीत ने उससे मिलते ही कहा।

"तुम पुरातनवादी और क्या कह सकते हो ?"

"लेकिन मैं जानना चाहूँगा कि इसमें तुमने क्या दिखाने की कोशिश की है ?"

"उषा का बौद्धिक व्यक्तित्व !" अजीत ने तत्क्षण उत्तर दिया।

"खूब !" अशोक हँसने लगा, "मालूम होता है तुम उसके इस व्यक्तित्व से काफी प्रभावित हुए हो ?"

"हाँ, ऐसी ही बात है," अजीत बोला, "इसीलिए तो मैंने उसके व्यक्तित्व के सूक्ष्म तत्व को पकड़ लेने की कोशिश की। उसकी हाड़-माँस की स्थूलता मेरे लिए कोई अर्थ नहीं रखती !"

अशोक कुछ क्षण उस पेंटिंग को ध्यानपूर्वक देखता रहा। उसकी नज़रों के आगे पहले एक इमेज बनता था, फिर एक और इसी तरह फिर और। चेहरे के रँग जैसे आपस में उलझ रहे थे। उस चित्र का अन्तिम प्रभाव मन में अजीब बेचैनी-सी छोड़ देता था। यह अनुभव करते वक्त अशोक को खयाल आया क्या उषा का बौद्धिक व्यक्तित्व ऐसा ही है ? अस्थिर, उलझा हुआ और मन में बेचैनी-सी भर देने वाला ? तब तो अजीत ने निश्चय ही उसके सूक्ष्म तत्व को

पकड़ लिया है। "अजीत !" वह उससे कहने लगा, "तुम्हारी पेंटिंग में और चाहे कुछ न हो एक डरावनी-सी कशिश जरूर है !"

कुछ देर बाद वे टैक्सी लेकर बारहखंभा रोड पर चले आए। भीमू ने शायद उन्हें अन्दर आते देख लिया था। जभी वे बरामदे में आए उसने उन दोनों के लिए ड्राइंग-रूम का दरवाज़ा खोल दिया।

"ठाकुर काका कहाँ हैं ?" अशोक ने पूछ लिया।

"किसी मीटिंग-वीटिंग में गए हैं। नौ-दस बजे से पहले क्या आएँगे !"

"और उषा ?"

"उषा तो अपने कमरे में है। कुछ देर पहले ही सो कर उठी थी। मैंने कहा, शाम के वक्त सोना अच्छा नहीं होता। वह बोली, मुझे रात को काफी देर तक जागना भी तो पड़ता है। छोटे सरकार, समझ नहीं आता वह इतना पढ़-लिख कर क्या करेगी ?"

अशोक मुस्करा कर अपने दोस्त की ओर देखने लगा। वह भी अच्छी तरह जानता था कि भीमू कितना बातूनी है !

भीमू ने कहा, "अभी उसे कमरे में कॉफी देकर आया हूँ। कॉफी तो और भी है। तुम दोनों के लिए ले आऊँ ?"

"अभी ठहरो !" अशोक कॉरीडार की ओर बढ़ा और जाते-जाते अजीत से बोला, "मैं उषा को लेकर अभी आया !"

वह उषा के कमरे की देहलीज़ पर आकर ठिठक गया। उसने देखा उषा स्टडी-टेबल पर झुकी हुई अध्ययन में मग्न है। वह इतनी आत्म-रत थी कि उसे अशोक के कदमों की आवाज़ भी सुनाई नहीं दी। कुछ क्षण बाद अशोक बोला, "मैं अन्दर आ सकता हूँ उषा ?"

आवाज़ सुनकर उषा चौंक-सी पड़ी। कुर्सी को थोड़ा-सा सरका कर उसने सीधी दृष्टि से अशोक की ओर देखा। जब अशोक पहले की तरह मूर्तिवत देहलीज़ पर खड़ा रहा तो वह कुछ सोचकर मुस्कराने लगी। उसने कहा, "अंदर आ जाओ ! वहाँ खड़े-खड़े मेरा मुँह क्यों तक रहे हो ?"

अशोक कमरे के बीचोंबीच आ गया। उत्तर देते वक्त उसका स्वर कुछ

कठिन था, "मुँह तकने वाली बात गलत है। कुछ क्षण पहले तक तो मैंने तुम्हारी अकड़ी हुई पीठ ही देखी थी !"

उषा कुर्सी से उठी और उसके निकट आ गई।" अब नीना के साथ तुम्हारी कैसी निभ रही है ?"

"बहुत अच्छी तरह !" अशोक बहुत बड़ा झूठ तराश कर सिर्फ़ उसे चिढ़ाने की खातिर बोला, "मुझे लगता है वह लड़की मुझे बेहद प्यार करती है और मुझे उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिए !"

"बहुत-बहुत बधाई हो। मैं भी तो तुम्हें एक अरसे से यही कहती आ रही थी।" उषा हँसने लगी। लेकिन उसका हँसी का स्वर कुछ बदला हुआ था।

अशोक अपनी धुन में कहता गया, "वह काफी खूबसूरत है और खूबसूरत होना भी एक असाधारण-सी बात है। क्या हुआ अगर वह ऊँची, इन्टेलेकच्युअल-सी बातें नहीं कर सकती। लेकिन मेरा खयाल है वह अपनी खूबसूरती से किसी के दिल में कवित्वमयी उमंगें जरूर पैदा कर सकती है···!"

उषा जैसे जल-भुन कर कोयला हो गई हो। उत्तर दिया, "अब मैं आशा करूँ कि किसी दिन तुम बहुत बड़े कवि बन जाओगे ?"

"शायद बन जाऊँ ! हर कवि ने एक खूबसूरत स्त्री से ही प्रेरणा ली है !" कुछ क्षण वह उषा के चेहरे की ओर देखता रहा जहाँ तिलमिलाती-सी पीड़ा स्पष्ट हो गई थी। उसने कहा, "तुम्हारे लिए एक खुशखबरी है। अजीत ने तुम्हारा पोर्ट्रेट बनाया है और वह ड्राइंग-रूम में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है !" यह कहकर वह कमरे से बाहर निकल आया और ड्राइंग-रूम की ओर न जाकर दूसरे रास्ते से बंगले के फाटक की ओर जाने लगा।

उषा ड्राइंग-रूम में चली आई। अजीत सोफे से उठने लगा तो वह बोली, "बैठे रहिए अजीत जी। आपकी तबीयत कैसी है ?"

"फाईन !" अजीत की आँखों में चमक थी, "आपका पोर्ट्रेट मैंने बना लिया है।"

"कहाँ है ?"

"उधर दखिए मेंटलपीस पर ?" अजीत ने वह पोर्ट्रेट ड्राइंग-रूम की अंगीठी

पर सजा दिया था ।

उषा कौतूहल से भर अपने पोर्ट्रेट को देखने लगी । "सचमुच ! यह तो बहुत ही अच्छा बना है !" यह कह कर उसने मुस्कराते हुए कृतज्ञता की नज़र से उसकी ओर देखा ।

"थैंक्स !" अजीत बोला ।

"इसे देखकर मुझे लगता है," उषा की दृष्टि अपनी तस्वीर पर जैसे स्थिर-सी हो गई थी, "कि मैं सिर्फ़ अपने को नहीं देख रही हूँ बल्कि कुछ पा रही हूँ··· कुछ अनुभव कर रही हूँ !"

"मैं चाहता था कि आप यथार्थ न होकर कुछ और भी लगें । मैंने आपके व्यक्तित्व के मूल तत्व को पकड़ लेने की कोशिश की है !" इस पर जब उसने प्रश्नपूर्ण-सी दृष्टि से उसकी ओर देखा तो अजीत ने कहा, "मेरा मतलब आप के बौद्धिक व्यक्तित्व से है !"

"आई सी" उषा धीमे से मुस्कराई । वह सचमुच अवाक्-सी रह गई थी । कुछ क्षण बाद ही वह यह कह सकने में समर्थ हुई । "तब तो आपको बहुत परिश्रम करना पड़ा होगा ?"

अजीत ने उत्तर दिया, "मैं माडर्न आर्टिस्ट हूँ । यथार्थ के नए स्वरों को व्यक्त करने के लिए मैंने अपना निजी ईडियम खोज लिया है । इसलिए मुझे कोई पेंटिंग बनाते वक्त विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता ।"

उषा ने अपने बालों पर हाथ फेरा और जैसे उन्मेष में आकर कहने लगी, "मुझे पुराने आर्टिस्टों और लेखकों से यही शिकायत है कि उन्होंने स्त्रियों के साथ न्याय नहीं किया । उन्होंने हमारे बाहरी रूप को ही लिया और इसे सौंदर्य समझ बैठे । हम स्त्रियाँ भी उनके विचारों से ऐसी दबी पड़ी हैं कि सौंदर्य-चेतना से उभरना चाहती ही नहीं !"

यह सुनते वक्त अकस्मात् ही एक विचार अजीत के जहन में बिजली की तरह कौंध गया—क्या इस अत्यंत बौद्धिक और तीखे से नाक-नक्शे वाली युवती के साथ मित्रता हो सकती है ? क्या वे दोनों अपनी-अपनी नैसर्गिक-सी चेतना ऊपर उठकर एक तरह का आत्मिक सम्बन्ध बना सकते हैं ? फिर अगले

क्षण उसने इस प्रश्न का समाधान जैसे अपने भीतर से ही खोज लेना चाहा हो —आत्मिक सम्बन्ध बना क्यों नहीं सकते ? अगर दो पुरुष आपस में मित्र हो सकते हैं तो फिर स्त्री और पुरुष आपस में मित्र क्यों नहीं हो सकते ? उषा के अपनी बात समाप्त करते ही वह बोल पड़ा, "उषा जी, आपके विचार कितने प्रगतिशील हैं ! क्या आप मुझे अपना मित्र बना लेने का सौभाग्य दे सकेंगी ?"

"मैं समझी नहीं !"

"क्या हम दो मित्र नहीं हो सकते ?" अजीत कहने लगा, "इस के लिए हमें अपने को उन संस्कारों से मुक्त कर लेना चाहिए जिन्होंने स्त्री को स्त्रीत्व चेतना से और पुरुष को पुरुषत्व चेतना से उभरने नहीं दिया । वह चेतना··· मेरा मतलब है···हमेशा ही स्त्री और पुरुष के पतन का कारण रही है । ज़रा सोचिए अगर स्त्री और पुरुष में सिर्फ विचारों का ही सम्बन्ध होता···।" इस स्थल पर अजीत ने अपनी मुद्रा को थोड़ा और कस लिया ताकि उसके भीतर का छल···उस आकर्षक प्रबुद्ध युवती का विश्वास पा लेने के निमित्त गढ़ा गया झूठ प्रकट न हो सके । वह कह रहा था···"बिल्कुल विचारों का ही सम्बन्ध होता तो वे कितना ऊपर उठ सकते थे । उन्होंने अपनी कृतित्व-शक्ति का कितना ज्यादा निर्माण कर लिया होता ! दुनिया का चेहरा जो आज बदल रहा है कई सौ बरस पहले ही बदल चुका होता !"

वह यह सब कह रहा था और उषा अपनी जगह बड़ी तेजी के साथ यह सोच रही थी···स्त्री और पुरुष के आपसी सम्बन्ध को कितना वासनापूर्ण बना दिया गया है । वे शादी करते हैं, फिर बच्चे पैदा करते हैं और उम्र-भर अपनी वासना का दुष्परिणाम भुगतते रहते हैं । पति-पत्नी की जिंदगी कितनी निरर्थक··· हास्यास्पद-सी हो जाती है ! दिन-भर झगड़ते रहना···एक-दूसरे से छुटकारा पा लेने की तरकीबें सोचते रहना···और इस तरह रोते-झींकते उनकी जिंदगी समाप्त हो जाती है । उनके सम्बन्धों में कितनी प्रतिहिंसा रहती है ! पति चाहता है कि पत्नी को सन्तानोत्पत्ति के जोखम में डालकर उसके रूप और यौवन को नष्ट कर दे और पत्नी चाहती है कि पति की नाक में नकेल डालकर उसे पालतू जानवर बना डाले । इस सम्बन्ध में कहाँ है वह उदात्त भावना, वह आत्मिक

मिलन का सौंदर्य और विचारशीलता और नियति-मार्ग को प्रशस्त कर देने वाली उर्जस्वित चेतना !···फिर उसे और तरह के विचार आने लगे। क्या यह व्यक्ति इस योग्य है कि उसके समीप आ जाए ? उसकी शक्ल में जरा भी आकर्षण नहीं ! पतला, उभरी हुई हड्डियों वाला चेहरा···गरदन का टेंटुआ आगे निकला हुआ···गरदन की ओर बेढंगेपन से पिचका हुआ सिर ! लेकिन इन विचारों को उसने क्षुद्र और हीन समझ कर परे ठेल दिया और जभी अजीत ने अपनी बात समाप्त की तब वह जैसे यह कह देने के लिए बाध्य हो गई, "अजीत जी, हम दोनों के बीच ऐसा सम्बन्ध बन सकता है। आज से मैं आपको अपना मित्र ही समझूँगी !" फिर एकाएक उसे अशोक का खयाल आया। "अशोक कहाँ चला गया ?" उसके स्वर में विचित्र से डर की ध्वनि थी।

अजीत मन-ही-मन सोचने लगा—अगर अशोक यहाँ बैठा होता तब वह उस तरह का अनुरोध उषा के समक्ष कैसे कर सकता था ? उसने कितने नफीस ढंग से, अपने विचारों से इस युवती को प्रभावित कर लिया। अशोक को चाहे कितना बड़ा धक्का लगे वह जरूर इस युवती से प्रेम करना चाहेगा। उसने देखा उषा खिड़की के सामने जा खड़ी हुई है। कुछ क्षणों तक बाहर देखते रहने के बाद वह वापस आते हुए बोली, "वह लॉन पर भी नहीं ! कितना अजीब आदमी है !"

वह जान गई कि अशोक रूठ कर ही चला गया है। कुछ देर पहले उन दोनों के बीच कितनी गरम-सी झड़प हुई थी !

अजीत ने कहा, "अजीब ही तो है। मुझे यहाँ बैठाकर खुद यहाँ से चम्पत हो गया !"

"आप आराम से बैठिए !" उषा ने अपने अशोक के प्रति आक्रोश को किसी और मनोभाव की प्रतिक्रिया से दबाते हुए कहा, "अब तो हम दोनों मित्र बन गए हैं। आप शाम को जब भी आना चाहें, बिला रोक-टोक यहाँ आ सकते हैं। हमारे विचारों में काफी समानता है और आपसे विचार-विनिमय करके मुझे सचमुच खुशी होगी !"

"आप मुझे कितना आदर दे रही हैं। आर्टिस्ट आम तौर पर निराशावादी-

सा जीव्र होता है, लेकिन अब मेरे भाग्य पर किसी भी आर्टिस्ट को ईर्ष्या हो सकती है !" इतने शानदार से शब्द कह कर अजीत मुस्कराती-सी नज़र से उषा की ओर देखने लगा।

इस भेंट के बाद वह उषा के पास बिलानागा आने लगा। वे दोनों ड्राइंग-रूम में जा बैठते। उषा चाय या कॉफी का पूरा सेट मंगवा लेती और वे इसकी हल्की-हल्की चुस्कियाँ लेते हुए कला, दर्शन और विज्ञान की बारीकियाँ समझ लेने में उलझे रहते। सिर्फ चार-पाँच दिनों में ही उनके आपसी सम्बन्ध इस सीमा तक भी खुल गए कि वे सैर करने के निमित्त कनाटप्लेस चले जाएँ और वहाँ के किसी रैस्तराँ में बैठकर मनोरंजन भी प्राप्त कर लें। अजीत का व्यवहार भद्र यानी मैत्रीपूर्ण ही बना रहा था और उसके भीतर जब-जब भी कोई उच्छृंखल सा भाव मचल उठता तब वह इसे अपनी मुद्रा में व्यक्त न होने देता।

लेकिन उषा को अशोक की अनुपस्थिति बहुत ही ज्यादा खलने लगी थी। यह उसे पता था कि वह शहर में ही है और वह उसे फोन भी कर सकती थी। लेकिन उसका संकोच जो स्वाभिमान के कारण ही था उसे यह करने नहीं देता था। वह सोचती···क्या जरूरत है ? अगर वह मेरे व्यंग्य से चिढ़ उठा है तो उसने भी मुझे अपमानित कर देने में अपनी तरफ से कोई कसर नहीं रहने दी। मेरे सामने ही उसने नीना की तारीफ की कि वह काफी खूबसूरत है और खूबसूरत होना भी एक असाधारण-सी बात है।···और यह भी कि क्या हुआ यदि वह ऊँची इन्टेलेकच्युअल बातें नहीं कर सकती !···यह कहकर सचमुच ही उसने मेरे व्यक्तित्व को मिट्टी में मिला दिया और वह भी एक ऐसी लड़की के लिए जो नए-नए फैशन और रूप-प्रसाधनों के आगे सोच ही नहीं सकती।···यह सब सोचते हुए उसे तीखी अन्तर्चुभन-सी होने लगती। वह चाहती थी कि अशोक से भेंट होने पर वह अपने अपमान का बदला उससे ले और ऐसी खरी-खरी सुनाए कि उसके होंठों से आत्मरक्षावत् एक शब्द भी न निकल सके।

एक दिन उसने अपने डैडी से सुना कि अशोक कांग्रेस के वामक्षीय दल में सम्मिलित हो गया है। यह बताते वक्त उसका चेहरा मुस्कराहट से खिल उठा था।

उषा की जो प्रतिक्रिया हुई वह यह थी, ''कांग्रेस तो ग्राज वड़ी बदनाम-सी संस्था है !''

''लेकिन उषी,'' ठाकुर बोला, ''ग्रगर ग्रशोक जैसे युवक इसमें ग्रा जाएं तो इस में फैला हुग्रा भ्रष्टाचार दूर हो सकता है। मैं तो उसे कहूँगा कि जब ग्रगले वर्ष इलेक्शन हो तो वह लोकसभा के लिए उम्मीदवार बने। मुझसे जितनी भी मदद हो सकेगी वह मैं उसे दूंगा। वह जरूर सफल हो सकता है।'' फिर वह कुछ ग्रौर सोचने लगा। ''उषी,'' वह कहने लगा, ''यह ठीक है ग्राज पूंजीपति कांग्रेस पर छाने लगे हैं, लेकिन हमारी सत्ता जैसे भी हो, थोड़ी-बहुत बनी रहनी चाहिए। हमारी जड़ें गाँव में हैं ग्रौर भारत माता, जैसा कि बापू कहा करते थे, गाँव में हैं।''

शाम को उषा ग्रौर ग्रजीत कनाटप्लेस में टहल रहे थे। उषा को बरबस ही ग्रशोक की याद ग्राने लगती ग्रौर तब वह विचलित-सी हो जाती। उसने ग्रजीत से पूछ लिया, ''ग्रशोक तो ग्रापको मिलता रहता होगा ?''

''परसों शाम मैं उसके पास गया था ! ग्रब वह घर से बहुत ही कम बाहर निकलता है।''

''क्यों ?''

''कहता था प्रीती ग्रौर दीपी की परीक्षा शुरू होने वाली है इसलिए उन्हें पढ़ाता-लिखाता हूँ।''

उषा ने मन-ही-मन सोचा—वह सिर्फ बन रहा है। कारण कुछ ग्रौर है··· बहकी हुई भावुकता ! फिर ग्रजीत की प्रतिक्रिया जानने के लिए उसने पूछ लिया, ''ग्रापको मालूम है ग्रशोक ने कांग्रेस ज्वाइन कर ली है ?''

''वह ग्रमीर ग्रादमी है,'' ग्रजीत ने उत्तर दिया, ''ग्रमीर होने के साथ-साथ वह प्रगतिशील होने का भी दम्भ करता है। कांग्रेस में ग्राकर ग्रपने वर्ग हितों की रक्षा करने का उसे ग्रवसर मिलता रहेगा !'' इन शब्दों में ग्रजीत के ग्रन्तर की किसी विशेष कारण से उपजी हुई उपेक्षा भी घुली हुई थी।

यह सुनते ही उषा क्षुब्ध हुए बिना न रह सकी। ग्रजीत के मुँह से ग्रशोक के बारे में इतनी तीखी व्यंग्योक्ति की वह ग्राशा नहीं करती थी। क्योंकि पिछले

कुछ दिनों में उन दोनों की बातचीत में जब-जब भी अशोक का प्रसंग आया था तब अजीत ने उसके लिए सम्मानपूर्ण उद्‌गार ही प्रकट किए थे। वह समझ नहीं सकी कि अजीत के बदले हुए व्यवहार का क्या कारण हो सकता है! उसने कह दिया, "मेरा खयाल है अजीत जी, आप अपने मित्र के प्रति न्याय नहीं कर रहे?"

अजीत ने आँखें पूरी तरह उघाड़ कर उषा को देख लिया। ऐसा करते वक्त उसकी मुखमुद्रा कुछ भद्दी ही लगने लगती थी। वह बोला, "मेरा खयाल है आप भी आज तक उसे दम्भी ही समझती रही हैं!"

"मेरी बात और है!"

यह सुनकर अजीत कुछ सोचते हुए मुस्कराने लगा। उसे लगा कि यह अपने को प्रबुद्ध समझने वाली युवती भी अपनी जगह कम दम्भी नहीं और यह चाहे कुछ भी कहे, इसका अपने को निजी संस्कारों से मुक्त कर लेना एक बहुत बड़ा झूठ हो सकता है। वे जिस सम्बन्ध को बनाकर आपस में मिलने लगे थे उसके झूठ को भी वह धीरे-धीरे समझने लगा था। यह मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कितना उबा देने वाला था! सिर्फ बातें करते रहने से उसकी तसकीन नहीं होती थी। उसके भीतर का बहुत कुछ अतृप्त…उपेक्षित रह जाता था और जब वह दरियागंज की बस्ती में अपने एकाकी कमरे में लौटता था तब जितना क्रोध उसे अपने पर आता था उतना ही उषा पर आने लगता था। यह विचार बगूले की तरह उसके अन्तर में चक्कर काटता हुआ उठता कि उषा के बौद्धिक से व्यक्तित्व में जरा भी आकर्षण नहीं। उसे उसके साथ वैसा ही प्रेम करना चाहिए जैसा एक पुरुष एक स्त्री से करना चाहेगा…!

कुछ देर पहले वे दोनों टैक्सी में ही कनाटप्लेस आए थे। वे पिछली सीट पर साथ-साथ ही बैठे थे। फिर भी दोनों के बीच कम-अज-कम आध फुट की दूरी अवश्य ही बनी रही थी। असल में उषा ने अपने को कुछ ज्यादा सुकेड़ लिया था। इस दूरी के बावजूद अजीत उस उत्तेजक-सी उष्णता को महसूस कर रहा था जो उषा के सुन्दर, स्वस्थ शरीर से निकल रही थी और तब उसे विचार आया था कि यह उसकी सिर्फ मूर्खता ही थी जब उसने उषा से यह

कहा था कि उन्हें परंपरागत चेतना से ऊपर उठकर एक मैत्रीपूर्ण आत्मिक संबंध बना लेना चाहिए।

वे चाय पीने के निमित्त एक रैस्तराँ में आ बैठे। अभी कुछ मिनट ही हुए थे कि अशोक वहाँ आया। सर्वप्रथम उषा ने ही उसे अन्दर आते हुए देखा और वह अस्थिर-सी होकर अजीत से बोली, "अशोक आया है !"

"कहाँ है ?" यह पूछकर अजीत ने उषा की नजरों का अनुसरण करते हुए रैस्तराँ के प्रवेश-द्वार की ओर देखा। अशोक कुछ कदम अन्दर आकर ठिठक-सा गया था और उसकी मुद्रा से ऐसा लगता जैसे वह उस मद्धिम-सी रोशनी वाले भीड़-भरे हॉल में अपने लिए कोई सीट तलाश कर लेने की कोशिश में हो। फिर उसकी नज़रें उस ओर उठीं जिधर अजीत और उषा बैठे थे। उषा कुर्सी से उठकर खड़ी हो गई ताकि अशोक उसे पहचान कर उनकी ओर चला आए। जब अशोक उसे देख लेने पर भी ठीक-ठीक निश्चय न कर सका तो उषा ने हाथ का इशारा करके उसे अपने वहाँ होने का प्रमाण दिया।

निकट आने पर अशोक ने देखा कि उषा के साथ अजीत भी है। एकाएक स्तम्भित हो जाने का भाव उसकी मुद्रा को सम्पूर्णतया ढाँप लेना चाहता था, लेकिन उसने अपने को सँभाल लिया और पहले उषा और फिर अजीत से 'हैलो-हैलो' कहते वक्त उसके स्वर में साधारण-से विस्मय की ध्वनि के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

अजीत ने उलझती-सी दृष्टि से अपने मित्र की ओर देखा। वह अपने भीतर इस तरह सिमटने लगा जैसे कोई केंचुआ मिट्टी की परतों में। सचमुच वह अशोक के आकस्मिक रूप से आ जाने पर ज़रा भी खुश नहीं था। उसने सुना यह कहते वक्त उषा के होंठों से धीमी-सी हँसी फूट निकली है, "अशोक, थोड़ी देर पहले हम तुम्हारे बारे में ही बातें कर रहे थे !"

"क्या ?"

"कि तुम कांग्रेसी हो गए हो !"

अशोक ऐसे स्वर में बोला जैसे सफाई देना चाह रहा हो, "लेकिन अजीत को तो मैंने परसों ही बता दिया था।"

अजीत को लगा कि क्षणों की कसती हुई गाँठ एकाएक खुल पड़ी हो। बोला, "मैंने अपने उत्तर में जो कहा था वह भी तुम्हें याद होगा कि तुम अपने वर्ग-हितों की रक्षा कांग्रेस में रहकर बहुत अच्छी तरह कर सकते हो?"

"मेरे ऐसे कोई वर्गहित नहीं हैं," अशोक ने कहा, "मैं किसी-न-किसी तरह अपनी जिन्दगी को सार्थक कर लेना चाहता हूँ।"

उषा टकटकी लगाए उसको देखती रही थी। अशोक अपने खादी के पहरावे में भी खूब फब रहा था और उसके चेहरे में वह जो अवसाद की···कदाचित् उसके अन्तर्द्वन्द्व की छाया डोलती-सी रहती थी उस समय वहाँ लक्षित नहीं होती थी। यह सब उसके घनिष्ठ परिचय से पैदा हुई उपेक्षा और व्यंग्य के यथार्थ से कितना दूर था। कितने विचित्र-से परिवर्त्तन अशोक के व्यक्तित्व में आने लगे थे और वह एक पहेली की तरह अबूझ···सिर्फ़ अबूझ ही नहीं आकर्षक भी लगने लगा था। कदाचित् उषा ने अपने अवचेतन में यही चाहा था और यथार्थ का यह नया बोध उसे विस्मय की लहर में डूबने-उतारने लगा।

अशोक इस प्रतीक्षा में था कि उषा उसके शब्दों पर कोई-न-कोई चुभ जाने वाली व्यंग्योक्ति अवश्य कह देगी। लेकिन वह मुस्कराती रही। यह मुस्कराहट उसे अवास्तविक-सी लगी और वह इसे पचा लेने में असमर्थ था, जिस तरह उसके साथ अजीत की उपस्थिति को।···क्या इन दोनों के आपसी सम्बन्ध इस सीमा तक खुल गए हैं कि वे निस्संकोच वाहर आ-जा सकें और किसी रेस्तराँ में भी चले आएँ? यह प्रश्न प्रगाढ धुएँ के पुंज-सा उसकी अन्तश्चेतना पर छाने लगा और वह प्रयत्नपूर्वक ही अपने को रोके हुए था। यह सब क्या है और किस लिए? मन-ही-मन कुलबुलाते हुए उसने सोचा और वह चाहता था कि वहाँ से किसी तरह उठकर चला जाए।

लेकिन ऐसा करने में अजीत ने ही पहल की। आसपास कुछ क्षण देखते रहने के वाद उसने एक दूर की मेज़ पर वैठे हुए अपनी किसी परिचित को पहचान लिया और तत्क्षण ही वह कुरसी छोड़कर उठ खड़ा हुआ।" एक्स-क्यूज़ मी! मुझे एक आदमी से मिलना है!" वह जाते-जाते बोला।

अशोक और उषा अब अकेले थे। सुअवसर पाकर उषा ने अशोक से

शिकायत के स्वर में कहा, "अशोक, कई दिनों से तुम दिखाई नहीं दिए ! तुम्हें अपनी सफाई में कुछ कहना है ?"

"जी नहीं ! मुझे अपनी सफाई में कुछ नहीं कहना है !" अशोक का स्वर तनावपूर्ण था ।

"क्यों ?"

अशोक ईर्ष्या के जिस मनोभाव को दबाए मन-ही-मन कुढ़-सा रहा था एकाएक फट पड़ा, "उषा, तुम्हारे अन्दर एक बहुत ही समझदार स्त्री होने का इस कद्र घमण्ड आ चुका है कि मेरा खयाल है कि किसी दिन तुम जरूर भटक जाओगी !"

"मैं समझी नहीं !"

"तुम कभी नहीं समझ सकोगी ! मैं पूछता हूँ कि तुम्हारा अजीत के साथ क्या है कि तुम उसके साथ ऐसी जगहों पर भी आने लगी हो ?"

"अशोक," उषा ने कठिन-से स्वर में उत्तर दिया, "तुम बिल्कुल पुरातन-पंथी···संकीर्ण से विचारों से आदमी हो !" उसका चेहरा अपमान की चेतना से सचमुच सुर्ख हो गया था ।

"मैं तुम्हारे हित के लिए ही कह रहा हूँ उषी ?"

"मैं अपना हित-अहित स्वयं समझ सकती हूँ । मैंने तुम्हें अपने शिक्षक के रूप में कब स्वीकार किया है ? उषा के स्वर में अस्वाभाविक-सी खीझ थी क्योंकि कुछ देर पहले अजीत के समक्ष उसके सम्मान की रक्षा भी तो की थी । ···मेरे ईश्वर ! वह मन-ही-मन सोचने लगी—इस व्यक्ति में परिपक्व ज्ञान है ही नहीं । मेरे बारे में ऐसे ही ऊटपटाँग सोचने लगा है !

बात यहाँ तक बढ़ जाएगी—इसका अशोक को पता नहीं था । वह इस घिनौनी परिस्थिति की कभी कल्पना नहीं कर सकता था । उसे अजीत पर भी क्रोध आया जो सब कुछ जानते हुए भी उषा को अपने व्यक्तित्व से प्रभावित कर लेने की इच्छा से इतना आगे बढ़ आया है । यह विश्वासघात नहीं तो और क्या है !···मैं तो उसे आज तक अपना मित्र ही समझता रहा हूँ ।···ये विचार एक-एक करके उसे आने लगे और उसका भीतरी क्रोध सूई की नोक-सा उसे

चुभता हुआ महसूस हुआ।

उषा चाह रही थी कि ऊँचे से स्वर में हँसना शुरू कर दे। इस तरह हँसकर उसे अपनी खीझ से छुटकारा मिल सकता था। उसने अशोक की ओर देखा··· सोच में डूबा हुआ और साफ धुले हुए खादी के वस्त्रों में एक और ही तरह के आकर्षण से आवृत ! उसकी नेहरू-स्टाइल की जैकेट भी इस आकर्षण को और भी प्रखर कर रही थी। उसके आक्रोश को डुबोती हुई एक अजीब-सी अनुभूति तत्काल ही उषा को हुई—उसके शैशव के दिनों की एक आकृति उसकी अन्तश्चेतना पर झलकने लगी। तब उसके डैडी बिल्कुल ऐसे ही दिखाई दिया करते थे। उन दिनों जब अंग्रेज़ी हकूमत के विरोध में उठा हुआ राजनीतिक संघर्ष खूब ज़ोरों पर था उसके डैडी कितने उत्तेजित-से रहते थे और वे कई बार अपने में खोए हुए न मालूम क्या-क्या सोचते रहते थे। डैडी की उन दिनों की प्रौढ अवस्था की शक्ल में और अशोक की वर्तमान गम्भीरता के आवरण में ढंपी रहने वाली शक्ल में कितनी समानता दिखाई दे रही थी !

यह अनुभूति बड़ी अजीब थी और उसके अन्तर में नर्म-नर्म गुदगुदाहट-सी होने लगी। कुछ क्षण बाद उसके दिल में अशोक के प्रति भयमिश्रित आदर का-सा भाव छाने लगा।

उसने कहा, "हम ऐसे ही झगड़ा करने लगे ! तुम्हें चाय-कॉफी का तो कुछ पूछा ही नहीं !"

"मैं अब जाऊँगा !" कहकर अशोक कुरसी से उठने लगा।

"इतनी जल्दी ? अजीत क्या सोचेगा ?"

"वह जो चाहे सोच ले," अशोक उखड़े-से स्वर में कहने लगा, "हर आदमी को सोचने का अधिकार है। लेकिन जाने से पहले मैं इतना जरूर कहूँगा कि तुम्हें अपनी मर्यादा में ही रहना चाहिए। आधुनिकता के मोह में पड़ कर लोग अकसर भटक जाते हैं !"

उसने उषा का उत्तर सुन लेने की जरूरत नहीं समझी और वहाँ से खिसक गया। उषा की मुद्रा क्रोध से फिर जकड़-सी गई थी। इस बार यह क्रोध सतही न होकर वास्तविक था और उसके मर्माहत-से अन्तर को करोंचता हुआ उठा

था। उस क्रोध में दुख की टीस भी समाहित थी···। "वेवकूफ !" उसने उसे अपनी नासिकाओं को फुलाकर गाली दी जब वह हाल की भीड़ में से नज़रें नीची किए पानी पर डोलती-सी किश्ती सा दरवाजे की ओर बढ़ रहा था। उषा छटपटाती हुई सोचने लगी···वह कितना नीच है ! कितना क्षुद्र ! अनजाने ही मुझ पर सन्देह करने लगा और यह समझता ही नहीं कि भला मेरे जैसी युवती अजीत की ओर क्योंकर आकर्षित होना चाहेगी ?···इतनी गई-गुजरी नहीं ! मैं तो ऐसा कभी सोच ही नहीं सकती ! लेकिन यह बात उसके दिमाग में कैसे आ गई कि मैं भटक जाऊँगी या भटक सकती हूँ। ऐसा अपमानजनक लांछन लगाते हुए उसकी जबान कुंठित क्यों न हो गई ? इतने वरसों में वह मुझे बस यही समझ सका है। मैं अपनी चारित्रिक महानता से गिर ऐसा नीचता का काम कर सकती हूँ···?

यह सोचते वक्त सहज ही उसकी आँखों में आँसू भरने लगे। आज तक उसने स्त्रियों की रो देने की आदत का उपहास उड़ाया था। और वह स्वयं चाहे कैसी भी कठिन परिस्थिति में रही हो उसे रो पड़ना निहायत ही वेहूदा और मूर्खतापूर्ण ही लगा था। लेकिन अब वह जैसे विवश थी। आँसू उसकी आँखों में भर रहे थे और इस विचित्र-से अनुभव के हाथों उसने अपने को जैसे सौंप दिया था।

□ तेरह

अशोक और परिवार के अन्य सदस्य खाने के कमरे में बैठे नाश्ता कर रहे थे। चाय की प्याली होंठों से लगाए अशोक उस दिन के अखबार में छपे ठाकुर देवीसिंह के वक्तव्य को पढ़ रहा था। वक्तव्य में ठाकुर ने ज़ोरदार शब्दों में

यह बात कही थी कि सरकार कृषि-सम्बन्धी योजना पर उतना ध्यान नहीं दे रही जितना उद्योगीकरण पर और यदि स्थिति इसी तरह ही बिगड़ती चली गई तो वह दिन दूर नहीं जब हमारे राष्ट्रीय कोष का अधिकाँश बाहर के देशों से अन्न मँगवाने पर खर्च होने लगेगा। औद्योगीकरण के सम्बन्ध में उसने सरकार को चेतावनी-सी देते हुए कहा था कि यदि निजी क्षेत्रों में व्यापार और उद्योग पर अंकुश न रखा गया तो इजारेदारी के चंगुल में देश की आर्थिक व्यवस्था दिनोंदिन फंसती चली जाएगी···।

ये सब वही विचार थे जो कुछ दिन पहले ठाकुर और उसके बीच बहस के रूप में उठे थे। काफी हद तक उसने ठाकुर की गाँधीवादी विचारधारा को एक नया मोड़ दिया था। ठाकुर का स्नेह उसके प्रति और भी सरस और भी सहज होने लगा था।

लेकिन तत्क्षण उषा का खयाल आने पर उसे अपने भीतर कुछ टूटता-सा अनुभव हुआ। परसों शाम उषा और अजीत को रैस्तराँ में बैठे देखा था, लेकिन उस क्षण से अब तक वह अपने मन को स्थिर कर लेने में विफल ही रहा था। उसका चेहरा रोगी व्यक्ति की तरह निष्प्रभ-सा लगता था और उसकी आँखों के फूले हुए डोरे इस बात का प्रमाण थे कि उसे गत रातों में ठीक तरह नींद नहीं आई।

उसकी मौन, सोच में डूबी हुई मुद्रा से सचेत होकर पारवती ने पूछ लिया "अशोक, क्या सोच रहे हो?"

"योंही कुछ पढ़ रहा था।" उत्तर देकर अशोक ने चाय की दो-एक चुस्कियाँ लीं।

"ममी, हम स्कूल जा रही हैं!" यह दीपी ने कहा और कुर्सी से उठ बैठी और उसके साथ प्रीती भी उठ खड़ी हुई।

जब वे दोनों कमरे से बाहर चली गईं तो राव कहने लगा, "कई दिनों से देख रहा हूँ कि बजाज ने मेरा जैसे बायकाट-सा कर दिया लगता है। बिज़निस के कामों में अब वह मुझसे उतना सलाह-मशवरा नहीं करना चाहता जितना पहले किया करता था। मुझे लगता है हमारी पार्टनरशिप बस कुछ दिनों की

मेहमान है !"

अशोक ने नजरों उठाकर अपने पिता की ओर देखा। राव भी उसकी ओर ही देख रहा था। दोनों की नज़रों में प्रश्न से टँगे हुए थे। अपनी जगह अशोक यह सब समझ गया, लेकिन उसने चुप्पी खींच लेना ही उचित समझा।

राव बोला, "बीसों बार उसने मुझसे कहा कि अशोक के साथ उसकी लड़की की सगाई की कोई तारीख पक्की कर दी जाए, लेकिन कुछ हफ्तों से मैं यह टालता रहा हूँ। अगर यह रिश्ता टूट जाता है तो मेरा खयाल नहीं यह पार्टनरशिप बनी रह सके और पार्टनरशिप न रहने का मतलब होगा मेरे लिए तबाही, परेशानी और अपमान।"

"लेकिन डैडी," अशोक ने उत्तर दिया, "एक दिन तो आप कहते थे सिर्फ बदकिस्मती की वजह से आप इन लोगों के चंगुल में फँस गए हैं।"

"मेरा खयाल है यह मैंने नशे की हालत में ही कहा होगा।"

"तब यह और भी सच होना चाहिए," अशोक कहने लगा, "क्योंकि नशे की हालत में, अवचेतन में सोची हुई बातें ऊपर आ जाती हैं।"

"मुझे इसका नहीं पता," राव बोला, "लेकिन यह सच है कि अगर मुझे उस घाघ आदमी की पार्टनरशिप छोड़कर अपने ही पाँव पर खड़े होने के लिए मजबूर होना पड़ा तो मेरा खयाल नहीं कि मैं ज्यादा देर के लिए खड़ा रह सकूँ। पहले तो यही आदमी ही मुझे खदेड़ देने की कोशिश करेगा। यह बिज़निस की दुनिया और ही दुनिया है। यहाँ कोई किसी का नहीं। पैसा ही सब-कुछ है !"

अशोक को अनुभव हुआ कि उसके निश्चय को प्रभावित करने के निमित्त ही यह सब कुछ कहा जा रहा है। इन साधारण-से तथ्यों के भीतर जो निगूढ अभिप्राय छिपा हुआ है वह इसे समझ सकता है। एक प्रश्न बगूले की तरह चक्कर खाता हुआ उसके जहन में उठा। क्या मुझे उनके बिजनिस को संभावित खतरे से बचाने की खातिर नीना से शादी कर लेनी चाहिए ?···यह प्रश्न उसे बहुत ही बेहूदा-सा लगा। फिर उसने पिता को माँ से यह कहते हुए सुना, "पारवती, तुम चुप क्यों हो ? तुम भी कुछ कहो !"

"मैं नहीं समझती बजाज की लड़की से शादी करके अशोक सुखी रह सकता है!"

"क्यों? क्यों?"

उत्तर देने से पहले पारवता ने अशोक की ओर देख लिया। उसने कहा, "नीना इसे पसंद नहीं।"

अशोक के मन में हुआ कि कह दे कि यह झूठ है। जो लड़की उसे इतना मानती रही है, उसके लिए माँ के होंठों से निकले हुए शब्द किसी तरह भी उपयुक्त नहीं। अगर वह स्वयं उसके प्यार के प्रत्युत्तर में प्यार नहीं दे सका तो इसका यह मतलब नहीं कि वह उसका तिरस्कार करने लगे। उसी क्षण एक तिलमिलाती-सी अन्तर्जलन उसे हुई और वह कुर्सी से उठ बैठा।

"क्यों? कहाँ चले?" राव ने पूछा। वह नहीं चाहता था कि अशोक के मुँह से कोई निश्चित-सा उत्तर सुने बगैर उसे वहाँ से उठ जाने दे।

अशोक ने उत्तर दिया, "मैंने नाश्ता तो कर लिया!"

अगले क्षण राव उत्तेजित-सा दिखाई देने लगा। बोला, "हमारी सलामती या बरबादी तुम्हारे हाथ में है अशोक! ज़रा सोचो!"

बिल्कुल स्तब्ध-सा होकर अशोक अपने पिता की ओर देखने लगा। पिता के आशय को समझ लेने में अब किसी तरह की उलझन नहीं थी और उस आशय का यथार्थ बोध उसे कितना घिनौना-सा लगा। जैसे खटाक-सी आवाज़ के साथ व्यापार के शिकंजे का मुँह उसके सामने खुल गया हो जो उसे अपने में कस लेना चाहता था। कुछ क्षण पहले उसने अपने भीतर नीना के प्रति सहृदय-सी भावना को पनपते महसूस किया था, लेकिन परिस्थिति के इस झटके ने उसकी सहृदयता के उन्मेष को फीका कर दिया।

राव उतावला-सा होकर उसकी ओर देख रहा था। अशोक समझ गया कि वे उसके उत्तर की प्रतीक्षा में हैं। उसने कहा, "डैडी, क्या आप अपने को इतना कमज़ोर समझते हैं कि बजाज की मदद के बिना बिल्कुल खड़े नहीं हो सकते? लेकिन मैं आपसे यह भी कहूँगा कि इस उम्र में आप क्यों बिज़निस के

झमेले में पड़े रहना चाहते हैं ? आपको डायब्टीज़ भी है। आपको आराम करना चाहिए !"

"फिर तुम मेरी जगह ले लो," राव अपने उत्तर में बोला, "मुझे सचमुच आराम की जरूरत है। मैं शिमला या मसूरी में अपने मतलब की कोई जगह ले कर टिक जाना चाहता हूँ !"

"आपका दूसरा सुझाव बहुत ही अच्छा है डैडी।"

"और पहला सुझाव ?" राव ने पूछा।

"जो थोड़ा-बहुत खेती का काम मैंने शुरू किया है मेरे लिए वही बहुत है," अशोक कहने लगा, "मेरे जो आदर्श हैं वे व्यापारी जीवन के साथ मेल नहीं खाते। यह मुझे मंजूर होगा कि इस जिन्दगी में मुझे कभी दौलत न मिले लेकिन मैं अपने आदर्शों को कभी छोड़ नहीं सकता !"

यह कह चुकने पर वह इस प्रतीक्षा में था कि पिता विरोध में अवश्य कुछ कहेंगे। लेकिन उसने पिता को विस्मित भाव से धीमे-धीमे मुस्कराती हुई मुद्रा में अपनी ओर देखते हुए पाया। यह स्वीकृति है या कुछ और···वह मन-ही-मन अनिश्चित-सा सोचने लगा। पहले अवसरों पर, उसे खयाल आया, उसके इस तरह के उद्‌गारों को सुनकर पिता क्रोध से कितना भड़क उठा करते थे।

अकस्मात् राव के होंठों से निकला, "आज मुझे ड्रिंक छोड़े हुए पूरे दो महीने हो गए।"

"तुम्हें अफसोस नहीं होना चाहिए," पारवती ने कह दिया, "तुम्हें अपनी सेहत पहले से बेहतर नहीं लगती ? अशोक से भी पूछ लो !"

"हाँ, यह ठीक है माँ।"

उनकी बातचीत में आत्मीयता के रंग का भर उठना अशोक को अच्छा ही लगा। वह एक तरह से अपना नाश्ता खत्म कर बैठा था, लेकिन उसने पनीर के पकौड़ों वाली प्लेट से एक पकौड़ा उठा लिया और इसे थोड़ा-थोड़ा कुतर कर खाने लगा। वह वहाँ कुछ मिनट और रुककर इस नए रंग का लुत्फ लेना चाहता था।

शाम के चार सवा-चार बजे वह दरियागंज में था। यहीं पर उसके दोस्त

अजीत का कला-स्टुडियो है। एक बड़ा-सा कमरा उसने किराए पर ले रखा है जिसमें उसने पार्टीशन डाल ली है। पार्टीशन की एक ओर उसने अपना बैड-रूम बना लिया है और दूसरी ओर उसका ईज़ल व पेंटिंग में काम आने वाला दूसरा सामान पड़ा रहता है। सारे कमरे में एक अजीब-सा बिखराव और अव्यवस्था है जिसे अजीत अपने कलात्मक जीवन के लिए स्वाभाविक ही समझता है।

कमरे की खिड़की जिस ओर खुलती है उस ओर फैंज बाज़ार है। नई और पुरानी दिल्ली का यह बाज़ार अपने दिन-भर मचलते रहने वाले ट्रैफिक के शोर और फुटपाथ पर लपकती-रेंगती भीड़ के कारण अजीत के कलात्मक जीवन का भी कम महत्त्वपूर्ण अंग नहीं! इस सब को देखते-बूझते हुए उसके अन्तर में तरह-तरह की अनुभूतियाँ होने लगती थीं जिन्हें वह बाद में अपने कैनवेस पर उतार लिया करता था। उसे इस बात का गर्व है कि पश्चिम की कला-शैलियाँ ही उसे अधिक प्रभावित करती हैं जिनमें आज का अस्त-व्यस्त, उद्भ्रांत-सा जीवन अपनी सभी विडम्बनाओं और विकृतियों के साथ व्यक्त हो उठा है। वह यह भी समझता था कि आज का युग हर किसी आर्टिस्ट से सौन्दर्य-बोध की नहीं, व्यंग्य की माँग करता है···ऐसा व्यंग्य जिसमें लोग अपना विकृत और उपहास-जनक-सा चेहरा देखें और तिलमिला उठें।

वह उस समय खिड़की में ही खड़ा था जब अशोक ने उसे गली के नाके से देखा। कुछ मिनट बाद वह उसके कमरे को जाने वाली सीढ़ियाँ चढ़ रहा था।

उसके अन्दर कदम रखने पर अजीत खिड़की से पलट कर उसकी ओर आते हुए बोला, "तुम आ गए! मैंने तुम्हारी कल भी प्रतीक्षा की थी!"

अशोक यह जान लेने के लिए अजीत के पास आया था कि उषा के प्रति वह किस तरह की भावना संजोए हुए है। इस जानकारी से उसने किसी हद तक अपने अन्तर में धीमी आँच-सी सुलगती हुई अशान्ति को मेट लिया होता।

अजीत के शब्दों को सुनकर वह थोड़ा अचकचा-सा गया। वह समझ गया कि अजीत ने परसों रात वाली घटना के प्रसंग में ही यह सब कहा है और उसे पता लग गया है कि वह उसके पास स्पष्टीकरण माँगने ले लिए ही आया है।

उसने कहा, "मैं कल भी श्रा सकता था लेकिन खैर...।"

यह सुनकर अजीत हँसने लगा। और दिनों की अपेक्षा उस हँसी में अस्वाभाविक-सी तलखी घुली हुई थी।

अशोक अपने मित्र से इस तरह के दुर्व्यवहार की आशा नहीं करता था। कदाचित् उसके अवचेतन में यह विश्वास बैठा हुआ था कि अजीत उसका सामना करते ही अपने अपराध की चेतना से निष्प्रभ-सा होकर एक शब्द भी बोल नहीं सकेगा। लेकिन उसकी चुनौती-भरी मुद्रा को तो देखकर लगता था जैसे वह लड़ाई करने के लिए कटिबद्ध हो।...निकट ही दीवार के साथ बिजली के स्टोव पर केतली पड़ी थी जिसमें पानी के खौल उठने की आवाज़ आने लगी। इस आवाज़ से सचेत होकर अजीत स्टोव की ओर जाते हुए बोला, "मेरा खयाल है अगर हम कॉफी की एक-एक प्याली पी लें तो कोई हर्ज नहीं!"

ईज़ल पर किसी अधूरे-से चित्र का कैनवेस टंगा था। अशोक कुंचित-सी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा। उसकी समझ में कुछ नहीं आया। रेखाओं और रंगों का विद्रूप-सा संयोग हो रहा था। वह उतनी देर इसे कोई अर्थ देने के प्रयास में लगा रहा जितनी देर अजीत ने काफी की प्याली उसे पकड़ा नहीं दी।

कॉफी का घूंट लेकर अजीत ने बिना किसी तरह की भूमिका बांधे मूल विषय को पकड़ते हुए कहा, "मेरा खयाल है तुम यह समझने लगे हो कि मैं तुम्हारे माल को उड़ा ले गया हूँ।"

"अजीत," अशोक ने उत्तर दिया, "तुम्हारे शब्दों में मुझे अशिष्टता की बू आती है।"

"मुझे नहीं पता," अजीत ने कहा, "कि संभ्रान्त लोगों की डिक्शनरी में अशिष्टता का क्या अर्थ होता है, लेकिन मैंने जो कुछ भी कहा वह एक सच्चाई है।"

"तुम मेरे दोस्त हो अजीत।" अशोक ने प्रयत्नपूर्वक शान्त-से स्वर में कहा।

"हाँ-हाँ।"

"इसलिए", अशोक ने आगे कहा, "मैं यह कभी सोच नहीं सकता कि तुम मेरे साथ विश्वासघात करोगे।"

यह सुनकर अजीत निहायत ही बेहूदा ढंग से हँसने लगा और हँसते-हँसते ही उसने उत्तर दिया, "खूब ! तुम अमीर आदमी कितने स्वार्थी होते हो ! यह समझते हो कि सिर्फ तुम लोगों को ही प्रेम करने का अधिकार है और तुमने जो प्रेयसियाँ बना ली हैं उनकी ओर कोई और दूसरा आदमी टेढ़ी आँख से नहीं देख सकता। हा ! हा !" वह फिर उच्छृंखल-से भाव से हँसने लगा।

अशोक का चेहरा ऐसे था जैसे बिल्कुल सकते में आ गया हो। वह बोला, "यहाँ किसी के अमीर या गरीब होने का प्रश्न नहीं है, यह दो मित्रों के बीच रहने वाली नैतिकता का प्रश्न है !"

"अब तुम नैतिकता की दुहाई देने लगे ?"

इसका उत्तर देते वक्त अशोक का स्वर व्यंग्यपूर्ण हुए बिना न रह सका, "मुझे अफसोस है इस नैतिकता की दुहाई मुझे ही देनी पड़ रही है। तुमने तो अपना मानसिक संतुलन खो दिया-सा लगता है !"

अजीत ने अपने होंठों को बिचका लिया। उसका चेहरा भीतरी तनाव के कारण विकृत-सा दिखाई देने लगा। वह कई क्षणों तक अपने उलझे हुए बालों में अँगुलियाँ चलाता रहा। कदाचित् उसे ऐसे उपयुक्त-से शब्द नहीं मिल रहे थे जिन्हें वह प्रतिद्वन्द्वी के मुँह पर दे मारे।

वह जानता था कि अशोक उससे स्पष्टीकरण माँगने के लिए उसके पास अवश्य आएगा। उसकी अपनी स्थिति बिल्कुल साफ थी। उसने शुरू में उषा के साथ सिर्फ बौद्धिकता का सम्बन्ध बना लेने का ही सोचा था। तब उसके भीतर किसी तरह का विकार या कमज़ोरी नहीं थी। लेकिन उषा के रूप और यौवन से भरपूर व्यक्तित्व के सान्निध्य में ही आकर उसने जाना कि उषा का वास्तविक आकर्षण यही है और उसकी प्रबुद्धता'''अथवा किसी भी स्त्री की प्रबुद्धता केवल भ्रामक और थका देने वाली वस्तु है। अपने ऊपर भी उसने जो विचित्र से भ्रम का मुखौटा लगा रखा था वह इसे उतार देने के लिए छटपटा रहा था। उसने सोचा था कि आज शाम उषा से भेंट होने पर वह इस मुखौटे को उतार देगा

चाहे इसका जो भी परिणाम हो।

तत्क्षण अपनी विफलता की पीड़ा के आघात से उसके चेहरे का व्यंग्यभरा-सा खिचाव ढीला पड़ने लगा और वह बुझे-से स्वर में ईज़ल के आगे रखे हुए स्टूल पर बैठते हुए बोला, "तुम्हें परेशान होने की जरूरत नहीं। मैं तुम्हारी जगह नहीं ले सकता !"

अशोक ने कोई उत्तर न दिया। कुछ क्षण बाद अजीत ने आगे कहा, "इस-लिए कि मैं तुम्हारी तरह न खूबसूरत हूँ, न जवान हूँ और न अमीर ही हूँ। मेरे जैसे फाँक आर्टिस्ट और मरियल-से वजूद वाले व्यक्ति के प्रति कोई भी स्त्री आकर्षित होना नहीं चाहेगी। मैं अपनी हार स्वीकार किए लेता हूँ!" उसका स्वर निराशा में गहरा डूबा हुआ था।

यह सुनकर अशोक बिल्कुल अवाक्-सा रह गया। अब तक वह एक नैतिक ऊँचाई से ही बोलता रहा था। वह इस सच्चाई से आश्वस्त था कि अजीत ने विश्वासघात ही किया है। लेकिन अजीत के इन शब्दों को सुनकर उसे लगा कि जैसे वह नैतिक ऊँचाई नीचे से खिसकने लगी हो। तर्क का सम्वल ही अब उसके पास रह गया था।

"मैं जा रहा हूँ !" कुछ क्षण बाद उसने धीमे से कहा। दोनों की नज़रें आपस में मिलीं और एक-दूसरे के मनोभावों को समझ लेने के लिए फड़फड़ाती रहीं। लगता था जैसे उन नज़रों के बीच बोझिल-सी धुन्ध का गुबार आ पड़ा हो और वह जो अत्यन्त स्पष्ट, आत्मीय-सा रहता था उसकी नज़र के हर अणु में बसी हुई सुपरिचित-सी छाप धुँधलाने लगी हो।···अशोक बिल्कुल भौंचक्का-सा रह कर तंग-सी सीढ़ियों वाले अन्धेरे ज़ीने की ओर बढ़ गया।

नीचे गली में आकर अकस्मात् उसे विचार आया—क्या यह उन दोनों की मित्रता का अन्त है ? क्या वह हमेशा के लिए इस अन्धेरे ज़ीने की सीढ़ियों से उतर आया है ? इस प्रश्नचिन्ह से उलझा हुआ वह कुछ क्षणों के लिए वहाँ ठिठका-सा खड़ा रहा। फिर सहज ही उसके अन्तर्मन ने उत्तर दिया···नहीं ! यह उसके अपने ऊपर है कि वह इस घटना के प्रभाव से अपने को पूरी तरह मुक्त कर ले और यह समझने लगे कि जैसे कुछ भी न हुआ हो। अजीत उसा

के सम्पर्क में आकर आकर्षित हुए बिना न रह सकता था, लेकिन यह अनुभव उसके लिए आत्म-ग्लानि और अन्तर्जलन के सिवा और क्या रह गया था !

कार में बैठते ही जैसे कोई अदृष्ट-सी शक्ति थी जो उसे बारहखम्भा रोड की ओर चले जाने के लिए प्रेरित करने लगी। उसे पहली बार अनुभव हुआ कि परसों शाम उषा के प्रति उसका व्यवहार अपमानजनक और असभ्य ही कहा जा सकता था और इसकी उसे अवश्य क्षमा मांग लेनी चाहिए।

वहाँ पहुँचने पर और बँगले के विशाल फाटक से अन्दर आने पर उसने देखा कि ठाकुर लॉन पर कुछ सोचता हुआ नंगे पाँव टहल रहा है। अशोक ने पोर्च के नीचे न जाकर कार वहीं रोक ली और फिर वह भी लॉन पर ही चला आया।

ठाकुर ने मिलते ही कहा, ''मेरा खयाल था तुम शायद गाँव चले गए हो। आज के अखबारों में मेरा स्टेटमेंट तो देखा होगा ?''

''हाँ, काका !''

''आज दिन-भर'', ठाकुर कहने लगा, ''कुछ तो ऐसे फोन मिले जो प्रशंसा के थे और कुछ ऐसे थे जिनमें घोर निन्दा और कटु गालियाँ भी थीं !''

''गालियाँ क्यों ?''

''सभी तरह के लोग होते हैं···बल्कि मुझे यों कहना चाहिए कि लोग दो विशिष्ट-सी विचार-धाराओं में बँटने लगे हैं। अगर पूँजीवाद की कुछ बिलकुल सच्ची-सी बुराइयों का भाँडा फोड़ा जाए तो लोग आपको कम्यूनिस्ट समझ लेते हैं और अगर कम्यूनिज़्म की हिंसा-नीति और विद्रोह-प्रियता पर कुछ सख्त-सुस्त कह दिया जाए तो कुछ और लोग कहेंगे कि आप अमरीका के एजेंट हैं। अशोक, अब ऐसा युग आ गया है कि जब हर बात को पहले से ही सोची हुई किसी विचार-सूची में टाँग लिया जाता है। नपे-तुले सिद्धान्त और नपी-तुली प्रतिक्रिया···आज विचारों की स्वतन्त्रता की दुहाई देने वाले युग में अब यही कुछ रह गया है।''

''यह बिल्कुल ठीक है,'' अशोक ने अनुमोदन करते हुए कहा, ''आज के युग में इतने वाद खड़े हुए हैं कि विचारों की अपनी सत्ता नहीं के बराबर हो

गई है। इसी तरह व्यक्ति की अपनी सत्ता नहीं रही। उसका भी वर्गीकरण कर लिया गया है।"

अन्तिम शब्द कहते वक्त कदाचित् उसके भीतर यह भाव रहा हो कि उसके व्यक्तित्व को···उसके विचारों और आदर्शों को उसके वर्ग से अलग करके ही समझने की जरूरत है। उसका अब तक का संघर्ष इसी लक्ष्य को लेकर ही चलता रहा है कि वह अपने को उन सभी हितों और संस्कारों से मुक्त कर ले जो उसके वर्ग के साथ जुड़े हुए हैं।···लेकिन अब तक उसने जो कुछ भी सोचा है और अपने जीवन में अवतरित कर लेना चाहा है बस वही क्या पर्याप्त है? नहीं! कभी नहीं! अभी तो संघर्ष शुरू ही हुआ है और उसे बहुत दूर आगे जाना है।

तेज़ी से मचलते जा रहे इन विचारों से उद्वेलित-सा होकर उसने ठाकुर से कहा, "काका, मेरे कांग्रेस में शामिल हो जाने पर बहुत से लोगों ने यही समझा है कि मैंने किसी ऊँचे राजनीतिक उद्देश्य के लिए ही ऐसा किया है लेकिन··· यह बिल्कुल झूठ है!"

"अशोक," ठाकुर ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "मैं तो सोच रहा हूँ कि अगले वर्ष होने वाले आम चुनाव के लिए तुम्हें एम०पी० का टिकट दिलवा दूँ!"

अशोक के लिए यह बिल्कुल अप्रत्याशित-सी बात थी। यह कोई डींग नहीं, उसे लगा। ठाकुर अपने रसूख के ज़रिए उसे यह टिकट दिलवा सकने में समर्थ हो सकेगा। तब लोग ठीक ही समझते हैं कि उसने किसी ऊँचे राजनीतिक उद्देश्य के लिए ही कांग्रेस की सदस्यता ली है। लेकिन उसके अपने भीतर ऐसी कोई भी महत्त्वाकांक्षा नहीं। वह विरोध में किंचित् कठिन से स्वर में बोला, "नहीं काका, आप बिल्कुल गलत कह रहे हैं!"

"क्यों?"

"मैं राजनीति से दूर ही रहना चाहता हूँ। आपने देखा ही है कि राजनीतिक सत्ता के मोह में पड़ कर हमारे बहुत से नेता लोग अपने ध्येय से भटक गए। मैं यह भी सोचता हूँ कि मैंने काँग्रेस की सदस्यता लेकर भी गलती की। समाज-सेवा या लोक-कल्याण का काम किसी राजनीतिक संस्था का पुछल्ला हुए बिना

भी किया जा सकता है !''

ठाकुर गहरे विस्मय की मुद्रा में उसकी ओर देखने लगा। बोला, ''इतना आदर्शवाद क्या ठीक है अशोक ? मैंने तो कुछ और सोचा था।''

''क्या ?''

ठाकुर कुछ क्षण रुका रहा। वह जानता था कि जो कुछ उसके होंठों से फूट पड़ने के लिए आतुर है वह उसके वर्ग-स्वार्थ के सिवा और कुछ नहीं। लेकिन अशोक से क्या दुराव ? उसने क्षण-भर सोचा। फिर उसने कहा, ''अशोक, पार्लियामेंट में हमारे वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले भी कुछ लोग होने चाहिए। तुम्हें पता ही है हमारा अस्तित्व कैसी डाँवाडोल-सी स्थिति में है। पूंजीपति और व्यापारी-वर्ग के लोग हमारी बची-खुची शक्ति को बिल्कुल मलियामेट कर देना चाहते हैं !''

''लेकिन ठाकुर काका,'' अशोक ने उत्तर दिया, ''हम पीछे कैसे लौट सकते हैं ! अपने वर्ग-हितों में बँधकर सोचना मुझे काफी दकियानूसी-सा लगता है। हमारा लक्ष्य ऐसा समाज होना चाहिए जिसमें किसी तरह का शोषण नहीं, कोई वर्ग-हित नहीं !''

ठाकुर के हृदय में इन शब्दों को सुनकर जो प्रतिक्रिया हुई वह विरोध की नहीं थी। उसने हँसते हुए कहा, ''मुझे पता था तुम यही कहोगे ! आदर्शवादी जो ठहरे !''

''काका, यह ऐसा आदर्श है जिसे अभी पूरी तरह यथार्थ नहीं किया जा सका, लेकिन संघर्ष जारी है। समाजवाद आर्थिक समता के लिए संघर्षबद्ध है और गाँधीवाद मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए। पूंजीवाद पतन और विनाश का रास्ता है। आज भले ही दुनिया का रूप काफी हद तक बिगड़ा हुआ है, लेकिन विनाश की शक्तियों को एक-न-एक दिन अवश्य ही पराजित होना पड़ेगा।''

''अशोक,'' ठाकुर बोला, ''तुम तो अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर सोचने लगे हो !''

अशोक ने हँसते हुए उत्तर दिया, ''आज हर राष्ट्रीय प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीयता

से जुड़ा हुआ है। मैं तो उस दिन की कामना करता हूँ जब सभी दुनिया के लोग अपने धर्म, अपने समाज और अपनी राष्ट्रीयता की तंग-सी परिधियों से ऊपर उठकर विश्व-धर्म यानी विश्व-प्रेम, विश्व-समाज और विश्व-राष्ट्रीयता के सदस्य बन जाएँगे !"

"ये विचार बहुत अच्छे हैं," ठाकुर जैसे यह कह देने के लिए विवश हो, "काश ! ऐसा हो जाए !"

अशोक को लगा अब उसके पास ऐसा कुछ भी तो नहीं जिसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता हो। उसे एकाएक विचार आया उषा की उपस्थिति में उसके लिए यह सब कह सकना सम्भव न हो सकता था। उसने उसे अवश्य ही यह कहकर टोक दिया होता कि ये सब रटी-रटाई बातें हैं···राष्ट्रीय संघ में होने वाली बहस की कुछ बटोरी हुई पंक्तियाँ या किसी समाजवादी समाचार-पत्र का सम्पादकीय ! सचमुच एक तरह का व्यंग्य ही···लेकिन सत्य का एक अंश व्यंग्य में भी लक्षित होते देखा जा सकता है। निस्सन्देह उसने उषा के उस तरह के व्यंग्य को सुनकर निर्विरोध ही उस सत्य को भी पी लिया होता।

थोड़ी देर बाद वे बरामदे में बैठकर कॉफी पीने लगे। अशोक को विश्वास हो गया कि उषा घर पर नहीं वर्ना वह इतनी देर उसके वहाँ होने पर अपने कमरे में बैठी न रह सकती थी। उसने पूछ लिया, "उषा कहाँ है ?"

"सरोज के साथ लिटल आर्ट थियेटर गई है। आज कोई ड्रामा है !"

अशोक ने घड़ी देखी। पौने छह होने वाले थे। नाटक का कार्यक्रम शुरू होने से पहले वह भी लिटल आर्ट थियेटर पहुँच जाना चाहता था।

□ चौदह

लिटल आर्ट थियेटर की ओर जाते हुए मिसेज़ मनचन्दा ने उषा से कहा,

"तुम्हें मालूम है उषा, नीना का पुराना प्रेमी लौट आया है ?" उसने यह घोषणा बिना अनावश्यक-सी भूमिका बाँधे कर दी। कदाचित् वह अपनी साथिन को चौंका देना चाहती थी।

उषा ने बिना चौंके ही उत्तर दिया, "सरोज, मुझे इससे कोई मतलब नहीं कि उसका कोई पुराना प्रेमी भी रहा है।"

– "क्यों ?"

"शायद पहले," उषा धीरे-धीरे कहने लगी, "मेरे अन्दर उसके प्रति ईर्ष्या रही हो, लेकिन अब मैंने उस स्थिति से अपने को बहुत ऊपर उठा लिया है।"

"ज़रा सुनो उषी !" मिसेज़ मनचन्दा उसे टोकते हुए बोली, "उसका पुराना प्रेमी आज भी यदि चाहे तो उसका मन जीत लेने की सामर्थ्य रखता है। बेचारा गरीब जरूर है, लेकिन उसमें एक ऐसा आकर्षण है जिसे झुठलाया नहीं जा सकता। मुझसे वह बिलानागा मिलने के लिए आता है। अब वह पहले जैसा उच्छृंखल भी नहीं रहा।"

उषा ने पूछ लिया, "क्या अशोक को यह मालूम है ?"

"नहीं। वह मेरे पास कई दिनों से नहीं आया। लेकिन भेंट होने पर मैं उसे सब कुछ बता देना चाहती हूँ !"

"सरोज दीदी, आप भी खूब हैं !" उषा ने कहा।

"क्यों ?"

"बेचारे का दिल नहीं टूट जाएगा ? मेरा खयाल है वह नीना को प्यार करता है और उसे खूबसूरत भी समझता है।"

सुनकर मिसेज मनचन्दा हँसने लगी। बोली, "बुरा मत मान लेना अगर मैं कोई चुभती-सी बात कहूँ ?"

"हाँ-हाँ।"

"अपने-आपको बड़ी जीनियस मानती हो, लेकिन तुम में रत्ती-भर भी अक्ल नहीं। मेरा खयाल है उषी," मिसेज़ मनचन्दा कहती गई, "अगर अशोक इस दुनिया में किसी युवती को चाहता है तो वह तुम हो···बस तुम !"

उषा जानती थी कि मिसेज़ मनचन्दा अपने उत्तर में यही कहेगी। अपने

भीतर जैसे आश्वस्त-सी होकर उसने कहा, "इसलिए मैं बेवकूफ नहीं, अशोक है!"

"क्यों?"

"वह मुझे क्यों चाहता है?" अकस्मात् उषा ने यह पूछ लिया।

"इसका यथार्थ उत्तर तो अशोक के पास ही होना चाहिए, लेकिन मैं बस इतना ही समझती हूँ कि यह बस स्वाभाविक-सी बात है। जिस तरह वह तुम्हें चाहता है उस तरह तुम भी उसे चाहती हो!"

उषा कठिन-से स्वर में प्रतिवाद करने लगी, "नहीं! नहीं!"

"तुम्हारे नहीं कह देने से इस सच्चाई को क्या छिपाया जा सकता है?"

कुछ क्षण उषा मौन और स्तब्ध अपनी प्रौढ सहेली की ओर देखती रही। उसे विचार आया आज तक वह इसी मानसिक संघर्ष में उलझी रही है कि किसी तरह अपने को इस कमजोरी से मुक्त कर ले। उसने अपने इस प्रेम-भाव को काफी कुरेदा है और नोचा है और इसके अस्तित्व को भी झुठला देने का प्रयत्न किया है। लेकिन इस सब के बावजूद···वह खीझती हुई सोचने लगी··· कि वह जितनी विवश और दुर्बल थी उतनी ही आज है।

मिसेज़ मनचन्दा ने उसकी चुप्पी से और अधिक उत्साहित होकर कहा, "किसी स्त्री के लिए उपेक्षा करते चले जाना एक सीमा तक ही अच्छा लगता है, लेकिन मुझे लगता है तुम्हारी उस भले आदमी के प्रति उपेक्षा सीमा से आगे जाने लगी है!"

तत्क्षण उषा ने इस विषय से हट कर पूछ लिया, "लिटल आर्ट थियेटर वाले कौनसा ड्रामा खेलने जा रहे हैं?"

"ऐंटीगोन! जैसे तुम्हें पता नहीं!" मिसेज़ मनचन्दा ने हँसते हुए अपने उत्तर में कहा। उसके लिए यह अनुमान कर लेना मुश्किल नहीं था कि उषा ने किस कारण विषय बदल लिया है।

"हाँ-हाँ, याद आ गया ऐंटीगोन ही। इसका लेखक ग्रीस का नाटककार सोफोक्लीज़ है। मैंने पढ़ा है ऐंटीगोन अत्यन्त दु:खान्त-सा नाटक है।" उषा उस क्षण अपने भीतर के किसी जकड़ते-से भाव से पीछा छुड़ा लेने की कोशिश में

थी और इसी कारण ही वह यह सब निरर्थक-सा कह गई। लेकिन इसकी प्रतिक्रिया मिसेज़ मनचन्दा पर सुखद नहीं हुई। वह बोली, "तो इसका मतलब है हमें बोर होना पड़ेगा !"

उषा उस नाटक की नायिका ऐन्टीगोन के सम्बन्ध में यह जानती थी कि वह एक स्वच्छन्द और शक्तिशाली चरित्र की युवती थी। देवताओं के शाप के कारण उसके दोनों भाई ईटियूक्लीज़ और पोलिनिसिज़ वध कर दिए गए। पोलिनिसिज़ को थीबिस नगर में दफनाए जाने का अधिकार नहीं दिया गया, क्योंकि उस पर राजद्रोही होने का अपराध था। ओडियपस नरेश की पुत्री ऐन्टीगोन एक बहुत ही सामान्य मानवीय अधिकार की रक्षा के लिए अपने चाचा थीबिस के नरेश क्रीओन के विरुद्ध विद्रोह के लिए तत्पर हो गई। उसने अपने चचेरे भाई हेमोन के प्रेम को भी तिलांजली दे दी और स्त्री के रूढ़िग्रस्त व्यक्तित्व के आदर्शों को एक ओर फेंक कर विद्रोही और सशक्त स्त्रीत्व को स्थापित किया।...उस नाटक की कथावस्तु के ये तथ्य उसे स्मरण हो गए और वह मन-ही-मन उत्तेजित हुए बिना न रह सकी। लिटल आर्ट थियेटर का भवन अब बिल्कुल समीप रह गया था।

अशोक जिस समय वहाँ पहुँचा उस समय नाटक शुरू हो चुका था और इसके दूसरे अंक को मंच पर दर्शाया जा रहा था। इस अंक की समाप्ति के बाद हाल में बत्तियों के जलने पर वह मिसेज़ मनचन्दा और उषा को तलाश कर लेने की नीयत से इधर–उधर देखने लगा। धूमिल-धूमिल, कलात्मक-सा प्रभाव पैदा करने के निमित्त जल रही रोशनी में बाक्स-कक्षों में बैठी आकृतियों को स्पष्ट रूप से पहचाना न जा सकता था। कुछ क्षण बाद हॉल से निकलकर वह बाहर वाली गैलेरी में चला आया ताकि किसी से पूछकर उन दोनों महिलाओं के बाक्स तक पहुँच सकने में सफल हो सके।

वह अभी कुछ कदम ही बाक्स-गैलेरी को जाने वाले ज़ीने की ओर बढ़ा था कि पीछे से उसने सुपरिचित-सी आवाज़ सुनी, "अशोक !"

मुड़ कर उसने देखा कि सुरेश है। उसके पास एक और युवक भी खड़ा था जिसे वह नहीं जानता था। वह अजय था। उसने उसे विचित्र-सी मुद्रा में

अपनी ओर मुस्कराते हुए पाया। सुरेश और अजय सिग्रेट पी रहे थे और इस कारण वे हॉल से उठकर यहाँ चले आए थे।

सुरेश द्वारा परिचय करवाए जाने के बाद अजय अपने प्रतिद्वन्द्वी से बोला, "आपसे मिलकर बेहद खुशी हुई। आपकी तारीफ मैं कई लोगों से सुन चुका हूँ। आपसे हर किसी को स्पर्धा हो सकती है!"

"स्पर्धा वाली कोई बात नहीं", अशोक ने उत्तर दिया, "आज की पीढ़ी के युवक के सामने जितनी समस्याएँ हैं उतनी शायद पहले नहीं रही होंगी!"

अजय बोला, "यह तो ठीक है। हम सब समस्याओं से नुचे हुए व्यक्तित्व हैं!" स्वर में उदासी का भाव आ जाने के बावजूद भी उसकी आँखों में एक तरह की शोखी थिरक रही थी।

अशोक स्तम्भित हुए बिना न रह सका। उसने कहा, "यह निराशावाद है आपने जो कहा। मेरे विचार में जितनी ज्यादा समस्याएँ हों उतना ज्यादा ही व्यक्तित्व में निखार आना चाहिए!"

तभी सुरेश बोला, "अजय, मैंने तुम्हें बताया था कि अशोक ऐसे फक्कड़ किस्म के आदमी हैं कि उन्हें अमीरी से नफरत है और सिर्फ खेती-बाड़ी पर गुजर करना चाहते हैं?"

"यह ठीक है," अशोक ने सुरेश के शब्दों में अनजाने तौर पर आ गए परिहास से क्षुब्ध हुए बिना उत्तर दिया, "मुझे आज की हर तरह से बनावटी और मशीनी किस्म की सभ्यता से नफरत है!"

"इससे पलायन करने से कुछ नहीं होगा," अजय ने कहा, "आओ हम इसकी रंगीनियों में जितना डूब सकते हैं, डूब जाएँ। जिन्दा रहने के लिए यह जरूरी है। अस्तित्ववाद जिन्दाबाद!"

अशोक ने उससे पूछ लिया, "क्या आप अस्तित्ववादी हैं?"

"यही समझ लीजिए। वैसे मैं अपने राजनीतिक विचारों में कम्यूनिस्ट समझे जाना ही पसन्द करूँगा और मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ जब इन पूंजी-पुत्रों का कोई भी नामोनिशान बाकी न रह जाएगा।"

"तो फिर मैं कहाँ जाऊँगा?" सुरेश ने पूछा।

"जहन्नुम में !" अजय ने यह कहा और उसकी कमर में हाथ डालकर हँसने लगा।

स्पष्ट लग रहा था कि उन दोनों ने पी रखी थी। अजय के मुँह से गाली सुनकर भी सुरेश को क्रोध नहीं आया। वह और अधिक उच्छृंखल-सा होकर हँसने लगा। फिर बोला, "डियर अजय, हम सब को जहुन्नम में ही जाना चाहिए, क्योंकि मेरे खयाल में काफी नफीस-सी जगह होनी चाहिए।"

अशोक अपनी जगह कुछ विमर्श-सा करने लगा···कि सुरेश ऐसे युवकों में से है जो अपना कोई भी मत न रख कर बहुत जल्दी ही दूसरों के प्रभाव में आ जाते हैं। लेकिन यह गहरी तीखी आँखों और साँवली-सी आकर्षण-युक्त रंगत का उसका साथी कौन है ?···यह प्रश्न तत्क्षण उसके जहन में घूमने लगा। मानसिक रूप से उसने इस अपरिचित व्यक्ति से भी अपने को कटा हुआ पाया। उसे अजीत की याद आई। आज की पीढ़ी को क्या होता जा रहा है ?···उसे विचार आया।

मंच पर अगले अंक के प्रारम्भ की सूचना देने के लिए घण्टी बजने लगी। वे तीनों अपने-अपने स्थान को लौटने जगे। इसके बाद नाटक के दौरान जब-जब भी कुछ मिनटों के लिए अन्तराल हुआ अशोक अपने स्थान पर ही बैठा रहा। कदाचित् यह नाटक की दुःखान्त भूमिका से उभरती हुई व्यक्ति-सत्ता की नैतिक चेतना में पूरी तरह डूब जाने के कारण ही। उसे लगा था कि क्रीओन अपनी विपुल हिंसात्मक शक्ति के बावजूद भी कितना असमर्थ और निरीह है··· कि ऐन्टीगोन के भीतर लेश-मात्र भी मृत्यु-भय नहीं और इस कारण परिस्थितियों का विद्रोह उसकी संकल्प-शक्ति को तोड़ देने में असमर्थ है···कि भाग्य केवल अपराधी को ही दण्डित नहीं करता उस अपराधी का परिवार निर्दोष होते हुए भी सामूहिक नियति से अपने को बचा नहीं सकता···कि क्रीओन का पुत्र हेमोन जो अपने पिता का वध कर देने के लिए तत्पर हो जाता है, ऐन्टीगोन की आत्म-हत्या के बाद स्वयं भी आत्म-हत्या कर लेता है और उसकी माँ भी अपने पुत्र के शोक से विह्वल होकर आत्म-हत्या कर लेती है···कि क्रीओन के जीवित रहने की अपेक्षा ऐंटीगोन की मृत्यु हज़ार गुना बेहतर है···।

पर्दा गिरने पर वह अपनी सीट से उठा और बाहर निकलने के निमित्त

सरकती हुई भीड़ में वह भी धीरे-धीरे चलने लगा। उस समय कदाचित् देखे हुए नाटक के अवसादपूर्ण प्रभाव के कारण ही उसके भीतर यह इच्छा नहीं रही थी कि वह उषा से भेंट करे और नियति की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए उसे विचार आया कि उस युवती का पीछा करने से कुछ नहीं होगा।

बाहर वाली गैलेरी में आकर उसने कुछ दूर परे सुरेश और अजय के साथ नीना को भी देखा। कुछ क्षण अनासक्त-सी दृष्टि से वह उसकी ओर देखता रहा। नीना के समीप सुरेश का दोस्त अधिक निकट होकर चल रहा था। अशोक उतनी देर वहाँ खड़ा रहा जितनी देर वे तीनों पोर्च से बाहर नहीं चले गए।

थोड़ी देर बाद जब वह पार्किंग-स्टैंड की ओर जा रहा था तो मिसेज़ मनचन्दा ने, जो उषा के साथ गैलेरी में आ गई थी उसे देख लिया और वह उषा से बोली, "मैंने अभी-अभी अशोक को देखा है ?"

"कहाँ है ?" पूछते वक्त उषा सचमुच उतावली-सी हो गई और आसपास देखने लगी।

"वह पार्किंग स्टैंड की ओर निकल गया है। हम उसे दौड़कर ही पकड़ सकती हैं !"

"वह मुझसे नाराज़ है !" यह कह कर उषा अपने भीतर सिकुड़ने लगी।

मिसेज़ मनचन्दा हँसने लगी और बोली, "तुम्हारा सर्द-सा व्यवहार··· तुम्हारी बेरुखी उसे नाराज़ ही कर सकती है। सच-सच बताओ उषी, आखिर कब तक तुम यह नाटक खेलती रहोगी ?"

"कौन-सा नाटक ?" उषा ने पूछा।

"यही कि जो तुम अशोक के प्रति अपने दिल में महसूस करती हो वह तुम होंठों पर लाना नहीं चाहती। तुम अपने दिल पर हाथ रखकर कहो क्या तुम अशोक को प्यार नहीं करती ?"

"सरोज दीदी !" उषा ने विवशता की मुद्रा में मिसेज़ मनचन्दा की ओर देख लिया। फिर वह मन-ही-मन सोचने लगी···जो कुछ हम अपने भीतर सोचते हैं, उसे क्या होंठों पर लाकर ही किसी के विश्वास को जीता जा सकता

है ? क्या अशोक जैसे व्यक्ति के लिए भी जो उसके इतना निकट रहा है मुझे एक फूहड़-सी परिस्थिति से समझौता करना पड़ेगा ? मैं भी कितनी मूर्ख हूँ ! अपने को एक ऐसे ही बहुत नीचे लाकर सोचने लगी !···उसकी गर्वपूर्ण आत्म-विश्वास की चेतना फिर उभरने लगी ।

"उषी !" मिसेज़ मनचन्दा कुछ सोचती हुई बोली, "ड्रामे का वह सीन कितना दर्दनाक था जब मृत ऐन्टीगोन को अपनी बाँहों में लेकर उसका प्रेमी आत्म-हत्या कर लेता है ।"

उषा ने उत्तर दिया, "मैं तो नहीं समझती कि आज के युग में यह बात सम्भव हो सके !"

मिसेज़ मनचन्दा को पता था कि उस सीन को देखते वक्त उषा की आँखों में आँसू आ गए थे । उषा जो आज तक भावुकता का मज़ाक उड़ाती रही तब वह स्वयं कितना भावुक हो गई थी । अगर वह दृश्य कोरी कल्पना-मात्र ही होता तब उसे देखकर शायद कोई व्यक्ति रो देना न चाहे !···यह सब सोच लेने पर उसने उषा से कहा, "आज का युग किसी काम का नहीं । सभी तरफ सन्देह और अविश्वास ही दिखाई देता है । किसी की सद्भावना को उतनी देर तक स्वीकारा नहीं जाता जब तक अविश्वास की पूरी तरह तृप्ति नहीं हो जाती !"

उषा समझ गई । फिर रुककर उसने अपने दोनों हाथ मिसेज़ मनचन्दा के कन्धों पर रख दिए और बोली, "सरोज दीदी, अब तक मैंने जिन्दगी को एक कामेडी के रूप में ही लिया है ।···और मेरी या हम सब की परिस्थितियों का तकाज़ा भी यही रहा है । इसलिए आप इस तथ्य को भूलकर कुछ मिनट पहले देखी गई ट्रेजेडी के प्रभाव में आकर ही यह सब ऊटपटाँग सोचने लगी हैं !"

"उषा," मिसेज़ मनचन्दा जैसे फिर यह कह देने के लिए बाध्य हो, "तुमने अभी तक मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया ।"

"क्या ?"

"क्या तुम अशोक को प्यार नहीं करती ?"

"हाँ-हाँ," सहज ही उषा के मुँह से निकल गया ।···"लेकिन···!"

"लेकिन क्या ?"

"यह प्यार···कितना दकियानूसी-सा शब्द है !"

"दकियानूसी ही सही !" मिसेज़ मनचन्दा ने उत्तर दिया, "यह दुनिया जब बहुत बूढ़ी हो जाएगी तब भी इस शब्द से पीछा नहीं छुड़ा सकेगी ! आओ चलें ! अब मैं बिल्कुल निश्चिन्त हूँ !"

उस स्वीकृति से, हालाँकि मिसेज मनचन्दा के सिवा इसे और कोई नहीं जानता था, उषा को लगा जैसे उसके अन्तस् में कहीं एक उपेक्षित-सी उषा थी जो उसकी सत्ता को चुनौती देती हुई···अब तक की उपेक्षा का प्रतिशोध लेने के लिए एकाएक सजीव हो उठी हो। आत्म-परिचय का यह क्षण कितना विलक्षण और मूल्यवान होता है ! भीतर के अणु-अणु को स्पर्शित करती हुई पीड़ा कितनी रोमाँचकारी और सुखद लगती है ! उसे अपनी देह का रोम-रोम भी उस विचित्र-सी अनुभूति से भीजता हुआ महसूस हुआ···वह जिन्दगी में प्रथम बार भावनाओं के आवेग में बहने लगी थी और इनके महत्त्व को समझ रही थी।

अगले दिन मिसेज़ मनचन्दा के घर रात्रिभोज के लिए अशोक और उषा दोनों ही निमंत्रित थे। अशोक निर्धारित समय से कुछ देर पहले ही पहुँचा और मिसेज़ मनचन्दा चाहती थी कि उषा के पहुँचने से पहले अशोक की मनोभावनाओं की टोह-पोह ले सके। वे ड्राइंग-रूम में बैठे थे जब मिसेज मनचन्दा ने उससे पूछा, "आजकल उषा से कैसी निभ रही है ?"

"मुझे उससे मिले हुए काफी दिन हो गए हैं !"

"जब आखिरी बार मिले थे तब कैसा रहा था ?"

"मेरा खयाल है," अशोक ने उत्तर दिया, "मैंने उसके स्वाभिमान को थोड़ा-सा छील अवश्य दिया था !"

मिसेज़ मनचन्दा हल्के-से मुस्कराई, फिर बोली, "वैसे तो हर स्त्री में थोड़ा-बहुत स्वाभिमान होना ही चाहिए, लेकिन इस सीमा तक नहीं कि उससे प्यार करने वाले एक भले से आदमी को फिजूल ही परेशान होना पड़े !"

एकाएक भन्नाए-से स्वर में अशोक ने कहा, "मैं उससे प्यार नहीं करता !

वह इस योग्य ही नहीं कि उससे प्यार किया जा सके !"

"अशोक, बुरा मत मान लेना ! स्वाभिमानी तुम भी कम नहीं हो !"

"लेकिन आँटी," अशोक ने कहा, "मैं उसके व्यवहार से खीझ उठा हूँ। वह क्यों आज तक मुझे समझ नहीं सकी···मेरा खयाल है समझना चाहती ही नहीं !"

मिसेज़ मनचन्दा उसकी मनःस्थिति समझ रही थी और उसे खूब लुत्फ भी आ रहा था। स्पष्टतयः अशोक जिस तरह अपने से उलझ रहा था वह साथ-ही-साथ उघड़ भी रहा था। उसके शब्दों को सुनकर एक अपरिचित भी समझ सकता था कि वह उषा के व्यवहार से इसलिए दुखी है कि वह उसे, सिर्फ उसे प्यार करता है। वह कुछ और सोचकर कहने लगी, "असल में, अशोक, उषा के दिल में यह बात बैठ गई है कि तुम उसे नहीं, नीना को प्यार करते हो ?"

इसका उत्तर अशोक ने नहीं दिया और वह कुछ व्यथित-सा दिखाई देने लगा।

"क्यों ? चुप क्यों हो गए ?" मिसेज़ मनचन्दा उसे उकसा रही थी।

"वैसे सरोज आँटी," अशोक कहने लगा, "उस लड़की से सम्बन्ध बना लेने का चाहे कोई और कारण न हो, एक नैतिक कारण तो अवश्य ही पैदा हो गया है···।"

आश्चर्यान्वित-सी होकर मिसेज़ मनचन्दा ने पूछा, "क्या ?"

"वह मुझे प्यार करती है !"

मिसेज़ मनचन्दा को लगा कि अब वह क्षण आ गया है जब उसे नई पैदा हो गई वस्तु-स्थिति से पर्दा खींच ही देना चाहिए चाहे इसकी प्रतिक्रिया कैसी भी हो। उसने कहा, "एक दिन वह इसी तरह अजय को भी प्यार करती थी !"

यह सुनकर अशोक जैसे सचमुच ही सकते में आ गया हो। "कौन अजय ?"

"उसका पहला प्रेमी ! अब वह लौट आया है। कल वह उसके साथ ड्रामा देखने भी गई थी।"

अशोक को याद आ गया कि कल रात वह उस युवक से परिचित हो चुका

है, लेकिन वह यह कभी सोच भी नहीं सकता था कि उसके साथ नीना का कोई सम्बन्ध रह चुका है। परिस्थिति का यह व्यंग्य उसके अन्तर में शूल की तरह गड़ने लगा और उसके होंठों पर एक मुस्कराहट-सी फैल गई जो पीड़ा के अधिक सदृश ही कही जा सकती थी।

मिसेज़ मनचन्दा ने कहा, "अजय एक आवारा और निराश-सा युवक है। लेकिन दिल से बुरा नहीं। वह मुझे मानता है। किसी-न-किसी दिन मैं उसे अच्छे रास्ते पर जरूर ले आऊँगी!" यह कहकर उसने गर्वपूर्ण भाव से अपनी गरदन को थोड़ा ऐंठ लिया।

अशोक सोफे से उठ खड़ा हुआ। बोला, "क्षमा करना। मैं बाहर लॉन पर जा रहा हूँ। कुछ देर टहलूँगा!"

भला मिसेज़ मनचन्दा को क्या आपत्ति हो सकती थी! उषा क़िसी भी क्षण पहुँचने वाली थी और वह चाहती थी कि उन दोनों का समागम एकान्त में ही हो।

अशोक लॉन पर चला आया। मार्च के महीने की चाँदनी छिटकी हुई थी और विविध फूलों की महक से लदी हुई हवा श्वासों में नशा-सा पैदा करती थी। अशोक ने सिग्रेट सुलगा लिया और इसके नीली भाप की तरह लग रहे धुएँ को हल्के-हल्के हवा में तिरोहित होते देखने लगा। वह उस अवसाद को भी महसूस कर रहा था जो एकाएक उसके मन पर आ पड़ा था। स्थानान्तरित हो जाने का उसे दुख था, भले ही वह आज तक नीना के प्रति उपेक्षा का व्यवहार ही बनाए हुए था। लेकिन कुछ मिनट बाद वह उस दुख की स्थिति से निकल-कर अपने से पूछ रहा था—मेरा शोक करना तर्क-संगत तो नहीं! नीना को स्वीकार कर लेने का मतलब होगा उस जीवन-ढाँचे और मान्यताओं को स्वीकार कर लेना जिन्हें अपने से दूर फेंक देने के लिए मैं आज तक संघर्षरत रहा हूँ। नीना के लिए एक उपयुक्त पति व्यवसायी-वर्ग का ही हो सकता है जो उसे पार्थिव सुखों और समृद्धि से मालामाल कर दे···उसे होटलों और क्लबों में घुमाता फिरे···उसके साथ बाल-डाँस करे और अनैतिक साधनों से अर्जित की गई पूंजी के ज़रिए उसके समक्ष नए-नए ऐश्वर्यों के द्वार खोल दे। इसलिए

नीना का प्यार क्या एक षड्यन्त्र नहीं था ?

उसे लगा कि किसी अदृष्ट शक्ति के कारण ही वह अपने को एक महान् दुर्घटना से बचा पाने में सफल हो सका है। दैहिक सौन्दर्य केवल एक छलना है और इस तक पहुँचने के लिए अधःपतन के अन्धे कुएँ से होकर जाना पड़ता है। सचमुच नीना अपने वर्ग की उन युवतियों जैसी है जिनकी नज़रों में एक आदर्श पति दब्बू पति ही हो सकता है और जिसे वे ब्याह के दिन से अपने हाथ में कैंची लेकर काटना-तराशना शुरू कर देती हैं।···लेकिन उषा ? अपने स्वाभिमान-जनित विरोध के बावजूद भी वह उस विलक्षण-से व्यक्तित्व वाली युवती की महानता को समझ रहा था।···वह जो उसके साथ-साथ ही बड़ी हुई, उसके साथ ही खेली और पढ़ी और आत्मीयता की लहरों में डूबती-उतराती रही, लेकिन वयःसन्धि के दिनों में वह बनी हुई आत्मीयता आगे जाकर एक बाधा के समान हो जाएगी, इसकी किसे क़ल्पना हो सकती थी ! जवानी आने पर दोनों के लिए ही एक-दूसरे के व्यक्तित्व के प्रति किसी तरह का विस्मय-बोध नहीं था···विस्मय-बोध जो प्रेम का मार्ग प्रशस्त करता है, लेकिन उनके आपसी सम्बन्धों में कितनी जटिलता आ गई थी !···चाहे स्थिति जैसी भी है, अशोक सोचने लगा, केवल उषा ही एक विश्वसनीय जीवन-साथी के रूप में मेरे सोचे गए रास्ते पर चल सकने की क्षमता रखती है और मेरे जीवन को एक नया अर्थ दे सकती है। वह ऐसी युवती नहीं जो आदर्शों की खिल्ली उड़ाने लगे और संघर्षों में अपना धैर्य छोड़ दे। लेकिन वह यह समझती ही नहीं ! आखिर और कितनी देर···मेरे ईश्वर !···अशोक चाँदनी में भीगी हुई लॉन की नर्म दूब पर चलते हुए प्रार्थना-सी करने लगा।

तभी एक टैक्सी फाटक के अन्दर आई और सफेद-सी साड़ी में सजी-धजी उषा उसमें से उतरी। अशोक विश्वास नहीं कर सका, लेकिन वह उसे पहचान गया था। उधर उषा भी अपनी जगह कम विस्मित नहीं थी। वे दोनों ठिठके-से खड़े रहे। जब टैक्सी चली गई तब अनायास अशोक के कदमों में गति-सी आ गई और उषा के समक्ष आकर वह मौन भाव से उसकी ओर देखने लगा।

"नमस्ते !" उषा हँसती हुई बोली।

"नमस्ते !" अशोक ने बहुत ही धीमे उत्तर दिया और उसके भीतर की गाँठ खुल पड़ने के लिए कसमसाने लगी।

"मुझसे रुष्ट हो न ?" उषा ने पूछ लिया।

"हाँ !"

उषा चाहती थी कि उससे पूछे कि वह क्या इसलिए रुष्ट है कि उसने मुझे अजीत के साथ रैस्तराँ में देख लिया था ? क्या वह इस बात को जानता है कि अजीत के साथ उसने सिर्फ एक बौद्धिक-सा सम्बन्ध बना लेने का ही सोचा था ? लेकिन उसे लगा कि यह सब पूछकर अशोक के भीतर का अधिकार-प्रिय पुरुष और अधिक बौखला नहीं उठेगा ! इस समय वह कोई भी अप्रिय बात कह देने के लिए मानसिक रूप से उद्यत नहीं थी। उसने केवल इतना ही पूछा, "तुम मुझसे इतने ज्यादा रुष्ट तो नहीं हो कि मुझे कभी क्षमा न करना चाहो ?"

"लेकिन उषी," अशोक ने सहज ही उत्तर दिया, "तुम आज तक इतनी विनम्र नहीं रही हो कि तुम्हें क्षमा की आवश्यकता महसूस हो ?"

"इस समय तो हूँ।"

"तो फिर मैं यह समझ लूँ कि तुमने स्त्रीत्व के प्रति विद्रोह करना छोड़ दिया है ?"

"स्त्रीत्व के उस पक्ष के प्रति मैं हमेशा ही विद्रोह करती रहूँगी," उषा बोली, "जिसका पुरुष आज तक शोषण करता रहा है !"

अशोक ने अपना तर्क दिया, "इसके लिए अधिक दोष स्त्री का अपना है जिसने अपने को कुछ समझा नहीं और शोषित हो जाने दिया !"

"लेकिन यह मत भूलो तुम्हारे कुछ पुरुष लेखकों और समाज-सुधारकों ने स्त्री के इस शोषण को भक्ति और आत्म-त्याग जैसे आदर्शों में सँवार लेना चाहा।"

"शोषण को आदर्शों में सँवार लेना बुरी बात है," अशोक ने उत्तर दिया, "लेकिन व्यक्ति की वास्तविक पहचान और उसका सौन्दर्य आदर्श ही है।"

"अब तुम पहेलियाँ बुझाने लगे ?"

"पहेलियाँ नहीं ! मैं तुम्हारे व्यक्तित्व को लेकर भी यह बात कह सकता

हूँ। तुमने अपने आगे कुछ ऊँचे आदर्श स्थापित कर लिए हैं जैसे ऊँची-से-ऊँची शिक्षा की उपलब्धियों को प्राप्त कर लेना।···मैं समझता हूँ तुम्हारे व्यक्तित्व का यही आकर्षण है !''

सुनकर उषा उत्फुल्ल हुए बिना न रह सकी। आज तक अशोक ने उसके व्यक्तित्व को गम्भीरतापूर्वक नहीं लिया था···शायद समझा हो यह तो सब छिछला और महत्त्वहीन है। लेकिन उषा उसके मुँह से कुछ और सुन लेने को उत्सुक थी। पूछा, ''बस यही ?''

अशोक ने मुस्कराती-सी नज़रों से उसकी ओर देखा जैसे वह उसके मन्तव्य को समझ गया हो। लगा उषा के भीतर कोई और उषा है जिसने यह प्रश्न पूछा है और प्रश्न पूछ कर उसकी आँखों में कोई थिरकता-सा भाव ठहर गया है और वह लजाने भी लगी है।···अत्यन्त शोख और मन को छू लेने वाले स्वर में उषा के उपेक्षित-से स्त्री-रूप का उद्घोष···! एक मुद्दत से वह इस क्षण की प्रतीक्षा में था। वैसी ही प्रतीक्षा कदाचित् उषा को भी रही होगी। यह सोचकर वह हँसने लगा।

उषा कठिन-सी मुद्रा में उससे पूछने लगी, ''क्या बात है ?''

''तुम्हारे व्यक्तित्व का एक आकर्षण यह भी है कि तुम सुन्दर हो···बहुत सुन्दर !''

''लेकिन तुमने आज तक तो···।'' उषा ने अपनी बात को अपूर्ण ही रहने दिया और शिकवे की नज़र से उसकी ओर देखा। अशोक समझ गया कि वह क्या कहने जा रही थी कि तुमने आज तक इस तथ्य को स्वीकार किया ही नहीं। लेकिन मेरा अपराध सिर्फ इतना है, अशोक को विचार आया कि मैंने इस तथ्य को स्वीकार तो किया, लेकिन इस स्वीकृति को मैंने शब्दों में व्यक्त न होने दिया। लेकिन इस सौंदर्य से भी अधिक उसके व्यक्तित्व की जो चीज़ मुझे अपनी ओर खींचती रही है वह सौंदर्य-जैसी सामान्य नहीं। आकर्षण का कोई और बोध है जिसे बरसों की निकटता ने संजोया और इसे आत्मीयता के विविध रूपों में ढलते रहने दिया···।

उसकी भाव-लहरी को तोड़ती हुई उषा बोली, ''चुप क्यों हो ? उत्तर दो !''

"मैं यह सोच रहा था," अशोक बोला, "कि तुम साधारण युवती नहीं हो जो सौन्दर्य जैसी चीज़ को महत्त्व देना चाहे। तुम्हारे व्यक्तित्व की उपलब्धि तो यह है कि तुम सुन्दर होने के साथ-साथ मानसिक रूप से विकसित भी हो !"

"बस ! बस !" उषा उसे टोकते हुए बोली, "तुम तो मेरी तारीफ में ज़मीन-आसमान एक कर दोगे !"

"अगर मैंने एक शब्द भी झूठ बोला हो तो इस अपराध के लिए मैं बड़ी-से-बड़ी सज़ा भुगतने के लिए तैयार हूँ !"

"अब तुम यह कहोगे कि सज़ा का फैसला मुझे करना चाहिए ?"

"हाँ-हाँ !"

तब उषा कहने लगी, "अगर अभियोग-कर्ता स्वयं ही सज़ा का फैसला करने लगे तब अभियुक्त की खैर नहीं !"

"मैं जानता हूँ," अशोक ने उत्तर दिया, "कि अभियोग-कर्ता अपने मन में इतना कठोर नहीं जितना वह बाहर से दिखाई देता है।"

"तुम मेरे मन का हाल क्या जानो !"

"मेरा खयाल है इसे तुमने भी जान लेने की कोशिश नहीं की। अब अभियोग लगाने की मेरी बारी है !" कहकर अशोक हँसने लगा।

उषा को यह सारी बातचीत अच्छी ही लग रही थी। हर क्षण उसके भीतर कुछ पसीज उठता था और वह एक तरह की गुदगुदाहट-सी महसूस करने लगती थी। चाँदनी में स्पष्ट दिख जाने वाली विचित्र-सी चमक अशोक के चेहरे में थी जो खून में चिंगारियाँ-सी घुलने लगी थीं। वह भी हँसने लगी और उसने उत्तर दिया, "हम दोनों ही अपराधी हैं। हमारा न्याय एक तीसरा व्यक्ति ही कर सकता है।"

"आओ अन्दर चलें। इस मामले में सरोज आँटी को ही न्यायाधीश बनाना चाहिए।"

वे अन्दर चले आए। मिसेज़ मनचन्दा डाइनिंग-टेबल के पास खड़ी थी। अशोक कमरे में कदम रखते ही बोला, "सरोज आँटी, हमारा न्याय कीजिए। हम दोनों ही अपराधी हैं !"

मिसेज़ मनचन्दा ने अर्थपूर्ण, मुस्कराती-सी नज़रों से दोनों की ओर देखा। वह तत्क्षण ही समझ गई कि उन दोनों का वह कौन-सा अपराध है जिसके लिए उसे न्यायाधीश बनने को कहा गया है। कुछ मिनट पहले उसने खिड़की के निकट जाकर उन दोनों को बातें करते हुए देखा था। वह बोली, "पहले तुम यहाँ आकर टोमाटो-जूस पी लो। मैंने अपना न्याय सोच लिया है।"

"क्या ?" पूछने में पहल उषा ने की।

"तुम दोनों को पश्चात्ताप करना होगा! दिन-रात पश्चात्ताप की आग में झुलसना होगा! तब कहीं जाकर तुम लोगों का अपराध धुल सकेगा।"

इस घोषणा पर न तो किसी तरह की आपत्ति अशोक ने की और न उषा ने ही। वे सिर्फ मुस्करा-भर दिए। फिर वे मेज़ से गिलास उठाकर टोमाटो-जूस सिप करने लगे।

☐ पन्द्रह

मिसेज़ मनचन्दा जानती थी कि जिस तरह उषा की उलझन सुलझने लगी है उसी तरह नीना की भी सुलझ जाएगी। अजय का आकस्मिक रूप से बम्बई से लौट आना नियति-प्रेरित ही कहा जा सकता था। वह अपनी ओर से भी इसी प्रयत्न में लगी थी कि नीना के अशोक की उपेक्षा से पीड़ित-कातर हृदय में अजय को पुनः प्रतिष्ठित कर सके। लेकिन वह यह भी जानती थी कि अजय के व्यक्तित्व में ऐसा विलक्षण-सा आकर्षण अवश्य है जिसे नीना से स्वभाव वाली युवती के लिए उतार-फेंक देना सहज नहीं होगा।

एक शाम जब नीना उसके पास आई तब अशोक का प्रसंग आ जाने पर

वह उससे कहने लगी, "उस उखड़े हुए रोमाँस का तुम्हें कतई अफ़सोस नहीं होना चाहिए। यह जरूरी नहीं कि जिससे हम प्यार करें उससे शादी भी करें। यह ठीक है शादी जरूरी है, लेकिन इसे बहुत सीरियसली नहीं लेना चाहिए। बस एक सामाजिक फार्मेलिटी के तौर पर ही तो। इसलिए मैं चाहूँगी कि तुम उस उखड़े हुए रोमाँस को हार के रूप में मत लो। समझ लेना एक अनुभव हुआ था···और बस! पहले तुमने अजय से प्यार किया, फिर अशोक से। इस का मतलब है अब तक तुम्हें दो अनुभव हुए हैं। लेकिन परेशान होने से फायदा? अभी तो सारी जिन्दगी पड़ी है। तुम अशोक से शादी करना चाहती थी, लेकिन ज़रा सोचो तो! वीस साल की उम्र कोई शादी की उम्र होती है!"

यह सुनकर नीना ने किसी भी स्थल पर प्रतिवाद नहीं किया। मिसेज़ मनचन्दा ने आगे कहा, "मैं वही कह रही हूँ जो तुम शायद मेरी उम्र में पहुँच कर कहना पसन्द करो। रोमाँस का क्राइमिस हम जैसे लोगों के लिए कोई अर्थ नहीं रखता। बस पूँजी या रुपए का क्राइमिस नहीं आना चाहिए। अब हम दूसरी तरह के लोग बनने लगे हैं यानी उच्चवर्ग के! हमारी मान्यताएँ वे नहीं हैं जो मध्यवर्ग के लोगों की हैं। उनके लिए नैतिकता के पुछल्ले से बँधे रहना जरूरी है, नहीं तो उनका मानसिक स्वास्थ्य ही बिगड़ जाए। लेकिन हम लोगों के लिए नैतिक का अर्थ वही है जो हमारी सुरुचि और सुविधा के अनुकूल हो। इसलिए नीना, मैं चाहती हूँ कि तुम अपने को मध्यवर्ग के संस्कारों से मुक्त कर लो। तुम लखपति बाप की बेटी हो!"

उसका एक-एक शब्द नीना के मर्म को छू रहा था और उसे चकित किए दे रहा था। उसे सबसे अधिक प्रभावित किया अपने उच्चवर्ग से सम्बन्धित होने की अनुभूति ने। यह अनुभूति उसके पूर्ण रूप से समृद्ध, सशक्त और स्वतंत्र होने की परिचायक थी। मन-ही-मन वह अजय को अशोक की तुलना में परखने लगी···लगा उसे समझ पाना अशोक की अपेक्षा कहीं अधिक सहल है। उसमें दम्भ नाम की कोई चीज़ नहीं और न ही वह व्यर्थ के आदर्शों में उलझा रहना चाहता है। उसके प्रेम करने के तौर-तरीकों में भी किसी तरह का छल या दुरूहता नहीं। वह उन्माद की तरह छलक जाना चाहता है जिसमें ज़रा भी

सुध-बुध नहीं रहती ।…नीना को यह एकाएक स्मरण हो आया और वह लजाने लगी ।

तभी अजय वहाँ आया । मिसेज़ मनचन्दा के लिए उसका आना अप्रत्याशित नहीं था, लेकिन नीना ने आश्चर्य-भाव से उसकी ओर देखा और मन-ही-मन सिकुड़ने लगी । "गुड ईवनिंग नीना !" अजय ने अपने विशिष्ट अन्दाज़ से मुस्कराते हुए सर्वप्रथम उसे ही अभिवादन किया ।

उसने अभिवादन का उत्तर न देकर केवल अपने सिर को ज़रा-सा झुकाया ।

"थैंक्स !" अजय ने उससे कहा और उसकी मुस्कराहट में एक ऐसा विक्षिप्त-सा भाव उमड़ आया जो विफल प्रेम की समस्त पीड़ा अपने भीतर लिए हुए रहता है ।

नीना यह देखकर सचमुच विचलित हो उठती थी । उसे अनुभव होता जैसे उस जख्मी परिंदे-सी फड़फड़ायी मुस्कराहट के आगे वह अपनी उपेक्षा में स्थिर नहीं रह सकेगी । यह मुस्कराहट उसके अन्तर को खरोंचती-सी लगती थी । कुछ दिन पूर्व जब लिटल आर्ट थियेटर के भवन में उन दोनों का समागम हुआ था तब भी अजय ने अपने होंठों पर वैसी ही मुस्कराहट खींचकर उससे अभिवादन किया था…उसकी आँखें भी जैसे सूई की नोक की तरह चुभने लगती हों…।

उसने सुना मिसेज़ मनचन्दा अजय से कह रही थीं, "हमें बाहर जाना चाहिए । शाम की रंगीनियाँ देखने के लिए कनाटप्लेस से बेहतर कोई जगह नहीं । क्यों ?"

"बहुत ही नेक खयाल है ।" अजय ने उत्तर दिया ।

"और नीना भी हमारे साथ ही जाएगी !" मिसेज मनचन्दा ने बिना नीना की स्वीकृति लिए अपनी ओर से घोषणा की ।

कुछ देर बाद वे स्टैंडर्ड में आ बैठे थे । उस शाम वहाँ बाल-डाँस भी था और आर्केस्ट्रा पर नृत्य-संगीत बज रहा था । नीना की नजरें बारम्बार नृत्य-मग्न जोड़ों की ओर उठ जातीं और वह मादाम लोपियर के सैलून से सीखी हुई उस नृत्य-कला की विशिष्टताओं को मन में सोचते हुए हर नाचने वाले

कदम को आलोचनात्मक-सी दृष्टि से परखने लगती थी। अगर किसी का कदम सधा हुआ होता तो वह खुश हो जाती और अगर वह उखड़ा हुआ होता तो उसे सचमुच दुख होता। अजय उससे बातें करने का इच्छुक था, लेकिन वह ऐसी कोई भी चेष्टा नहीं करना चाहता था जिससे उसका उतावलापन प्रकट हो सके।

मिसेज मनचन्दा जैसे नीना की मनोभावना को भाँप कर बोली, "नीना, जाओ अजय के साथ नाचो!"

नीना ने सर्द स्वीकृति की भंगिमा में अजय की ओर देखा, लेकिन वह अपनी जगह यह महसूस कर रहा था कि मिसेज मनचन्दा ने उसे एक कठिन, बोझिल-सी स्थिति से मुक्त कर दिया हो।

अभी एक वृत भी पूरा नहीं हुआ था कि नीना कुछ डाँवाडोल-सी होने लगी। वह अजय के स्पर्श को महसूस कर रही थी और उससे दूर भी हट जाना चाहती थी। यह सब कितना सुपरिचित था उसके लिए! लगता था जैसे दो-ढाई बरस का फासला उस स्पर्श में तिरोहित-सा हो गया हो। न मालूम किस कारण अजय ने असाधारण-सी खामोशी खींच रखी थी जब कि नीना का रोम-रोम पुकार रहा था कि उसे मुझसे अवश्य कोई बात करनी चाहिए।···कई क्षण तक सुलगती-सी खामोशी बनी रही। आखिर नीना ने कहा, "काफी गरमी हो गई है! उफ!"

अजय ने मुस्करा कर उसकी आँखों में झाँका। "मुझे पता है!" उसके शब्द कितने रहस्यमय थे!

"क्या पता है?" नीना जान लेना चाहती थी और उन शब्दों को कोई अर्थ देकर वह सिकुड़ने भी लगी।

"यही कि तुम्हें गरमी लग रही है," अजय बोला, "लेकिन तुम्हारा स्पर्श इतना ठण्डा होगा मैं नहीं जानता था।"

अजय को याद आया कि जब सर्वप्रथम नीना उसकी ओर खिंची चली आई थी तब भी वह यही कहा करती थी। यह सोचकर वह धीमे से हँस देने के लिए विवश था।

"क्यों हँस रहे हो ?"

"कुछ याद हो आया था।"

नीना अपने भीतर कुछ विमर्श-सा करती रही, फिर बोली, "पता नहीं ये आर्केस्ट्रा वाले कब तक इसी धुन को बजाते रहेंगे !"

"क्या थक गई ?"

"नहीं तो।"

"फिर ?"

"फ़िर कुछ नहीं। मैं वाल्टज़ भी नाच सकती हूँ, लेकिन आर्केस्ट्रा वाले रंभा-संभा के आगे जाना चाहते ही नहीं।"

अजय जानता था कि नीना सिर्फ अपनी उलझन से बचने के लिए यह सब कह रही है। बोला, "तुम काफी सफाई से झूठ बोल लेती हो।"

"मैं समझी नहीं !"

"जो कुछ तुम सोचती हो वह तुम्हारी आँखों में आ जाता है और मुझे तुम्हारी इन सुन्दर-सुन्दर आँख़ों की भाषा पढ़ लेने का काफी पुराना अनुभव हो चुका है।"

"आखिर यह तुम मुझे···।" नीना का स्वर जैसे रुंध गया हो।

"यह सुना देने का अधिकार मुझे नहीं तो और किसे है ?" अजय एक-एक शब्द पर जोर देकर कहने लगा, "तुम खुद ही तो कहा करती थीं कि मैं तुम्हारी जिन्दगी में पहला पुरुष हूँ जिसने तुम्हें चाहने की गुस्ताखी की, लेकिन उसे छोड़ देने की भूल तुम्हारी थी। नीना, यकीन मानो, मैं आज तक इस सदमे से उभर नहीं सका हूँ, हालांकि जब-जब मुझे उस सदमे की टीस महसूस हुई मैंने अपने-आपको गालियाँ दीं और अपने को दुनिया का सबसे बड़ा पाजी और बेवकूफ ही कहा। इसलिए कि प्यार का टूट जाना इतनी बड़ी दुर्घटना तो नहीं जितना हवाई जहाज में आग लग जाना या दो मुसाफिर गाड़ियों का आपस में टकरा जाना। मेरा खयाल है यह सब सुन लेना तुम्हें अच्छा नहीं लग रहा है। तुम भी वैसी ही दुर्घटना का शिकार हो जैसे मैं हूँ। अशोक तुम लोगों की चँगुल से निकल गया है।"

नीना को जैसे झटका-सा लगा। उसने उतर दिया, "नहीं ! नहीं। यह सब रहने दो !"

"यह अच्छा ही हुआ नीना !" अजय कहने लगा, "वह एक आदर्शवादी-सा आदमी है और हमारी-तुम्हारी दुनिया में ऐसे आदमी किसी काम के नहीं होते। मेरा ख़याल है तुम किसी मजबूरी में आकर···।"

नीना ने उसे टोक दिया, "नहीं तो। वह मुझे वैसे भी अच्छा लगता था।"

अजय हँसने लगा। बोला, "बेशक ! मेरा मतलब है उसकी शक्ल-सूरत रोमांटिक-सी है और वह घटिया बातें बिल्कुल नहीं करता।···उफ···! तुम्हारे साथ इतनी बड़ी ट्रेजेडी हुई और मेरे मुँह से हमदर्दी के दो-चार शब्द भी नहीं निकल सके।"

नीना ने सोचा कि परोक्ष-रूप से अजय ने उस पर व्यंग्य ही किया है। लेकिन यह व्यंग्य अकारण तो नहीं !···उसके अन्तर्मन ने उत्तर दिया। यह उस पीड़ा को लेकर है जिसे वह अपनी विफलता पर अनुभव करता रहा है। इसलिए वह चुप रही और निर्विरोध उस उन्माद को अपने स्नायुओं में उतरते हुए महसूस करती रही जो एक पुरुष···पूर्ण रूप से यथार्थ पुरुष के स्पर्श के कारण था जबकि अशोक अपने व्यक्तित्व के सभी आकर्षणों के बावजूद उसे ऐसे स्पर्श के सुख से वंचित ही रख सका। उसे लगा कि वह इतने समय तक भंवर में घूमते रहने के बाद फिर उसी लहर में लौट आई है जो अपने वेग में···उसके एक अच्छी तैराक न होने पर भी···उसे एक सुरक्षित किनारे तक वहा ले सकती है। किनारा न भी मिले, बहते रहने का सुख तो है ही !

"मुझे तुम्हारी हमदर्दी नहीं चाहिए !" वह सहज ही बोल पड़ी।

"तुम काफी भली सी लड़की हो," अजय ने कहा, "लेकिन···।"

"लेकिन क्या ?"

"हम दोनों के अन्दर हमारे वर्ग ने इतना ज़हर भर दिया है कि मैं नहीं समझता कि हमारे भीतर स्वच्छता का वह सम्बन्ध बन सके जिसे प्यार कहा जा सकता है।" अजय एक साँस में यह कह तो गया, लेकिन अगले क्षण वह जैसे अपनी भूल को सुधार लेने की नीयत से बोला, "लेकिन ऐसे प्यार की

आवश्यकता ही क्या है ? यह झंझट तो अब कम पढ़े-लिखे और गरीब लोगों के लिए ही रह गया है। हम वासना का सुख भोग सकते हैं, लेकिन प्यार की पीड़ा नहीं !"

"नहीं ! नहीं !" नीना जैसे छटपटाते हुए बोली और कमर में पड़े हुए अजय के हाथ से मुक्त हो जाने की कोशिश करने लगी।

अजय ने हाथ की गिरफ्त को कुछ ज्यादा ही कस लिया। "ऐसे नहीं नीना, मैं तुम्हे धोखे में नहीं रख सकता। मैं ढोंगी नहीं हूँ और न मुझे आदर्शों का लम्बा-चौड़ा बखान करना आता है। जो कुछ मैंने कहा वह अप्रिय होते हुए भी ईमानदारी की बात है। बस यह समझ लो कि मैं तुम्हें सुख ही सुख दूंगा, पीड़ा देने का सवाल ही पैदा नहीं होता। आज की भटकी हुई जिन्दगी में हमें सुख के सिवा और कुछ चाहिए भी नहीं। मेरा मतलब है···।" लेकिन उसके अपनी बात समाप्त करने से पूर्व ही आर्केस्ट्रा के स्वर ऊँचा-सा शोर करके बन्द हो गए और नृत्यमग्न जोड़े अपनी-अपनी मेज़ की ओर जाने लगे।

इसके बाद वे नियमपूर्वक मिलने लगे। नीना शाम होते ही अजय के पास यार्क में चली आती। बादामी से शेड वाली वाल-लैम्प की मद्धिम-सी रौशनी में वे खेल के उन्माद में भूले हुए दो बच्चों की तरह मिलते और अपने को उस परितृप्ति के हवाले कर देते जिसका स्वाद बारम्बार चखते रहते भी उन्हें विलक्षण-सा लगता। दोनों अपनी-अपनी जगह यही समझना चाहते थे कि वास्तविक सुख यही है और यही वह सुख है जो उनके अन्तर्मन से फूट निकलने के लिए आतुर रहता है···उन्हें एक लहर पर डुलाते हुए यथार्थ के किनारे से दूर लिए जाता है और फिर आनन्द की डुबकियों से सराबोर कर चुकने के अनन्तर उसी किनारे पर फेंक देता है। इस अनुभव में सचमुच ही, जैसाकि अजय ने कहा था, किसी तरह की गलतफहमी नहीं थी और न ही किसी तरह की पीड़ा ही थी। सब कुछ सही, समझ में आ जाने वाला और सुखमय था। फिर वह खिड़की में आकर कनाटप्लेस की सन्ध्याकालीन रूप-छटा को देखते···नीली-पीली बत्तियों के समूह···जल-बुझकर चौंकिया देने वाले न्योनलाइट्स के विज्ञापन···कारों और बसों की लम्बी-सी रेंगती हुई पाँतें और गतिमान पर-

छाइयों का सैलाब-सा दिखने वाली उन्मत्त भीड़···और यह सब विचित्र से कोलाहल में लिपटा हुआ। उन्हें लगता जैसे उनकी नज़रों के आगे पूँजी की निरन्तर बहती हुई सुखमय वायु से उद्वलित विलासिता का सागर है जिसे वे वासना की पीनक में डूबी हुई आँखों से देख रहे हैं और जब-जब भी इच्छा होती है वे इसमें डुबकी लगा लेते हैं। अक्सर ऐसा हुआ है कि वे जी भर कर प्यार कर चुकने के बाद फिर किसी और अच्छे से रेस्तराँ में डाँस करने के निमित्त चले जाते हैं। नाचने के दौरान खाने-पीने का क्रम भी चलता रहता है। अजय बढ़िया स्कॉच पीता है और नीना शेरी के मीठे मादक घूँटों के लिए मचल-मचल जाती है। फिर वे रात के दस-ग्यारह बजे तक क्वींज-वे या पार्लियामेंट स्ट्रीट पर टहलते रहते हैं।

एक रात···संयोगवश उस रात आसमान में चाँद भी था···वे कनाटप्लेस के मध्यवर्ती पार्क की एक बैंच पर बैठे सुस्ता रहे थे। नीना ने कहा, "आज तो सचमुच मजा आ गया। वह इटली की शेरी थी न ? सचमुच इतनी तेज कि अब तक सिर डोलता सा लग रहा है !"

"शेरी के आगे और भी बहुत कुछ है डार्लिंग !" अजय ने सिग्रेट का अंतिम कश खींचकर हवा में उछाल दिया और नया सिग्रेट सुलगाने लगा।

नीना ने पूछ लिया, "तुम्हारा मतलब प्रेम के उन्माद से है ? लेकिन उसके बाद ?

"वह सब सोचने की क्या जरूरत है ? मेरे जैसा अस्तित्ववादी वर्तमान में रहना पसन्द करता है। हमें अब जो सुख मिल रहा है उसे भविष्य के विचार से अपने हाथ से क्यों खिसक जाने दें ?"

"मैं समझी नहीं !"

"निकट भविष्य में," अजय ने कहा, "तुम्हारी किसी ऐसे आदमी से शादी हो जाएगी जो लखपति तो होगा ही।"

"कोई जरूरी नहीं। मेरी अपनी पसन्द भी तो है।"

"लेकिन नीना, मैं तुम्हारी शादी में किसी तरह की बाधा बनना नहीं चाहूँगा !"

नीना बोली, "अगर मैं तुमसे ही शादी कर लेना चाहूँ ?"

"आर्थिक रूप से मैं बिल्कुल फाँक हूँ नीना। शादी के बाद किसी स्त्री की नजरों में उसके प्रेमी का भावात्मक पहलू खत्म हो जाता है और सिर्फ आर्थिक पहलू ही सामने आता है !"

"और पुरुष की नजरों में ?" नीना ने पूछ लिया।

"हाँ, पुरुष की नजरों में भी उसकी प्रेयसी का भावात्मक पहलू खत्म हो जाता है और सिर्फ उपयोगी पहलू ही रह जाता है।"

"तो इसका मतलब यह हुआ," नीना ने फतवा दिया, "कि शादी बिल्कुल बोगस-सी चीज है।"

अजय ने आश्चर्यान्वित-सी नजरों से उसकी ओर देखा। नीना कितनी जल्दी उसकी बातों से प्रभावित हो जाती थी ! वह बोला, "मैं फिर कहता हूँ कि मैं तुम्हारी शादी में बाधा नहीं बनूँगा। मैं वर्तमान में ही जीने का आदी हूँ और चाहता हूँ कि वर्तमान के इन क्षणों का सुख जितना मेरा हो उतना ही तुम्हारा !"

नीना कुछ और सोचने लगी···उस सुख का क्या फायदा जिसके साथ भविष्य की कोई आशा बाँधी न जा सकती हो ? अगर प्रेम की परिणति शादी नहीं तो फिर क्या है ? अगर अजय की असंतोषजनक-सी आर्थिक स्थिति बाधा के रूप में उपस्थित हो जाना चाहती है तो यह क्या कठिन है कि इसे तोड़ा न जा सके ?···मैं उसकी सहायता कर सकती हूँ···करूँगी। इन विचारों से उत्साहित होकर उसने उत्तर दिया, "मेरे डैडी इतने बड़े बिजनिसमैन हैं। तुम्हारे लिए वे कुछ-न-कुछ कर सकेंगे !"

"थैंक्स !"

"क्यों ?"

"क्या तुम उम्र-भर के लिए मुझे खरीद लेना चाहती हो ?"

"मैं तुम्हारी सहायता करना चाहूँगी !"

"क्या इसलिए कि मैं हमेशा-हमेशा के लिए तुम्हारे साथ बँध जाऊँ ? नहीं ! कभी नहीं !" अजय आवेश में बोलने लगा, "स्त्री के एहसान से दबा

हुआ उसका प्रेमी उससे कैसे प्रेम कर सकता है ? दूसरी यह बात भी है नीना कि मैं अमीर होना नहीं चाहता। कुछ लोगों को रुपया कमाने में मज़ा आता है लेकिन मुझे फूंक देने में ! इसलिए मैं तुम्हारे लिए उपयुक्त प्रेमी तो हो सकता हूँ लेकिन उपयुक्त पति नहीं। जब तुम्हारी शादी हो जाएगी मैं किसी और स्त्री से प्रेम करना शुरू कर दूंगा···यानी मुझे कोई और नीना मिल जाएगी···फिर कोई और। मेरी नीना अमर है। इसी तरह तुम्हारा अजय भी अमर है। वह तुम्हें हर स्थिति में मिल जाएगा।"

"नहीं ! नहीं !" नीना विरोध में चिल्ला पड़ी। अजय के शब्दों में व्यक्त हो रहे उस कड़वे-से यथार्थ को पचा सकना उसके लिए बहुत ही कठिन था।

□ सोलह

उस रात अत्यन्त विक्षिप्त-सी मनःस्थिति में वह घर लौटी। बँगले के अहाते में आने पर उसने देखा कि निचली मंजिल की सभी बत्तियाँ जल रही हैं जिनका उसकी समझ में यही कारण हो सकता था कि बाहर के कुछ लोग रात्रिभोज के लिए आमंत्रित हैं। उसने अपनी कार पोर्च में खड़ी की। फिर उसने बरामदे में कदम रखा।

उसके कमरे को जाने वाला ज़ीना कारीडार में था। वह निःशब्द, ज़रा भी आवाज किए बिना ज़ीने की ओर बढ़ जाना चाहती थी, लेकिन उसने देखा कि रूपलाल वहाँ खड़ा है। उसे विचार आया···सचमुच वह कार की आवाज सुनकर ही कमरे से बाहर चला आया है और मेरी प्रतीक्षा करने लगा है।··· निकट आने पर वह उसे सिर से पाँव तक घूरने लगा जैसे अपनी नजरों से ही

पान कर रहा हो जो उसकी पहुँच से दूर था। "गुड ईवनिंग !" वह धीमे से बुदबुदाया।

"गुड नाइट !" उत्तर देकर नीना ज़ीने की ओर बढ़ गई।

"नीना रुको !" रूपलाल कहने लगा, "मुझे पता है तुम इस वक्त कहाँ से आ रही हो, लेकिन मैं कोई भी गिला-शिकवा करना नहीं चाहता। मुझे इस दुख की घड़ी में तुम्हारे साथ पूरी-पूरी हमदर्दी है !"

"मुझे कोई दुख नहीं," नीना ने कठिन होकर उत्तर दिया, "मैं खुश हूँ··· बहुत ज्यादा खुश !"

सुनकर एक विद्रूप-सी मुस्कराहट रूपलाल के होंठों पर आ गई। कहने लगा, "कितना बदकिस्मत है बेचारा जयचन्द बजाज ! अचानक आ पड़ी मुसीबत में उसकी एकलौती बेटी कहती है कि मैं खुश हूँ···बहुत ज्यादा खुश !"

नीना की मुख-मुद्रा एकाएक बदल गई। "कैसी मुसीबत ? मैं नहीं जानती !"

"तो फिर सुनो !" रूपलाल बोला, "उनका तीन लाख रुपया सट्टेबाजी में डूब गया ! यह इतनी बड़ी चोट है कि लगता है कि उनका दिमाग जैसे चल गया हो !"

नीना अपने पिता के कमरे की ओर भागी-भागी चली आई। उसके पीछे-पीछे रूपलाल था। जयचन्द पलंग पर लेटा था और निकट ही सुरेश ऐसी मुद्रा में खड़ा था जैसे उस पर चौकसी कर रहा हो। नीना को देखते ही जयचन्द ने ऊँचा-सा कहकहा लगाया। फिर वह चेहरे को गम्भीर बनाकर फटी-फटी नजर से उसकी ओर देखने लगा।

"पापा !" नीना ने पूछा, "मैंने जो सुना क्या यह सच है ?"

"मैं तबाह हो गया···बर्बाद !" जयचन्द ने उखड़ते-से स्वर में कहा और फिर वह एक बच्चे की तरह रोने लगा।

"सुरेश भाई," रूपलाल ने कहा, "इन्हें फिर फिट आने लगा ! बातों से इनकी परेशानी बढ़ सकती है।"

"नन्हीं ! तुम मेरे साथ आओ !" सुरेश नीना से बोला और बाहर जाने

लगा ।

बाहर ग्राकर सुरेश ने नीना से कहा, "डैडी मुजरिम हैं ! लोगों ने शेयर्ज के रूप में जो रुपया कन्सर्न में दे रखा है उसी से सट्टा खेलने लगे। अब वे न तो मैनेजिंग डायरेक्टर ही रह सकेंगे और तीन लाख का नुकसान उन्हें अपनी जेब से चुकाना पड़ेगा !"

"लेकिन सुरेश, बदनामी भी तो बहुत होगी !" नीना ने अपनी ओर से कहा ।

"बदनामी का क्या है, लेकिन तीन लाख का नुकसान तो बहुत ही ज्यादा है !"

क्षण-भर के लिए डैडी का अस्तव्यस्त, भसोरता-सा चेहरा नीना की आँखों के सामने आ गया और आकस्मिक रूप से आ पड़ी विपत्ति की यथार्थता और भी भयावह होकर कसमसाने लगी। उसने कहा, "इस समय तो हमारी यही कोशिश होनी चाहिए कि डैडी को किसी तरह का मानसिक कष्ट न हो। उन्हें नींद की गोली लेकर सो जाना चाहिए !"

"हाँ-हाँ, नींद की गोली ! इससे बहुत जल्दी नींद आ जाती है।" सुरेश ने बेमन-से अपने शब्दों को फेंक भर दिया। वह कोई और बात बड़ी तीव्रता से सोच रहा था। कुछ क्षण बाद उसने कहा, "डैडी बिल्कुल सनकी हैं ! वे बिजनिस को बिल्कुल तबाह कर देंगे ! अब उन्हें रिटायर हो जाना चाहिए !"

"क्यों ? क्यों ?"

"इसलिए कि मैं यह काम उनसे बेहतर कर सकता हूँ। रुपया बनाने के लिए उनका दिमाग स्पेकूलेशन्ज के आगे जाता ही नहीं !"

कुछ दिन पहले रूपलाल ने उसे एक बड़ी मजेदार-सी योजना सुझाई थी कि जयचन्द बजाज अपनी निजी पूंजी और सम्पत्ति सुरेश के नाम लिख दे और फिर वह न्यू फीनांस लिमिटेड को दीवालिया घोषित कर दे जिसका वह मैनेजिंग डायरेक्टर है। दीवालिया हो जाने पर भी बहुत सी पूंजी हथियाई जा सकती है।···यह सब सोच लेने पर उसे जैसे नया बल मिला हो और वह मन-ही-मन रूपलाल के प्रति कृतज्ञ होने लगा।

उसे पता था कि नीना अजय के साथ प्रेम में फिर उलझ गई है। व्यक्तिगत रूप में अजय के प्रति उसके मन में किसी तरह की ओछी भावना नहीं थी, लेकिन रूपलाल उसके लिए ज्यादा महत्त्वपूर्ण और उपयोगी व्यक्ति था। मूल विषय पर आने के लिए वह भूमिका-सी बाँधने लगा, "सारी दिल्ली में अगर हमारा कोई शुभचिंतक है तो वह रूपलाल ही है। इस विपत्ति के समय वह हमारे पास होकर हम लोगों का धैर्य बँधा रहा है!"

अजय के साथ हुई बातों से लेकर अब तक नीना पीड़ा और तनाव की स्थिति में ही रही थी। उसका मानसिक क्षोभ खीझ में फट-सा पड़ा। "अब तुम कहोगे कि वह मेरे लिए आइडियल पति हो सकता है?"

"इसमें क्या शक है?"

"लेकिन यह समय इस तरह की बातों के लिए नहीं!" नीना ने उत्तर दिया, "तुम रूपलाल को लेकर कहीं और चले जाओ। मैं अब डैडी के पास बैठूंगी!"

अगले दिन भी जयचन्द बिस्तर में पड़ा रहा। उसके सामने केवल दो ही रास्ते थे। पहला यह कि वह सट्टे में हारी हुई रकम अपनी निजी पूंजी से चुका दे और दूसरा यह कि वह कम्पनी के हिसाब में तीन लाख का घाटा दिखाकर इस क्षति से साफ-साफ बच जाए। वह स्वयं कोई भी निश्चय कर लेने में असमर्थ था। इस नए आघात ने उसे अपने भीतर इतना कमजोर और शिथिल कर दिया था कि जब सुरेश उसे दूसरा रास्ता अपना लेने के लिए प्रेरित करने लगता तब वह कपड़े के गुड्डे की तरह सिर हिला देता और जब नीना उसे पहले रास्ते के लिए रजामंद कर लेती तब भी उसकी प्रतिक्रिया वैसी ही अनिश्चित और ढुलमुल-सी होती। क्या डैडी सचमुच पागल हो गए हैं? यह विचार आते ही नीना उद्विग्न-सी हो जाती और वह थोड़े-थोड़े वक्फे बाद अपने कमरे से निकल कर उनके कमरे में जा पहुँचती। सुरेश से भेंट होने पर उसने उससे कहा, "डैडी को गलत काम करने के लिए मत उकसाओ। इससे हमारी रही-सही प्रतिष्ठा भी खत्म हो जाएगी!"

"तुम्हें प्रतिष्ठा की पड़ी है और मैं यह सोचता हूँ कि हमारे रुपए पर

किसी तरह की ग्राँच नहीं ग्रानी चाहिए !"

"लेकिन यह कहाँ की नैतिकता है कि तुम दूसरों के रुपए का गबन कर लो ?"

"विजनिस के मामलों में नैतिकता नहीं चलती। ग्रगर डैडी सट्टे में तीन लाख हारने की बजाए दस लाख जीत गए होते तो तुमने उस मुनाफे पर किसी तरह की नैतिक ग्रापत्ति न की होती।"

"लेकिन ग्राप लोगों ने भी," नीना ने उत्तर दिया, "उस मुनाफे को कंपनी के हिसाव में न डाला होता ?"

"मैं समझा नहीं !"

"मैं यह कहना चाहती हूँ कि नुकसान या मुनाफे का सीधा सम्बन्ध डैडी की निजी पूँजी से है !"

एकाएक सुरेश इस भाव से हँसने लगा जैसे उसने नीना की वात सुनी ही न हो। वह हँसी उसके भीतरी ग्राक्रोश का उफान मात्र थी। कहने लगा, "काश ! उनकी पूँजी का भेद खुल जाए। मैं उनका उत्तराधिकारी समझा जाता हूँ, लेकिन मेरी जानकारी में सभी वैंकों में पड़ी हुई उनकी पूँजी डेढ़-पौने दो लाख से ज्यादा नहीं !"

लेकिन नीना सुरेश से ग्रधिक जानती थी। उसे पता था कि उसके डैडी ने दो-तीन लॉकर भी ले रखे हैं। कदाचित् सुरेश को ग्रविश्वसनीय समझकर ही उन्होंने इस तथ्य को उससे गुप्त रखा हो···सहसा नीना को विचार ग्राया।

सुरेश से निबट कर वह ग्रपने पिता के पास पहुँची। उस समय जयचन्द बिस्तर से निकलकर मेज के ग्रागे ग्रा बैठा था ग्रौर मेज पर टिकी कोहनियों के सहारे ग्रपने चेहरे को हाथों में लिए बैठा था। लगता था जैसे गहरी सोच में हो। वह ग्रपनी पलकों को एक क्षरण बन्द कर लेता ग्रौर दूसरे क्षरण खोल लेता ग्रौर जिस ढँग से उसने ग्रपने होंठों को सिकोड़ रखा था उससे उसकी समूची मुद्रा काफी हास्यास्पद ही लग रही थी। नीना के ग्रन्दर ग्राने पर वह पहले तो एकटक-सी नजरों से उसकी ग्रोर देखता रहा, फिर हँसने लगा। नीना ने निकट ग्राकर उसके कन्धे पर हाथ रखा।

"एक काम करोगी ?" जयचन्द ने पूछा।

"हाँ-हाँ, कहिए !"

"कनाटप्लेस के एक बैंक में मेरा लाकर है। उसकी चाबी मुझसे ले लो और रुपया ले आओ।"

"कितना ?"

"तीन लाख !" यह कहकर जयचन्द ने फिर झसोरता-सा चेहरा बना लिया जैसे रोने जा रहा हो। "नन्ही," वह कहने लगा, "लाकरों में मेरा जितना भी रुपया है वह हेराफेरी का है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि मैं उस रुपए को प्यार नहीं करता। मैंने इम्पोर्ट के लायसेन्स लिए और ब्लैक की। यह भी बिजनिस है नन्ही और जो बड़े-बड़े बिजनिसमैन हैं उन्हें यह सब करना ही पड़ता है। हा ! हा ! हा !" वह हँसने लगा।

नीना अपनी जगह संतुष्ट थी। आखिर डैडी ने उसकी ही बात मानी थी जो उस परिस्थिति में न्यायोचित और ठीक थी। डैडी अधिक-से-अधिक अतिरिक्त पूंजी बना लेने के लिए क्या-क्या हथकंडे करते हैं उनके बारे में वह व्यर्थ ही उलझने को तैयार नहीं थी। जयचन्द कुरसी से उठकर मेज पर जा बैठा था और उसने अपनी दाईं मुट्ठी को दो बार हवा में लहराकर फिर खोल दिया।

"क्या बात है डैडी ?"

"आज तक मैंने इन लॉकरों के बारे में सुरेश को कभी कुछ नहीं बताया। वह इतना जिम्मेवार है ही नहीं कि उस पर विश्वास किया जा सके !"

"नहीं डैडी, अब तो वह काफी समझदारी की बातें किया करता है।"

"समझदारी ? खूब ! हा ! हा ! वह अपने भेजे से कभी कुछ नहीं सोचता। सुबह मुझे वह कह रहा था कि हमें कम्पनी को दीवालिया घोषित कर देना चाहिए और इस तरह लाखों की पूंजी बनाई जा सकती है। सचमुच ग्रांड आइडिया। लेकिन यह उसका अपना नहीं। जरूर रूपलाल ने ही उसे बताया है। मैं तब तक उसे अपनी गुप्त पूंजी के बारे में कुछ नहीं बताऊँगा जब तक वह शादी नहीं करता या कांग्रेसी नहीं बन जाता।"

नीना इसे परिहास की बात समझ कर मुस्कराने लगी। फिर उसने पूछ लिया, "यह कैसे डैडी ?"

जयचन्द ने उत्तर दिया, "इन दोनों में से एक चीज किए बगैर वह जिम्मेवार आदमी नहीं बन सकता।"

अकस्मात् कमरे के बाहर सुरेश के ऊँचे स्वर में हँस पड़ने की आवाज सुनाई दी। फिर दो क्षण बाद वह देहलीज पर मुस्कराता-सा खड़ा दिखाई दिया। "क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?" उसने नाटकीय-से अन्दाज में यह कहा और अन्दर चला आया।

"तुम कमरे के बाहर खड़े क्या कर रहे थे ?" जयचन्द ने प्रश्न किया।

"आप दोनों की बातें सुन रहा था। डैडी, यह जानकर खुशी हुई कि तीन लाख का घाटा चुकाने के लिए आपके पास लॉकरों में पड़ी हुई काफी पूँजी है। मैं पहले यही सोचकर आपका विरोध करता रहा कि घाटे की रकम चुकाते वक्त कहीं आप हमें बिल्कुल कंगाल न बना दें। लेकिन अब ऐसी नौबत नहीं आएगी ...और मुझे यह जानकर भी खुशी हुई कि कम्पनी को दीवालिया घोषित कर देने के मेरे विचार को आपने ग्रांड आइडिया कहा है। हमारी पाँचों अँगुलियाँ घी में हैं। थैंक यू ! थैंक यू डैडी !" यह कहते हुए उसने निकट आकर अपने पिता के हाथ को अपने हाथ में ले लिया।

"मेरे नालायक बेटे !" जयचन्द ने उससे कहा, "मैं चाहता हूँ मेरी गुप्त पूँजी का भेद किसी चौथे आदमी को मालूम न हो।"

"कभी नहीं। मै यह बात अपनी स्वर्ग-वासिनी माँ की सौगंध खाकर कहता हूँ !"

"उसकी मुझे याद मत दिलाओ। रात को मैंने उसे सपने में देखा था। वह मेरी ओर देखकर हँसती रही और मेरा मुंह चिढ़ाती रही। समझ नहीं आया इसका क्या मतलब था ?"

सुरेश ने मुस्करा कर नीना की ओर देखा, लेकिन वह सचमुच डर गई थी। अगले क्षण वह अपनी माँ के उस चेहरे को याद करने लगी जिसका सम्बन्ध ुखद स्मृतियों से था।

उस शाम जब नीना अजय के पास आई तो केवल एक ही अनुभूति उसके मन-प्राण को उद्वेलित किए दे रही थी कि इस जिन्दगी में आमोद-प्रमोद के सिवा और कुछ नहीं···कि उसके भीतर किसी तरह की दुविधा या दुर्बलता नहीं रहनी चाहिए···कि वह अपने वातावरण में रहकर ही श्वास ले सकती है और जो प्रत्यक्ष है वही उसके लिए उपयुक्त है।···आज की भटकी हुई जिंदगी में हमें सुख के सिवा और कुछ चाहिए भी नहीं।—अजय के ये शब्द उसे अच्छी तरह याद थे।

अजय से मिलते ही उसने कहा, "आज मेरा मन बहुत अधिक नाचने, बहुत अधिक पीने को हो रहा है!"

"सच?" कहकर अजय ने हल्का-सा कहकहा लगा दिया।

"मैं बस ऊपर-ऊपर से ही माडर्न बनी रही। मुझे अपने विचारों में भी सुधार कर लेना चाहिए था!"

"यह ठीक है," अजय ने टिप्पणी की, "तुम्हारा इससे अधिक दकियानूसी विचार और कौन सा हो सकता था जब तुम यह समझने लगी कि प्रेम की परिणति शादी में ही होनी चाहिए!"

"मैं गलती पर थी। सिर्फ आज ही मुझे इस बात का पता चला कि मेरे डैडी कितने बड़े बिजनिसमैन हैं। इसलिए डैडी की बेटी को किसी भी हालत में अपने को कमजोर नहीं समझना चाहिए।"

अजय ने पूछ लिया, "तुम्हें बदल देने का श्रेय मुझे है या तुम्हारे डैडी को?"

"तुम दोनों को!" उत्तर देते वक्त नीना अपनी हँसी न रोक सकी।

"लेकिन नीना," अजय गम्भीर होकर कहने लगा, "मैं तो यही समझता हूँ कि जिस वर्ग में हम रहते हैं "उसमें मेरा जन्म दुर्घटना ही है। इसीलिए मेरे अन्दर जहर है।"

"मैं भी यही सोचती हूँ और तुम्हारी तरह मैं भी उस जहर को अपने अन्दर समेटे सुख और विलासिता में डूब जाना चाहती हूँ। कौन-सा ऐसा सुख है जिसे रुपए द्वारा खरीदा न जा सकता हो। वर्तमान ही सब-कुछ है जैसा तुम

कहते थे ग्रौर इसका एक-एक क्षरण हमारा होना चाहिए। क्यों ?"

"बिल्कुल ऐसे ही है डार्लिंग ! वर्तमान का एक-एक क्षरण···।" ग्रौर ग्रजय ने निकट ग्राकर ग्रपने होंठ उसके होंठों पर रख दिए।

नीना कुछ क्षरण ग्राँखें बन्द किए निश्चेष्ट-सी बैठी रही जैसे वह उस मादकता को पूरी तरह ग्रनुभव कर लेना चाहती हो जो उसके होंठों में सुलग कर शरीर के सभी स्नायुग्रों में व्याप गई हो। फिर उसने ग्राँखें खोलकर सिर को झटका-सा दिया ग्रौर सोफे से उठती हुई बोली, "ग्राग्रो चलें। मेरा मन नाचने को हो रहा है ! डार्लिंग ! हम रीगल में चलेंगे जहाँ ग्राज बिग नाईट का प्रोग्राम है।"

□ सत्रह

उषा की परीक्षा मई के मध्य में समाप्त हुई। तदनान्तर लडोली गाँव चले जाने के लिए घर का सामान बाँधा जाने लगा। बारहखम्भा रोड वाले बँगले को बेच देने का निश्चय कर लिया गया। इसलिए कि ठाकुर को पैसों की जरूरत थी। राव जयचन्द के साथ चले ग्रा रहे बिजनिस से ग्रलग हो जाने के बाद देहरादून की वादी में एक बहुत बड़ा बागीचा लगाने की सोच रहा था ग्रौर इसके लिए उसने ठाकुर को साझीदार बना लिया था। दूसरे, वह यह भी समझ रहा था कि देहरादून की ग्राबोहवा उसके डायबटीज से जर्जर हुए स्वास्थ्य को सुधार देने के लिए काफी लाभप्रद हो सकती है।···उन दोनों बुजुर्ग व्यक्तियों के बीच ग्रब पहले जैसा ही मैत्री-सम्बन्ध पैदा हो गया था।

ग्रशोक ग्रपने फार्म पर था। ग्रपने उस छोटे-से फार्म को उसने काफी

अच्छी तरह सुव्यवस्थित कर लिया था। वह बहुत तड़के अपने खेतों पर चला जाता और अपने ट्रैक्टर पर बैठकर हल चलाता। मई महीने की काफी तेज गरमी पड़ने लगी थी और दोपहर के समय प्रखर धूप शरीर के रोओं में सूइयों की तरह चुभती थी। उसका चेहरा श्यामल और झुलसा हुआ-सा लगता था। एक दिन जब अभी सुबह के दस ही हुए थे उसने कुछ फासले पर एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसने पैंट-बुशशर्ट के साथ स्ट्रा-हैट पहन रखा था और उसकी ओर ही चला आ रहा था।...यह कौन हो सकता है? उसे सहसा विचार आया। उस व्यक्ति की चाल-ढाल पहचानी-सी लगती थी।

वह ट्रैक्टर की सीट से उतर कर खेत की मेंड पर चला आया। थोड़ा निकट आने पर वह उस व्यक्ति को पहचान गया। वह अजीत था। उस दिन से वे दोनों ही एक-दूसरे से कतराते रहे थे जिस दिन अशोक उसके पास उसके उच्छृंखलतापूर्ण व्यवहार की सफाई माँगने गया था। अजीत के आकस्मिक रूप से आ जाने पर उन्मेष तथा आश्चर्य की अनुभूति से वह गुमकने लगा। वह अजीत की अपेक्षा अधिक तेज चलने लगा।

'हैलो' 'हैलो' कहकर वे दोनों एक-दूसरे के आलिंगन में बँध गए। अशोक ने कहा, "तुम्हें यहाँ देख कर मैं मुश्किल से अपनी आँखों पर विश्वास कर सका!"

"मुझे अब बम्बई चले जाना है," अजीत बोला, "मैंने सोचा जाने से पहले मुझे तुम्हें अवश्य मिलना चाहिए!" अपने अपराध की क्षमा माँगने के लिए अजीत इससे अधिक और कह देने को तैयार नहीं था।

अशोक के सन्तुष्ट हो जाने के लिए यही पर्याप्त था। उसने खेद के स्वर में पूछा, "बम्बई क्यों? वहाँ किस लिए जा रहे हो?"

"इसलिए कि दिल्ली की निस्वत वहाँ मेरी कला के प्रशंसक और खरीददार ज्यादा लोग हैं!" इतना कहकर अजीत ने अपने मित्र को सिर से पाँव तक घूर लेना चाहा। फिर परिहास के स्वर में उसने कहा, "तुम बिल्कुल पहचाने नहीं जाते! हू-बहू किसान लगते हो!"

अशोक ने हँसते हुए उत्तर दिया, "मेरा खयाल है मुझे अपनी वर्तमान

परिस्थिति के अनुरूप ही लगना चाहिए !"

"क्या तुम्हारे ऊँचे आदर्शों की परिणति एक साधारण-सा किसान बन जाने में थी ?"

"मेरे ऊँचे आदर्श अवश्य हैं, लेकिन मैं महत्त्वाकाँक्षी नहीं हूँ। सभी ऊँचे आदर्श सामान्य जीवन में ही अवतरित कर देने के लिए होते हैं।...आओ हवेली में चलते हैं। यहाँ की तेज गरमी तुमसे बर्दाश्त न हो सकेगी।"

वे हवेली में चले आए। कुछ देर बाद वे निचली मंजिल के खुले से कमरे में बैठे चाय पी रहे थे। चाय के साथ अशोक के पास नमकीन बिस्कुटों के सिवा और कुछ नहीं था, लेकिन अपने प्रिय अतिथि की परितृप्ति के लिए अशोक के पास स्नेहल-से व्यवहार की कमी नहीं थी।...अजीत एक बात कहने से पूर्व कुछ देर ठिठका रहा, फिर बिना किसी तरह की भूमिका के उसने कहा, "अशोक, जिस लड़की की मंगनी तुम्हारे साथ की जा रही थी उसकी शादी रूपलाल नाम के किसी धनी व्यक्ति से हुई है।"

अशोक यह सुनकर जरा भी विस्मित नहीं हुआ। फिर भी उसने जिज्ञासा-वश पूछ लिया, "कब हुई शादी ?"

"कल। मैंने उसका और उसके पति का फोटो अखबार में छपा देखा था।" यह कहकर अजीत ने अशोक की प्रतिक्रिया जान लेने के भाव से प्रश्न-भरी नजर से उसकी ओर देखा।

अशोक ने उत्तर दिया, "मैं उसके लिए सुखी और सफल दाम्पत्य जीवन की कामना करता हूँ !"

अजीत हँसने लगा। बोला, "और मैं तुम्हारे लिए भी सुखी और सफल दाम्पत्य जीवन की कामना करता हूँ !"

"लेकिन मेरी तो अभी शादी नहीं हुई ?"

"हो जाएगी। और उसी से होगी जिससे प्यार करते रहे हो !" तभी अशोक की ओर देखकर अजीत ने लक्ष्य किया कि अकस्मात् ही उसके चेहरे में उदासी-भरी गम्भीरता-सी आ गई है। उसने पूछ लिया, "क्या बात ? तुमने मुँह लटका लिया ?"

"मुझ में," अशोक ने उत्तर दिया, "उसके आगे इतना बड़ा प्रस्ताव कर सकने की हिम्मत नहीं।"

"क्या उसके डैडी इस मामले में खामोश हैं ?"

"मुझे नहीं पता ?"

"और तुम्हारे घरवाले ?"

"मेरा खयाल है मेरी माँ को इस मामले में बहुत ज्यादा दिलचस्पी है। कुछ दिन पहले ही उषा की परीक्षा खतम हुई है। अब ठाकुर काका अपने गाँव में ही बस जाना चाहते हैं।"

"चलो छुट्टी हुई !" अजीत के शब्दों में व्यंग्य की ध्वनि थी, "तुम्हारी उषा से शादी हो जाएगी और तुम्हारा अब तक का संघर्ष इस किनारे पर आकर शांत हो जाएगा !"

"जीवन के व्यापक अनुभव में शादी का अधिक महत्त्व नहीं अजीत !"

"अधिक तो क्या," अजीत बोला, "रत्ती-भर भी नहीं। शादी का मतलब है जिन्दगी की रौ से हटकर किनारे से लग जाना···।"

"किनारा भी जरूरी है, लेकिन इसे मैं अपना गन्तव्य नहीं मानता।"

"तुम्हारा गन्तव्य क्या है ?"

"आत्म-बोध।"

"यह तो अध्यात्मिक-सा आदर्श है।"

"अध्यात्मवाद के बिना सामाजिक उत्तरदायित्व निभाया नहीं जा सकता और न इसे समझा जा सकता है।"

"तुम गाँधीवादी हो या समाजवादी ?"

"दोनों का मिश्रित रूप हूँ।" उत्तर देकर अशोक धीमे-धीमे हँसने लगा।

शाम को वह अजीत के साथ दिल्ली लौट आया। घर वालों के लिए यह बिल्कुल अप्रत्याशित था, क्योंकि उसने अपने पिछले पत्र में उन्हें लिखा था कि वह मई के अन्तिम सप्ताह में ही आ सकने में समर्थ हो सकेगा। उस समय सभी लोग खाना खाने के निमित्त डाइनिंग-रूम में बैठे थे। प्रीती और दीपी भैया-भैया चिल्लाती हुई कुर्सियों से उछल पड़ीं। पारवती भाव-विह्वल-सी होकर उसके

सिर पर हाथ फेरने लगी और राव ने उसके नमस्ते के प्रत्युत्तर में स्वीकृति की धीमी-सी हुँकार भरी।

अशोक ने सर्वप्रथम पिता की कुशल-क्षेम पूछी, "डैडी, मेरा खयाल है बिल्कुल स्वस्थ हैं आप ?"

"हाँ, कुछ ठीक हूँ। अच्छा हुआ तुम आ गए। हमें दो-चार दिन में देहरादून जाना होगा ताकि बागीचे के लिए जमीन का फैसला कर लिया जाए !"

"मैं भी चलूंगा। यह बागीचा लगाने की योजना मुझे काफी अच्छी लगी है।"

"देहरादून की आबोहवा में मेरा स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा," राव कहने लगा, "अच्छा हुआ मैंने उस मक्कार-से आदमी जयचन्द की पार्टनरशिप छोड़ दी। मुझे अब पता लगा है कि उसने लाखों की ब्लैक की। अब वह कांग्रेस में चला गया है !"

"सच डैडी ?" अशोक ऐस बोला जैसे सकते में आ गया हो।

"बिल्कुल सच। उसकी लड़की की मैरिज-पार्टी में कई कांग्रेस के मशहूर लोग आए थे। इधर यह हाल है और उधर ठाकुर की नुक्ताचीनी और खरी-खरी बातों से काफी लोग भड़क उठे हैं। उन्हें यह बिल्कुल बर्दाश्त नहीं कि ठाकुर कांग्रेस में रह कर उनकी नुक्ताचीनी करे और अखबारों में अपने बयान दे।"

इन शब्दों को सुनते वक्त कई प्रश्न अशोक के जहन में उठ खड़े हुए थे··· क्या सचमुच कांग्रेस में नैतिक पतन आ चुका है ? क्या यह अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को तिलांजली देकर एक शक्ति-सम्पन्न राजनीतिक पार्टी नहीं बनने लगी ? क्या व्यवसायी और पूंजीवर्ग के लोग इसके समाजवादी आदर्शों को मलियामेट नहीं कर देंगे ?···सब ढोंग है ! बहुत बड़ा भूठ ! मुझे इस ढोंग से अलग हो जाना चाहिए। अपनी सदस्यता को बनाए रखने का मतलब होगा आत्मप्रवंचना ! यह मुझसे नहीं हो सकेगा !

उसने कहा, "ठाकुर काफी दुर्बल हो गए हैं। उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। फिर भी वे इतने सक्रिय हो गए हैं !"

खाना खा चुकने के बाद उसने उषा को फोन किया। उसका स्वर पहचानकर उषा हँसते हुए बोली, "गाँव से आ गए? कब आए?"

"बस थोड़ी देर पहले।"

"मेरी परीक्षा खत्म हो गई! परीक्षा के दिनों में मैं सोचती थी कि तुम यहाँ जरूर आओगे! ज्यादा नहीं तो एक दिन के लिए···कुछ देर के लिए···।"

"मेरे बहुत से काम थे जिनके कारण मुझे रुके रहना पड़ा। लेकिन उषी, मेरी सद्भावना तो तुम्हारे साथ थी। पेपर कैसे हुए? अच्छे ही हुए होंगे। मेरी सद्भावना जो तुम्हारे साथ थी!"

"खाली सद्भावना से क्या होता है!" उषा का स्वर भर आया, "तुम कितने कठोर हो! मैं मन-ही-मन तुम्हें कोसती थी और पापा से झगड़ती थी।"

उषा अशोक के सामने नहीं थी, लेकिन उसके शब्दों को सुनते वक्त··· उसके स्वर के उतार-चढ़ाव को बूझते हुए उसे लग रहा था जैसे उषा का चेहरा उसकी आँखों के सामने झलक आया हो और वह उस चेहरे की प्रत्येक भाव-भंगिमा को पढ़ रहा हो :—तुम कितने कठोर हो! जब उषा ने यह कहा होगा, उसे विचार आया, तब निश्चय ही उसने अपने उन होंठों को काट लिया होगा जो कभी उसके चुभते व्यंग्य की पैनी धार का वहन किया करते थे!

"क्या सोच रहे हो?" दूसरी ओर से उषा ने पूछ लिया।

"योंही! कुछ नहीं!" और अशोक हँसने लगा।

"हँस पड़ने का कारण?"

"कुछ नहीं। मैं कल नौ या दस के बीच आऊँगा!"

"अच्छा गुडनाइट!"

"क्यों? इतनी जल्दी?"

"कल मिलने पर बातें होंगी। फोन पर यही बहुत है। पापा से बात करोगे?"

"इस समय क्या कर रहे हैं?"

"बरामदे में बैठे कुछ लिख-पढ़ रहे हैं। सुबह उन्हें किसी मीटिंग में जाना है।"

"तब उन्हें डिस्टर्ब नहीं करूँगा। मेरा अभिवादन उन्हें दे देना।"

"गुड नाइट !"

"गुड नाइट !" अशोक ने फोन ठप कर दिया।

संक्षिप्त-सा वार्तालाप ! लेकिन उसे लगा जैसे उसके भीतर मिठास सी घुलती रही हो। गाँव के एकाकी, व्यस्तता और श्रम-भरे जीवन के बाद इस तरह की अनुभूतियाँ उसे खूब रोमाँचक और संतोषप्रद लग रही थीं।

वह ठीक साढ़े नौ बजे उषा के बंगले पर था। उसने उषा को लॉन में बैठे हुए देखा जैसे वह भी उसकी प्रतीक्षा में हो। उसके निकट आने पर उषा ने उदास और बुझी-बुझी-सी मुस्कराहट के साथ उसका स्वागत किया। अशोक दूसरी कुरसी पर उसके समक्ष जा बैठा।

सुबह नाश्ते के वक्त उषा और उसके पिता के बीच थोड़ी-सी तकरार हुई थी। यही सोच कर उषा ने कहा, "आखिर यह क्या मजाक है ?"

कुछ न समझते हुए अशोक मुस्कराने लगा—"क्या ?"

"यही जो तुम लोग सोचते हो ?" उषा ऐसे स्वर में बोली जैसे झगड़ा करने के मूड में हो।

"मैं तो कुछ नहीं सोचता !" अशोक ने और भी खुलकर मुस्कराते हुए कहा।

"सोचते क्यों नहीं ? शादी ! लेकिन मैं अभी और पढ़ूँगी ! मैं विदेश जाकर पी-एच०डी० करना चाहती हूँ। लेकिन पापा कहते हैं···नहीं ! नहीं ! नहीं !"

अशोक यह सब नहीं जानता था। अवाक्-सा रह कर वह उषा की ओर देखता रहा, फिर बोला, "तुम विदेश जाकर पी-एच० डी० करना चाहती हो ?"

"अब तुम कहोगे यह मुश्किल है ?" यह मैं नहीं कर सकूंगी ?

"तुम कर सकोगी। मैंने कब कहा कि तुम नहीं कर सकोगी ? लेकिन···।" अशोक विवश था कि अपने वाक्य को अपूर्ण ही रहने दे और इसका आशय उषा पर ही छोड़ दे।

उषा समझ गई। बोली, "लेकिन प्यार बीच में बाधा बन जाना चाहता

है···यही न ?"

अशोक की परिहास-क्षमता जैसे लौट आई हो। उत्तर दिया, "एक साधारण-सी सच्चाई के आगे प्रश्न-चिन्ह नहीं लगाए जाते उषी ! इसे तुम भी समझती हो।"

"लेकिन मैंने इसे बाधा के रूप में कब स्वीकार किया है ?" फिर कुछ क्षण रुककर वह जैसे उसके स्वाभिमान को छूती हुई बोली, "तुम एक आदर्शवादी हो। मैं समझती हूँ तुम्हारे लिए प्रेम का दूसरा ही आदर्श होना चाहिए !"

"क्या ?"

"ऐसा प्रेम जो अधिकार में विश्वास नहीं करता बल्कि त्याग में !"

अशोक कुछ क्षण अपने भीतर विमर्श करता रहा। फिर जैसे उसके अन्तर्मन ने ही उत्तर दिया, "यह ठीक है···मेरा खयाल है मुझे अपनी स्वार्थ-भावना से ऊपर उठकर त्याग में ही विश्वास करना चाहिए !" यह कहते उसके समूचे चेहरे में आत्मविश्वास की अपूर्व चमक आ गई।

"सच ?"

"हाँ ! मैंने कहीं पढ़ा है वेदना दृष्टि देती है। अब मैं तुम्हें समझ सकता हूँ उषी ! अब दृष्टि मिल जाने पर मुझे वेदना नहीं, सुख-ही-सुख मिलेगा !"

"मैं जानती थी तुम विरोध नहीं करोगे। एक दिन तुमने कहा था कि मेरे व्यक्तित्व का यथार्थ आकर्षण यही है कि मैं शिक्षा की ऊँची-से-ऊँची उपलब्धियों को प्राप्त कर लेना चाहती हूँ। कहा था न ?"

"कहा था। तुम भी आइडियलिस्ट हो। हम लोगों ने अपने-अपने माध्यम से जीवन के अर्थों को खोजना है। ठाकुर काका हम दोनों के लिए प्रेरणा-स्रोत हैं !"

पिता का प्रसंग आते ही उषा की उल्लसित-सी मुद्रा कुछ उतर-सी गई। कहने लगी, "आज सुबह उनकी तबीयत ठीक नहीं थी। कहते थे छाती में दर्द है। मैंने बहुतेरा रोक लेना चाहा। फिर भी वे मीटिंग में चले गए !"

"उन्हें अब आराम की जरूरत है। उनके कार्य को मैं अपने कन्धों पर ओढ़ लेना चाहूँगा !"

"पता नहीं इन आदर्शवादियों को अपने स्वास्थ्य से इतनी उपेक्षा क्यों हो जाती है," उषा कहने लगी, "तुम्हारा चेहरा भी बीमारों का-सा लगता है !"

उसी क्षण उन्हें धीमी-सी टेलीफोन की घण्टी की आवाज़ सुनाई दी जो कारीडार में रखा रहता था । "किसी का फोन है।" यह कहते हुए उषा कुरसी से उठी । अशोक भी उसके पीछे-पीछे चला आया ।

उषा ने चोंगा उठाकर हैलो कहा, "क्या ?" दो क्षण बाद उसके गले से हौंकती-सी आवाज़ निकली और उसका चेहरा एकाएक पीला पड़ गया । अशोक बोझिल-सी मुद्रा में उसकी ओर देखने लगा । उषा फोन पर बुदबुदा रही थी···"वालिंगटन हास्पीटल···नर्सिंग होम !" फिर फोन को नीचे डालकर वह कराहते-से स्वर में बोली, "मेरे ईश्वर ! यह क्या हो गया !"

"क्या बात है उषी ?"

"पापा को मीटिंग में फिट आ गई और बेहोश हो गए । उन्हें वालिंगटन हास्पीटल ले गए हैं !"

"चलो ! चलो ! जल्दी !" अशोक अविलम्ब कारीडार से बाहर जाने लगा ।

वह अपनी कार में आया था । इसलिए वालिंगटन हास्पीटल के नर्सिंग-होम पहुँचने में उन्हें पाँच-सात मिनट ही लगे । नर्सिंग-होम के बाहर कार के रुकते ही उषा तीर की तरह उस ओर भागी जहाँ बरामदे में उसे ठुकराल खड़ा दिखाई दिया था । "मेरे पापा को क्या हुआ ?" उसने भीग रहे गले से ठुकराल से पूछा ।

"डाक्टर उन्हें बचा लेने के लिए पूरी कोशिश करेंगे । वे बेहोश पड़े हैं और उन्हें आक्सीज़न दी जा रही है !"

"ओह गाड !···मेरे पापा कहाँ हैं ?"

"उधर तीसरे कमरे में । लेकिन अन्दर जाने की मनाही है ।···धैर्य रखो उषा !"

कुछ और लोग भी थे जो दो-दो, तीन-तीन की टोलियों में वहाँ खड़े चिंतातुर मुद्राओं में बिल्कुल धीमे-धीमे बातें कर रहे थे। अशोक ने निकट आकर

ठुकराल से पूछा, "ठुकराल साहब, यह सब हुआ कैसे ?"

"आज मीटिंग में कुछ लोगों ने उनके खिलाफ अविश्वास का प्रस्ताव रखा ! उन पर अनुशासन भंग करते रहने का आरोप लगाया गया। ठाकुर साहब आवेश में थे। जब वे उन आरापों का उत्तर दे रहे थे तो बोलते-बोलते उन्होंने अपनी छाती पर हाथ रख लिया और हल्की-सी कराहट के साथ नीचे गिर पड़े···और···और···बेहोश हो गए···।"

इस बीच उषा शोक और उत्तेजना से बिल्कुल विक्षिप्त-सी हो उठी थी। जब वह आगे जाने लगी तो ठुकराल ने फिर उसे यह कह कर रोक लेना चाहा, "उषा बिटिया ! डाक्टर लोगों की कठिनाई को समझो ! इस वक्त वे कितने जोखम के काम में जुटे हुए हैं !" उषा यह सुनते ही वापस लौट आई।

अशोक मन-ही-मन सोच रहा था कि जिन लोगों ने ठाकुर काका पर आरोप किए होंगे वे अवश्य ही अपने स्वार्थों को पोस लेने के निमित्त इस संस्था में आए वही लोग होंगे जो शक्ति-सम्पन्न हैं और जो ऐसी सभी आवाज़ों को दबा लेना चाहते हैं जिनमें विपुल-सी सच्चाई और आदर्शवादिता हो।···यह सोचते वक्त उसके भीतर रोषमयी पीड़ा की तीखी चुभन-सी होने लगी।

"उषा," वह उसका धैर्य बँधाते हुए कहने लगा, "अधीर मत बनो। ईश्वर ने चाहा तो सब ठीक ही होगा !"

उसी क्षण तीसरे कमरे का दरवाज़ा हल्की-सी आवाज़ के साथ खुला और कोई डाक्टर-सा दिखने वाला व्यक्ति भीतर से निकल कर वहाँ आकर खड़ा हो गया। बाहर खड़े लोगों की ओर उसने उदास, उलझ रही नज़रों से देखा।

उषा, अशोक और ठुकराल उसकी ओर लपके। उस व्यक्ति ने अपने होंठों को भींच लिया और भाव-शून्य से स्वर में कहने लगा, "मुझे खेद है हम उन्हें बचा नहीं सके !"

बाहर खड़े लोगों के संक्षिप्त-से हजूम में अस्फुट-सी शोकपूर्ण ध्वनि लहर की तरह काँप उठी। इस ध्वनि को दबाती हुई उषा के भर्राए हुए गले से गहरी चीख निकली और वह 'नहीं !' 'नहीं !' चिल्लाती हुई कमरे के अन्दर चली गई।

इस आकस्मिक और दुःखांत घटना को हुए सात दिन हो गए थे। अशोक ने उषा से कहा, "नियति के इस आघात को सहेज लेने के लिए हमारा आपसी प्रेम कितना वड़ा सम्बल हो सकता है!"

उषा उसके निकट ही सिर झुकाए बैठी थी और वह उसकी पीठ को सहला रहा था। उस स्पर्श में, उषा को लग रहा था, जैसे उसके दिवंगत पिता का ही स्पर्श सजीव हो उठा हो। पहले भी कई वार, उसे अच्छी तरह याद है, अशोक के व्यक्तित्व में···उसके विचारों और भाव-मुद्राओं में उसे अपने पिता की ही छाप दिखाई दी है। इस अनुभूति से उसे अपने भीतर आत्म-वल सा आता हुआ महसूस हुआ। कुछ भी कह देने को उसका मन नहीं हो रहा था। वह अपने शोक में सिमटी हुई बिल्कुल निश्चेष्ट···मौन वने रहना चाहती थी।

कई मिनट गुजर गए। वारहखम्भा रोड वाले उस वंगले में पिछले कई दिनों का अवसाद घिरा-घिरा-सा लग रहा था। पूर्ण खामोशी थी। अशोक और उसकी माँ पारवती ठाकुर के निधन वाले दिन से वहीं रह रहे थे ताकि उषा को उन दोनों का स्नेहिल, अपनत्वभरा सान्निध्य मिलता रहे।

"उषी!" अशोक ने धीमे से कहा जैसे वह यह जान लेना चाहता हो कि वह जाग रही है या सो रही है।

"हुँ!" उषा ने वैसे ही धीमे स्वर में उत्तर दिया।

"मैंने समझा था तुम सो रही हो!"

"नहीं! तुम पीठ सहला रहे थे और मुझे जैसे बहुत शान्ति मिल रही थी!"

अशोक कहने लगा, "दुख में निढाल हो जाना अच्छा नहीं। अपने-आपको पहचानो।···अपने उस व्यक्तित्व को याद करो जिसमें शक्ति और स्वाभिमान भरा हुआ रहता था! जो दूसरों की मूर्खताओं पर परिहास के कहकहों में गूंजता था और विसंगतियों को देखकर व्यंग्य से अट्टहास कर उठता था। अपने उस व्यक्तित्व को याद करो!"

उषा ने गहरा-सा निःश्वास लिया। बोली, "क्या वह सब मुझे फिर प्राप्त हो सकेगा?"

"क्यों नहीं ? मेरी ओर देखो ! मुझमें विश्वास करो !"

"हाँ-हाँ ! मेरा विश्वास···मेरे सब कुछ अब तुम ही हो !"

"और मैं यह भी कहना चाहूँगा उषी," अशोक और अधिक सहज होकर कहने लगा, "मैं तुम्हारे विकास में बाधा नहीं बनूँगा। तुम अब भी विदेश जाकर पी-एच० डी० कर सकोगी !"

"नहीं ! मैं तुमसे दूर नहीं जाना चाहती। तुम्हारे निकट रह कर जो कुछ भी मुझे करना है करूँगी। मैंने पहले ही तुम्हें बहुत दुख दिया है !"

"इसके लिए अधिक दोष मेरा ही है। मैं अपने ही अहम से खिंचा-खिंचा रहा और कष्ट भोगता रहा। मेरे अहम् पर चोट करने के लिए तुम्हारी उपेक्षा ही एक उपयुक्त शस्त्र हो सकती थी !"

"अशोक," उषा मर्माहत-सी होकर बोली, "मुझे और अधिक लज्जित मत करो ! मुझे समझो !"

वह एक मूल्यवान क्षण था। वे दोनों बचपन के साथी जो अपने-अपने अहम् में भूले हुए अनुद्देश्य, भ्रांतिपूर्ण-सा खेल खेलते रहे थे अब एक-दूसरे को समझ लेना चाहते थे। वह पूर्ण परिचय का क्षण था। किसी प्रियजन की मृत्यु कितनी दुखदायी घटना है ! लेकिन जीवन की कई जटिलताएँ ऐसी भी हैं जो इसके हस्तक्षेप के बिना सुलझ नहीं पातीं।

rea. 6332

6541



मोहन चोपड़ा

स्वर्गीय मोहन चोपड़ा का जन्म पंजाब के जिला गुरदासपुर में हुआ था। बाल्यकाल डलहौजी में बीता। शिक्षा गुरदासपुर, डलहौजी और लाहौर में में प्राप्त की। बचपन में उर्दू. फारसी और अँग्रेजी कविताएँ आप पिता के मुख से सुना करते थे; अतएव साहित्यसृजन की प्रेरणा आपको घुट्टी में ही मिली थी। युवावस्था में अपने लाहौर से एम० ए० पास किया और वहीं पर एस० डी० कालेज में 'लेक्चरार' हो गए। बाद में, देश-विभाजन के पश्चात, लुधियाना, फिरोजपुर व हिसार में अँग्रेजी के प्रोफेसर रहे। और सम्भवतः यही कारण था कि हिन्दी के साथ साथ अँग्रेजी पर भी उनका पूरा अधिकार था।

मोहन चोपड़ा का नाम कहानीकार, नाटककार, उपन्यासकार और कवि के रूप में प्रसिद्ध है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी होने के साथ ही साहित्य की अनेक विधाओं पर आपका अधिकार था। आपकी रचनाओं में जीवन और समाज की जटिल पहेलियों के समाधान मिलते हैं, साथ ही मानव की स्वाभाविक प्रक्रियाओं और व्यक्तिमूलक मानसिक स्थितियों का सूक्ष्म विश्लेषण भी। कहानी कहने का आपका विशिष्ट लहजा रहा है और यही कारण है कि आपकी रचनाएँ पाठकों में इतनी अधिक लोकप्रिय हैं। प्रस्तुत पुस्तक 'ये नए लोग' हमारी बात की पुष्टि के लिए पर्याप्त है।